साहित्य अमृत

मासिक

साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक

वर्ष-२२ अंक-६ ❖ पृष्ठ १५६ | पौष-माघ, संवत्-२०७३ | जनवरी २०१७

लघुकथा विशेषांक

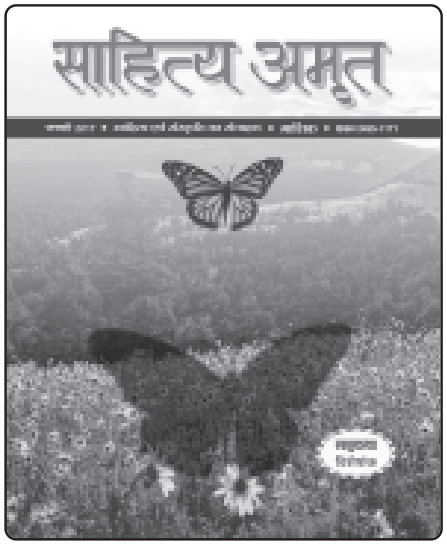

इस अंक में

संपादकीय

विमुद्रीकरण और संसद् का शीतकालीन सत्र ५

प्राचीन लघुकथाएँ १०

प्रतिस्मृति

वृंदावनलाल वर्मा, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, रामधारी सिंह 'दिनकर', कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, विष्णु प्रभाकर, हरिशंकर परसाई १२

स्मरण

विवेकी राय : लेखन के मंगल भवन और तपोवन के तपस्वी/ *नर्मदा प्रसाद उपाध्याय* १८

दिवंगत लघुकथाकारों की लघुकथाएँ

पृथ्वीराज अरोड़ा, सुरेश शर्मा, रमेश बतरा, विक्रम सोनी, युगल, जगदीश कश्यप, पारस दासोत, सुरेंद्र मंथन, एन. उन्नी, कालीचरण प्रेमी, रघुनंदन त्रिवेदी २०

आलेख

लघुकथा : बिंदु-बिंदु विचार/ *मधुदीप* २६

लघुकथा की शास्त्रीयता : भारतीय एवं वैश्विक परिदृश्य/ *शकुंतला किरण* ३४

हिंदी लघुकथा में राष्ट्रीय चेतना/ *पुरुषोत्तम दुबे* ४४

पहली हिंदी लघुकथा''' ?/ *बलराम अग्रवाल* ५०

संस्थापक संपादक

स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

❖

पूर्व संपादक

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

❖

संपादक

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

❖

प्रबंध संपादक

श्यामसुंदर

❖

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड,

नई दिल्ली-११०००२

फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

❖

शुल्क

इस अंक का मूल्य —₹ १००

सामान्य अंक—₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६, कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अमृत

मासिक

लघुकथा विशेषांक

समकालीन हिंदी लघुकथा : परिवारिक संदर्भ/ *अशोक भाटिया* ५८
नई पीढ़ी की लघुकथा में सामाजिक सरोकारों के प्रतिबिंब/ *उमेश महादोषी* ७१
समकालीन हिंदी लघुकथा : भाषा पर कुछ भद्र विचार/ *जितेंद्र 'जीतू'* ८०
लघुकथा के कुछ चमकते सितारे/ *बलराम* ९०
२०१६ : लघुकथा का समृद्ध परिवेश/ *कांता रॉय* ९६

समकालीन लघुकथाकार

फकीरा/ *रामदरश मिश्र* २९
नई पौध/ *सूर्यकांत नागर* ३०
विक्षेप/ *प्रताप सिंह सोढी* ३१
तंगदिली के बीच/ *सतीश दुबे* ३२
अपराध-बोध/ *आभा सिंह* ३३
दवा/ *श्याम सुंदर दीप्ति* ३९
बदबू/ *भगवती प्रसाद द्विवेदी* ४०
आदमी की बातें/ *प्रबोध कुमार गोविल* ४१
जबानी खर्च/ *जाफर मेहँदी जाफरी* ४२
घर/ *श्याम सुंदर अग्रवाल* ४३
विदाई/ *सुरेश उनियाल* ४६
अकेलापन/ *अशोक जैन* ४७
चमक/ *कमल चोपड़ा* ४८
पॉकेटमार/ *मुरलीधर वैष्णव* ४९
नींव/ *हरि जोशी* ५४
दुनिया का कंधा/ *राजेश उत्साही* ५५
जीवित मृत/ *महेश दर्पण* ५६
नोटबंदी/ *अशोक गुजराती* ५७
चिरसंगिनी/ *रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'* ६३
फुरसत/ *रामकुमार आत्रेय* ६४
मुझे जिंदगी देने वाले/ *माधव नागदा* ६५
छाँव/ *विभा रश्मि* ६६
मैरिज एनिवर्सरी/ *भगीरथ* ७६
लरजते पेड़/ *रामकुमार घोटड़* ७७
रावण-दहन/ *सतीश राठी* ७८
पिताजी/ *हीरालाल नागर* ७९
माँ/ *अशोक शर्मा 'भारती'* ८४
तेरा नाम क्या है?/ *घनश्याम अग्रवाल* ८५
बैल की जून/ *आशा शैली* ८६
अंतर/ *प्रभात दुबे* ८७
मौत/ *बलराम* ८८
दर्द/ *सुभाष नीरव* ८९
कर्तव्य/ *सुनील गज्जाणी* ९३
मंसूबे/ *राकेश भ्रमर* ९४
दाल-रोटी/ *रतन चंद 'रत्नेश'* ९५
डिस्कनेक्ट/ *मार्टिन जॉन* १००
नियम के अनुसार/ *मुकेश शर्मा* १०१
षड्यंत्र/ *पवन शर्मा* १०२
पत्थर/ *फजल इमाम मलिक* १०३
लॉफिंग क्लब/ *सुकेश साहनी* १२३
बिल/ *खुदेजा खान* १२४

साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

अनवंत कौर, अनमोल झा, कण्णन मेनन, वि.सा. खांडेकर, भामिडि पाटि रामगोपाल, जोगिंदर पाल, विजयदान देथा, प्रतिभा राय, रवींद्रनाथ ठाकुर, विनोद भट्ट, इबोहल सिंह कांगजम, शिव नारायण, कृष्णानंद कृष्ण १०४

राम झरोखे बैठ के

कतार में खड़े लोग/ *गोपाल चतुर्वेदी* १११

साहित्य का विश्व परिपार्श्व

दोस्तोयव्स्की, हेमिंग्वे, बर्तोल्त ब्रेख्त, फ्लाबेयर, व्हांग सून वोन, तदेऊष रुजेविज, महिम्यांग, नंद हांगखिम, लूशुन ११४

नवांकुर

शह-मात/ *अनिता मंडा,* **ऊहापोह**/ *अंतरा करवड़े* १२५; **रौनक**/ *अर्चना तिवारी,* **नई बिरादरी**/ *दीपक मशाल* १२६; **विवशता**/ *देवराज संजू,* **सेल्स प्रमोटर**/ *गजेंद्र रावत* १२७; **जादूगर**/ *हेमधर शर्मा,* **तमाचा**/ *जगदीश राय कुलरियाँ* १२८; **दंश**/ *ज्योत्स्ना कपिल,* **हँसी-खुशी**/ *कमल कपूर* १२९; **सुखांत**/ *मधुजैन,* **मन तो होता ही है**/ *मीना पांडेय* १३०; **मैरिज मैटीरियल**/ *नीलिमा शर्मा,* **सवा सेर**/ *नेहा अग्रवाल 'नि:शब्द'* १३१; **चिट्ठी न कोई संदेश**/ *नीना अंदोत्रा पठानिया,* **चाल**/ *नीरज सुधांशु* १३२; **डिमांड**/ *मुन्नूलाल,* **सगुन**/ *पवन जैन* १३३; **टुकड़े इस्पात के**/ *पूनम डोगरा,* **इंतजाम**/ *सुधीर द्विवेदी* १३४; **कोट**/ *राधेश्याम भारतीय* १३५; **इतिहास के कूड़ेदान से**/ *लक्ष्मी नारायण अग्रवाल* १३६; **अपनी कमाई**/ *अनिता ललित,* **डिजिटल संतोष**/ *सीमा स्मृति* १३७; **ऐसे शिष्य**/ *शील कौशिक,* **प्रतिमा विसर्जन**/ *लता अग्रवाल* १३८; **पिता**/ *राम निवास बाँयला,* **दरकते रिश्ते**/ *सुनीता त्यागी* १३९; **कभी माफ मत करना'''**/ *विनीता राहुरीकर,* **रोशनी**/ *सीमा जैन* १४०; **कपूर**/ *सविता मिश्रा,* **कैनवस**/ *शोभा रस्तोगी* १४१; **छूत के डर से**/ *पवित्रा अग्रवाल,* **इनसानियत**/ *पवन चौहान* १४२; **पहला प्रेम-पत्र**/ *उषा छावड़ा,* **बेटी-बेचवा**/ *पूर्णिमा शर्मा* १४३; **बुरी नजर**/ *राजेंद्र वामन काटदरे,* **जरूरत**/ *सीमा सिंह* १४४; **लिफ्ट**/ *सुमित प्रताप सिंह,* **भविष्य**/ *उपमा शर्मा* १४५; **श्राद्ध**/ *विरेंदर 'वीर' मेहता,* **वर्किंग गर्ल**/ *माला वर्मा* १४६; **मजबूत कंधे**/ *सुधा भार्गव,* **डी.एन.ए. की गवाही**/ *शोभना श्याम* १४७; **उसका प्रश्न**/ *सराफत अली खान,* **काले अंगूर**/ *कुणाल शर्मा* १४८; **दो, और दो**/ *सत्य शुचि,* **टिप**/ *संतोष सुपेकर* १४९

❖

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ १५०
वर्ग पहेली १५१
साहित्यिक गतिविधियाँ १५२

संपादकीय

विमुद्रीकरण और संसद् का शीतकालीन सत्र

जैसी कि आशंका थी, प्रधानमंत्री के विमुद्रीकरण यानी नोटबंदी के विरोध के कारण संसद् का शीतकालीन अधिवेशन व्यर्थ गया। विरोधी दलों में नोटबंदी के विषय में तृणमूल नेता और केजरीवाल चाहते हैं 'रोल बैक', यानी यह निर्णय वापस लिया जाए। यह संभव नहीं है। जेडी(यू) के अध्यक्ष और बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने प्रधानमंत्री के निर्णय का समर्थन किया। उनका कहना है कि कालाधन और भ्रष्टाचार के खिलाफ जो कदम उठाया गया है, उसका वे समर्थन करते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि विमुद्रीकरण के उपरांत बेनामी संपत्ति पर भी कारर्वाई होनी चाहिए, जैसा उन्होंने बिहार में किया। यह प्रधानमंत्री के एजेंडा में है। उनके सहयोगी दल के नेता और अध्यक्ष लालू प्रसाद ने प्रारंभ में विरोध किया, पर बाद में चुप्पी साध ली। ओडिशा के मुख्यमंत्री नवीन पटनायक और उनके दल बीजू जनता दल ने नोटबंदी के कदम का समर्थन किया। मुख्य विरोधी दल कांग्रेस और वामपंथी सी.पी.आई. और सी.पी.एम. प्रारंभ से ही कड़ा विरोध कर रहे थे और संसद् में गतिरोध की रणनीति के रचनाकार थे। बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी इस विषय में बहुत ही मुखर और सक्रिय रहीं। विरोधी दलों को एकजुट करने में ममता बनर्जी की खास भूमिका है। सी.पी.एम. और कांग्रेस ने पिछला विधानसभा चुनाव साथ लड़ा था, उनसे मिलकर ममता बनर्जी ने कहा कि एकजुट होकर हमें विरोध करना चाहिए। सी.पी.एम. विशेषतया इस बात से हिचकिचाता रहा। संक्षेप में कहना यह है कि आपसी मतभेद होते हुए भी संसद् की कारर्वाई रोकने में विरोधी दल सहमत रहे। संसद् परिसर में भी वे धरना देने बैठे। एकजुटता प्रदर्शन के लिए विरोध करनेवाली पार्टियों के सांसदों ने हाथ में हाथ मिलाकर एक मानव शृंखला भी बनाई। समाजवादी दल और बसपा के सदस्य भी इन कारर्वाइयों में शामिल हुए; किंतु जब भारत बंद का प्रस्ताव आया तो दलों ने अलग-अलग रास्ते अपनाए। देश में भारत बंद का कोई विशेष असर नहीं हुआ। ममता की पहल के कारण बंगाल में प्रभाव दिखा, पर वहाँ भी तृणमूल कांग्रेस और सी.पी.एम. अलग-अलग आंदोलन करते रहे। कांग्रेस और कुछ अन्य दलों ने कहा कि हमने भारत बंद का आह्वान नहीं किया था, यह केवल आक्रोश दिवस था, जनता की तकलीफों को उजागर करने के लिए। बसपा इस मामले में उदासीन ही रही। मायावती केवल बयानबाजी ही करती रहीं, पर राज्यसभा में काफी सक्रिय रहीं। उधर बैंकों और एटीएम के सामने लंबी कतारों के होते हुए भी, प्रधानमंत्री के अपने व्यक्तिगत सर्वेक्षण में लोगों ने अपनी कठिनाइयों के होते हुए भी कहा कि मोदी के कालेधन के विरुद्ध अभियान का वे समर्थन करते हैं। कुछ अन्य स्रोतों से भी इस बात की संस्तुति हुई है।

विमुद्रीकरण के एक माह के बाद आजकल इस निर्णय के विविध पक्षों के संबंध में समाचार-पत्रों, टी.वी. में बहुत विचार-विमर्श चल रहे हैं। विरोधी दलों का खयाल है कि विमुद्रीकरण का विरोध संसद् में ही सबसे प्रभावी है, क्योंकि टी.वी. पर जनता देखेगी और सरकारी कामकाज भी बाधित रहेगा। यहाँ तक कि जी.एस.टी. १ अप्रैल, २०१७ से लागू हो सकेगा या नहीं, इसमें भी संशय उत्पन्न हो गया। देश की आर्थिक व्यवस्था और विकास के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण कदम है। सभी देशों ने भारत के इस संभावित कदम की सराहना की, पर यह भी राजनीतिक गतिरोध का शिकार हो गया। राज्यसभा में पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह का छोटा, किंतु बड़ा कटु भाषण विमुद्रीकरण के विरोध में था। उन्होंने अंग्रेजी दैनिक 'हिंदू' में इस विषय पर एक लेख भी लिखा, जो चर्चा में रहा। उनके अनुसार विमुद्रीकरण का निर्णय एक भयंकर भूल है, बड़ी त्रासदी और कुप्रबंधन का बड़ा उदाहरण है। सालों के लिए आर्थिक विकास पिछड़ जाएगा और इस समय साधारण जनता जो तकलीफें भुगत रही है, वह अलग। इस मामले में अर्थशास्त्रियों की अलग-अलग राय है। कुछ समर्थन करते हैं, कुछ विरोध। 'हिंदू' दैनिक पत्र में ही प्रत्युत्तर स्वरूप दो लेख आए, एक डॉ. डे ब्राय का, जो नीति आयोग के सदस्य हैं और दूसरा एस. गुरुमूर्ति का, जो एक आर्थिक और राजनीतिक विषयों के टिप्पणीकार हैं। प्रश्न उठाया गया कि सबसे अधिक कालेधन का सृजन यू.पी.ए. सरकार के दस वर्षों के शासन में हुआ और प्रधानमंत्री की हैसियत से उन्होंने इस ओर क्यों कोई कदम नहीं उठाया था। इस विवाद में अधिक जाने की आवश्यकता नहीं है। विरोधी दल और सरकार दोनों बहस की बात करते रहे, पर वह हो नहीं पाई। राज्यसभा में जैसे ही मनमोहन सिंह बोल चुके, तो कांग्रेस के सदस्यों ने शोर मचाना शुरू कर दिया। वे नहीं चाहते थे कि मनमोहन सिंह के तर्कों का सरकार की ओर से तुरंत कोई उत्तर मिले। राज्यसभा में वे प्रधानमंत्री से क्षमा माँगने की बात करते रहे, चूँकि उन्होंने एक सभा में कहा कि जो विमुद्रीकरण का विरोध कर रहे हैं, क्या वे कालेधन का समर्थन करते हैं। राज्यसभा में विरोध पक्ष यह भी चाहता था कि प्रधानमंत्री बहस के दौरान बराबर उपस्थित रहें, बहस में भाग लें और प्रश्नों का उत्तर दें। प्रधानमंत्री के भाग लेना और बोलना स्वीकार किया। जहाँ तक प्रश्नों का मामला था, सरकारी पक्ष के अनुसार वित्तमंत्री स्पष्टीकरण देते। लोकसभा में कांग्रेस और उनके सहयोगी दल चाहते थे कि प्रधानमंत्री बहस में भाग लें।

उनकी जिद रही कि बहस के बाद वोटिंग होनी चाहिए; हालाँकि वे जानते हैं कि लोकसभा में तो एन.डी.ए. का बहुमत है। सरकार ने उनकी इस माँग को अनावश्यक कहकर नकार दिया। पार्टियाँ राष्ट्रपति के पास शिकायत लेकर जाती रहती हैं, नोटबंदी के मामले में भी गईं, पर राष्ट्रपति ने अपने एक जनभाषण में संसद् की कारवाई रोकने की तीव्र आलोचना की और कहा कि भगवान् के लिए संसद् में अपने कर्तव्य का पालन करिए। लेकिन उसका कोई असर नहीं हुआ। राष्ट्रपति महोदय ने कहा— लोकतंत्र में, यानी डिमोक्रेसी के माने हैं डिस्सेंट (विभिन्न राय रखना), डिबेट (वाद-विवाद) और इसके उपरांत डिसीजन (निर्णय) लेना। संसद् न चलने देना निरर्थक है। उधर भाजपा के वरिष्ठ नेता लालकृष्ण आडवाणी को भी रोष आ गया। उन्होंने कहा कि न लोकसभा की अध्यक्ष और न संसदीय मामले के मंत्री सदन को ठीक से चला पा रहे हैं। आडवाणी ने अपने दल के सदस्यों के शोर-शराबा करने के लिए क्षोभ प्रकट किया। संसद् के चलने के कोई आसार दिख नहीं दिखे। अंतत: पूरा सत्र हंगामे की भेंट चढ़ गया। कांग्रेस उपाध्यक्ष संसद् के बाहर कहते रहे, यदि उन्हें बोलने दिया जाए तो भूचाल आ जाएगा। प्रधानमंत्री का भी कहना है कि उन्हें जनसभाओं में बोलना पड़ रहा है, क्योंकि उन्हें संसद् में बोलने नहीं दिया गया। ऐसा लगता है कि नोटबंदी की राजनीति में कांग्रेस और उसके सहयोगी दल उत्तर प्रदेश, पंजाब या जहाँ २०१७ में विधानसभा के चुनाव होने हैं, तब तक विमुद्रीकरण के मामले को खींचना चाहते हैं। इसमें उनको लाभ दिखाई देता है।

प्रधानमंत्री ने अपने आठ नवंबर के भाषण में कहा था कि विमुद्रीकरण के निर्णय से जनता को शुरू में कठिनाइयाँ होंगी, पर बड़े हित की दृष्टि से जनता को उन्हें बरदाश्त करना चाहिए। विरोधियों के आंदोलनों तथा उकसाने के बावजूद जनता सहयोग कर भी रही है। यह भी सही है कि एक गोपनीय निर्णय में अधिक लोगों से बात कर व्यवस्था बनाने की एक सीमा होती है। विरोध पक्ष को यह समझना है, पर नोटबंदी की राजनीति के कारण वे जान-बूझकर अनबूझे बने हुए हैं। हम फिर भी यह कहना चाहेंगे कि सरकारी प्रबंधकों को अधिक समझदारी तथा कल्पनाशीलता दिखानी चाहिए थी। असंगठित क्षेत्र में काम करनेवाले तथा रोज कमाकर खाने वालों के लिए विशेष व्यवस्था कर सकते थे। इसी प्रकार रबी की बुआई का समय था, उसमें किसान के लिए खाद और बीज की व्यवस्था को ध्यान में रखना था। सब जानते हैं कि शादी-ब्याह का मौसम कब होता है। शादी-समारोहों में पुरोहित, नाई, माली, चूड़ीवाले तथा इसी प्रकार के काम करनेवालों को पचास या सौ रुपए अलग-अलग अवसरों पर देने होते हैं, इस दृष्टि से २००० रुपए का नोट शादी-ब्याह में किस काम का? वैसे भी जब शादी के लिए ढाई लाख देना तय भी हुआ, तो उसमें शर्तें ऐसी डाल दी गईं, जिससे वह सुविधा बेमानी हो गई। लोग शादी का निमंत्रण-पत्र लिये घूम रहे थे, पर बैंक उनसे अदायगी की रसीदें माँग रहे थे।

यह सही है कि बैंकों के कर्मचारियों को बहुत काम करना पड़ा, पर उनकी अदूरदर्शिता और संवेदनशीलता में भी कोई कमी नहीं है। वरिष्ठ नागरिकों, महिलाओं, विद्यार्थियों आदि के लिए विशेष व्यवस्था आवश्यक थी, यह उनको सूझा ही नहीं। वैसे भी नीति-निर्धारण के स्तर पर अच्छा होता, यदि १००० के नोट को पहले अमान्य किया जाता। पुराना ५०० का नोट तो आज हरेक के हाथ में दिखाई देता है, क्योंकि रुपए की क्रयशक्ति ही इतनी गिर गई है। शायद तब जनता को इतना कष्ट नहीं सहना पड़ता, न राजनीतिक दलों को कुछ वर्गों में असंतोष भड़काने का मौका मिलता। एक और बात हम कहना चाहेंगे। ८ नवंबर का भाषण प्रधानमंत्री का जनता को उद्बोधन था। अच्छा होता, यदि सरकार की ओर से व्यवस्था की जाती कि प्रधानमंत्री स्वमेव दोनों सदनों में बयान देते, क्योंकि संसद् प्रारंभ होनेवाली थी, तो संभवत: विरोध इतना मुखर नहीं हो पाता। संसद् का सम्मान हो जाता कि प्रधानमंत्री ने जैसे ही पहला अवसर मिला, संसद् सदस्यों को एक महत्त्वपूर्ण निर्णय के बारे में विश्वास में लिया। जिनके अपने स्वार्थों पर कुठाराघात हुआ, वे तो चिल्लाते ही, पर अन्य साधारण लोग प्रधानमंत्री के इस साहसिक कदम से अधिक आश्वस्त होते। अब आवश्यकता इस बात की है कि जैसा प्रधानमंत्री कह चुके हैं, ३० दिसंबर के बाद से हालात सामान्य होने चाहिए।

विमुद्रीकरण कितना आवश्यक था और कितनी गंदगी हमारे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्थाओं में है, इसका प्रमाण हैं वे समाचार कि कैसे-कैसे अमान्य नोटों को बदलने की कोशिश की जा रही है और किस प्रकार नए नोट चंद लोगों ने चतुराई के साथ हथिया लिये हैं। आठ नवंबर के तुरंत बाद जो बड़े-बड़े मगरमच्छ हैं, जिनके पास अथाह अघोषित धन है, उन्होंने बैंक अधिकारियों से संपर्क साधा। लोग कतारों में इंतजार करते रहे और इधर हेरा-फेरी शुरू हो गई। इसके लिए बैंक अधिकारी ही जिम्मेदार हैं। अमान्य नोट लाखों और करोड़ों की संख्या में नए नोटों में बदले गए। बैंकों के बाहर नोटिस लगा दिया गया कि नकदी समाप्त हो गई। बेचारे आम लोग कतार में खड़े मायूस होकर अगले दिन की आशा दिलों में पालते रहे। इस सब घोटाले में नौकरशाही, पुलिस और नेताओं की भूमिका रही है। दिल्ली, चेन्नई, मुंबई, बंगलुरु, जयपुर, कोलकाता, गुवाहाटी आदि शहरों में जहाँ सोना बरामद हो रहा है, नई मुद्रा भी बरामद हो रही है, केंद्रीय जाँच एजेंसियाँ बराबर निगरानी रखे हुए हैं। सफलता इस पर निर्भर करेगी कि सरकारी अधिकारी कितनी ईमानदारी और प्रतिबद्धता से अपने कर्तव्यों का अनुपालन करते हैं। दिल्ली के एक पॉश इलाके में एक कानूनी फर्म में करोड़ों की रकम मिलना हमारे नैतिक पतन का ही प्रतीक है। बंगलुरु में जनार्दन रेड्डी का दावा था कि उन्होंने बेटी की शादी में जायज खर्चा किया है, पर बाद में समाचार आया कि एक प्रशासनिक अधिकारी ने, जो रेड्डी के इलाके में तहसीलदार रह चुका था, किस प्रकार धन शोधन (मनीलॉण्डरिंग) में रेड्डी की मदद की। इसका विवरण नायक के ड्राइवर ने अपनी आत्महत्या के पहले एक पत्र में दिया, जो पुलिस के पास है। ये विसंगतियाँ और विडंबनाएँ ही लोकतंत्र की जड़ें खोदती हैं। प्रधानमंत्री ने लगातार यह कहा है कि वे जो कर रहे हैं, गरीबों की

भलाई के लिए कर रहे हैं, बेईमानों को बक्शा नहीं जाएगा। आशा है, प्रशासन तंत्र प्रधानमंत्री के इस आश्वासन को पूरा करने की चेष्टा करेगा। जो नए नोट छापों में जब्त किए गए हैं, वे यदि जनता को उपलब्ध हो सकें तो नकदी की तरलता (कैश लिक्युडिटी) का जो अभाव बाजार में है, उसमें कमी आ सकती है। सरकार ने कहा भी है कि जब्त की गई नई मुद्रा को बैंकों के द्वारा लेन-देन में लाया जाएगा।

इसी से जुड़ा एक मुद्दा है इ-कॉमर्स और इ-पेमेंट का। प्रधानमंत्री प्रारंभ से ही तकनीकी के विस्तार पर जोर दे रहे हैं। उन्होंने सर्वसाधारण को सलाह दी है कि साधारण मोबाइल फोन का प्रयोग भी इसके लिए किया जा सकता है। यह प्रावधान भी सरकार करनेवाली है कि मालिक लोग सब कर्मचारियों को नकदी की जगह पैसा उनके बैंक खाते में भेजें। इस तरह हर व्यक्ति पूरा वेतन प्राप्त कर सकता है, कोई हेराफेरी संभव नहीं है। डिजिटल जानकारी के अभियान जोरों से शुरू किए गए हैं। यह उचित है। उनका और अधिक विस्तार होना चाहिए। साथ ही साथ हमें जमीनी हकीकतों का भी ध्यान रखना चाहिए। बैंकिंग सुविधाएँ अभी भी बहुत सीमित हैं। कहीं-कहीं तो हैं ही नहीं। आधे एटीएम काम नहीं कर रहे थे, यह जानकारी भी अमुद्रीकरण के दौरान मिली। बैंकों का फर्ज है कि वे देखें कि एटीएम हमेशा ठीक काम करें। इसमें सुस्ती की आवश्यकता नहीं है। बैंकों के कुछ अधिकारियों की बिचौलियों के साथ साँठगाँठ ने विमुद्रीकरण के कार्यक्रम को बाधित किया, जिससे जनता की कठिनाइयाँ और बढ़ीं। वरिष्ठ लोग, जो किसी प्रकार की डिजिटल सुविधा का प्रयोग नहीं कर रहे थे, वे भी इस पर पुनर्विचार कर रहे हैं। हमारा प्रयास होना चाहिए कि हम कैशलेस इकोनॉमी अर्थात् नकदी विहीन अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ें। इसमें समय लग सकता है। भारतीय समाज की परंपराओं और सीमाओं को हम नजरअंदाज नहीं कर सकते। अशिक्षा भी कम हो रही है, अतएव तकनीकी का प्रयोग धीरे-धीरे आसान हो जाएगा।

प्रधानमंत्री ने जनता की इस समय की तकलीफों को दूर करने का एक उपाय बताया और जो दीर्घकालीन दृष्टि से लाभकर है, किंतु उसे किसी पर थोपने की कोशिश नहीं होनी चाहिए। बहुतों की मान्यता है कि भारत के हालात ऐसे हैं कि यहाँ कभी भी कैशलेस इकोनॉमी नहीं हो सकती। वैसे भी कोई अर्थव्यवस्था पूर्णत: नगदी विहीन हो ही नहीं सकती है। बढ़ती जागरूकता के साथ आदतों में भी परिवर्तन होगा। यह बात ध्यान रखने की है कि प्रधानमंत्री ने भ्रष्टाचार, कालाधन, जाली नोट और अतिवादियों को जो धन प्राप्त हो रहा है, उस पर प्रहार की बात कही थी। कैशलेस इकोनॉमी हमारा लंबा ध्येय है, वहाँ तक धीरे-धीरे सोच-समझकर कदम रखते हुए पहुँचेंगे। उसे विमुद्रीकरण के उद्देश्यों से जोड़ने की आवश्यकता नहीं है। अब यह ध्यान रखना होगा कि कालाधन पैदा न हो। ऐसी नीतियाँ बनें। अभी तक तो कृषि-आय बताकर लोग बच जाते थे। चुनाव सुधार के लिए भी शीघ्रातिशीघ्र प्रयास होना चाहिए। विचार-विमर्श होना चाहिए कि प्रधानमंत्री के सुझाव स्टेट फंडिग को कैसे प्रभावी बनाया जा सकता है। डिजिटल लेन-देन की प्रणाली को प्रोत्साहित करने की निरंतर कोशिश होनी चाहिए, ताकि देश नगदी रहित अर्थव्यवस्था की ओर प्रगति करे; किंतु जिन स्थानों, जिन वर्गों में समय-समय पर नगदी की आवश्यकता है, उन्हें वह उपलब्ध होनी चाहिए। भारत चौदहवीं सदी से लेकर इक्कीसवीं सदी में एक साथ रह रहा है। यह नहीं भूलना चाहिए। मोबाइल बैंकिंग इस समय काफी उपयोगी हो सकती है। इस समय आवश्यकता है कि जितना शीघ्र संभव हो सके, गाँवों, दूरदराज के क्षेत्रों, पहाड़ी इलाकों में नए नोट पहुँचने चाहिए। दिहाड़ी मजदूर, खोमचेवाले तथा असंगठित क्षेत्र के लोगों को जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ रही हैं, उनका निवारण शीघ्र होना चाहिए।

बांग्लादेश में अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न

पिछले दिनों बांग्लादेश में अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न के समाचार आए हैं, उन पर विशेष चर्चा नहीं हुई है। अलग-अलग अवसरों पर जब हिंदुओं ने वहाँ से पलायन किया, उसके विषय में कुछ दस्तावेज हैं। बांग्लादेश के मुक्ति संग्राम में भारत की उल्लेखनीय भूमिका रही है। १९७१ में पाकिस्तान से अलग होने के बाद बांग्लादेश एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में उभरा था, पर १९८८ में एच.एम. इरशाद ने, जो एक सैनिक जनरल थे और बाद में राष्ट्रपति बने, संविधान में परिवर्तन कर उसको इसलामिक स्टेट बना दिया। इस समय वहाँ कट्टरपंथी मानसिकता बहुत बढ़ रही है। केवल हिंदू ही इसके शिकार नहीं हैं, बल्कि अन्य अल्पसंख्यक जैसे ईसाई, बौद्ध, अनीश्वरवादी आदि भी हैं। हिंदू, बुद्धिष्ट, क्रिश्चियन यूनिटी कौंसिल, यूएसए ने हाल ही में अमेरिका में राष्ट्रपति निवास के सामने प्रदर्शन किया और राष्ट्रपति ओबामा से अनुरोध किया कि धार्मिक अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न की समाप्ति हो। उनके संरक्षण के लिए गुहार लगाई गई। अपने ज्ञापनपत्र में अनुरोध किया कि राष्ट्रपति ओबामा नए राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प को अल्पसंख्यकों की उत्पीड़न समस्या से अवगत कराएँ। कुछ समय पहले नेत्रिकोना में हिंदुओं के एक मंदिर पर आक्रमण कर मूर्तियों को तोड़फोड़ दिया गया। इसके पहले भी कई घटनाएँ इस प्रकार की हो चुकी हैं। उपद्रवियों ने न केवल पुजारी वरन् अन्य उपासकों की भी हत्या की है। पुलिस वस्तुत: निष्क्रिय है, केवल औपचारिक काररवाई करती है। भारत सरकार का रुख भी स्पष्ट नहीं है, हालाँकि बांग्लादेश से हमारे संबंध अच्छे हैं। हिंदू-बौद्ध-ईसाई एकता परिषद् के अनुसार अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न के २७३ मामले दर्ज हैं। इसी वर्ष जुलाई में एक कैफे में आतंकवादियों ने २२ लोगों की हत्या कर दी थी, मरनवालों में एक हिंदू लड़की भी थी। बढ़ती हुई धर्मांधता की ओर बांग्लादेश सरकार का ध्यान जाना चाहिए, क्योंकि वह उनके लिए भी जानलेवा हो सकती है। बांग्लादेश की प्रधानमंत्री बेगम शेख हसीना भारत आनेवाली थीं। मुक्ति संग्राम में भाग लेनेवाले बहादुरों का सम्मान भी करनेवाली थीं, पर उनकी भारत यात्रा फरवरी के लिए टल गई है। भारत सरकार को इस मामले को गंभीरता से उठाना चाहिए। बांग्लादेश स्थित भारत के उच्चायुक्त को भी अधिक सक्रिय होना चाहिए। इस विषय में भारत के मुसलिम बुद्धिजीवियों और नेताओं की भी कोई

प्रतिक्रिया देखने को नहीं मिली। एक टिप्पणीकार के अनुसार, दो दशकों में हालात इतने बिगड़ चुके हैं कि शायद ही कोई हिंदू बांग्लादेश में रह पाए।

राष्ट्रगान से नाराजगी/उदासीनता क्यों?

न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा और न्यायमूर्ति अमिताभ राव की पीठ के सिनेमाघरों में फिल्म शुरू होने के पहले राष्ट्रगान बजाए जाने के आदेश के विरुद्ध कुछ जानेमाने लोगों ने एक बाबेला मचा दिया। किसी ने इसको अति राष्ट्रवाद की संज्ञा दी और किसी ने इसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विरुद्ध कहा। तथाकथित कुछ उदारवादियों ने इसे देश में बढ़ती हुई असहिष्णुता का ही एक और उदाहरण बताया। सर्वोच्च न्यायालय की पीठ के निर्णय का केवल तात्पर्य यही था कि प्रत्येक देश अपने राष्ट्रगान के प्रति सम्मान प्रकट करता है। जब राष्ट्रगान खड़े होकर गाया जाता है और अपेक्षा रहती है कि शांति का वातावरण रहे। उस समय अन्य प्रकार की क्रियाएँ वर्जित होती हैं। अपेक्षा रहती है कि राष्ट्रगान के प्रारंभ होते ही शांत रहें और लोगों का आना-जाना बंद हो। राष्ट्रगान देश की अस्मिता का प्रतीक है। आजादी के बाद संविधान बनाते समय जो वातावरण था, उसमें अधिक जोर व्यक्ति के अधिकारों पर था, हालाँकि गांधीजी उस समय भी बार-बार दोहरा रहे थे कि अधिकार और कर्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इंदिरा गांधी द्वारा घोषित आपातकाल में संविधान में जो संशोधन हुए, उसमें नागरिकों के कर्तव्य का एक अध्याय है। देर आयद दुरुस्त आयद। उसी में शामिल है राष्ट्रगान के प्रति आदर। प्रस्तावना में दो शब्द सोशलिस्ट और सेकुलर भी जोड़े गए, जिनको विधान निर्मात्री सभा ने स्वीकार नहीं किया था, क्योंकि उनके अर्थ अलग-अलग निकाले जाते हैं, किंतु उन शब्दों की भावना संविधान में व्याप्त है। आपातकाल की समाप्ति पर बहुत से संशोधन निरस्त किए गए, किंतु नागरिक अधिकारों के अध्याय को ज्यों-का-त्यों रखा गया। संविधान संशोधन में इन कर्तव्यों का अनुपालन कैसे होगा, इसका निरूपण नहीं है। कर्तव्यों का उल्लंघन करने पर कौन सजा देगा और क्या सजा होगी, उसका उल्लेख भी नहीं है। इस संशोधन द्वारा अच्छा नागरिक कैसा होना चाहिए, मात्र यह परिलक्षित होता है। क्रियान्वयन कैसे हो, इसके लिए अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा की अध्यक्षता में एक समिति बनाई थी, जिसने अपनी रिपोर्ट तैयार की, पर वाजपेयी सरकार का कार्यकाल समाप्त हो गया और बाद में यूपीए सरकार ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। जस्टिस वर्मा समिति की सिफारिशों के कार्यान्वयन की आवश्यकता है, ताकि हमारे देश में कर्तव्यों की संस्कृति पैदा हो। यह दुरूह और लंबा कार्य है। इसका प्रारंभ शिक्षा से होना चाहिए। मोदी सरकार को इस ओर भी ध्यान देना चाहिए।

राष्ट्रगान चुनने की लंबी कहानी है, क्योंकि स्वतंत्रता संग्राम तो बंकिम बाबू के वंदेमातरम् से उद्वेलित हुआ था। आरकेस्ट्रा की धुन की सुगमता के कारण टैगोर का 'जनगण मन' राष्ट्रगान घोषित हुआ। यह भी कहा गया कि वंदेमातरम् राष्ट्रगीत है और वह उतना ही सम्मानीय है। अब राष्ट्रगान के प्रति आदर व्यक्त करने का एक प्रकरण सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ने शुरू किया तो उस पर भी छींटाकशी होने लगी। कैसी विडंबना है कि तरह-तरह तर्कों के द्वारा उसका भी विरोध हो रहा है। हम देशप्रेम की भावना को इस प्रकार से नकार रहे हैं। मजे की बात है कि यह निर्णय अभी अंतरिम है, फरवरी में सर्वोच्च न्यायालय पुन: सुनवाई करेगा। हम देखते हैं कि राष्ट्रपति की उपस्थिति में जो आयोजन होते हैं, राष्ट्रगान के समय अक्षम व्यक्ति बैठे रहते हैं, इस पर कोई एतराज नहीं करता। सवाल तो है मूलत: राष्ट्रगान के प्रति आदर की अभिव्यक्ति का। आवश्यकता इस बात की है कि देश में कर्तव्यों की संस्कृति किस प्रकार उत्पन्न हो। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के विरोधियों को भगवान् सम्मति दे, यही हमारी प्रार्थना है। किसी भी प्रकार का नागरिक अनुशासन उन्हें व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन लगता है। युवा वर्ग प्रसन्न है कि सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय को उचित माना है।

रामानंद चटर्जी और मॉर्डन रिव्यू

प्रख्यात पत्रकार रामानंद चटर्जी के संबंध में आज की पीढ़ी अनजान है। वे कोलकाता विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के शिक्षक रहे। बाद में कायस्थ पाठशाला इलाहाबाद, जो विश्वविद्यालय से संबद्ध है, के प्रिंसिपल रहे। १९०८ में वे कोलकाता वापस चले गए। १९०७ में उन्होंने अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'द मॉडर्न रिव्यू' का प्रकाशन प्रारंभ किया। रामानंद बाबू का १९४३ में देहांत हो गया, पर मॉडर्न रिव्यू उनके सुपुत्र केदारनाथ चटर्जी ने १९६५ तक चलाया। यह अपने ढंग का मासिक पत्र था। इसकी तुलना इंग्लैंड की १९वीं सदी की कुछ मैगजीनों से की जा सकती है। भारत में उस समय पत्रकारिता व्यवसाय नहीं, एक मिशन था। मॉडर्न रिव्यू की महत्ता का अनुमान इस बात से होता है कि इसमें देश-विदेश के विद्वान् अपनी रचनाएँ प्रेषित करते थे। वास्तव में मॉडर्न रिव्यू हमारे स्वतंत्रता संग्राम का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय समस्याओं पर रामानंद बाबू अपनी विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियाँ लिखते थे। वह पत्र किसी दल का नहीं था, बल्कि स्वराज को समर्पित था। सिस्टर निवेदिता, लाला लाजपतराय, महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ टैगोर, लाला हरदयाल, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचंद्र बोस, सी.एफ. एंड्रूज, रोमा रोलाँ, एच.वी. रुदरफोर्ड, संत निहालसिंह आदि की रचनाएँ इसमें प्रकाशित हुई हैं। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक विषयों के साथ-साथ साहित्य, संस्कृति, कला आदि पर रंगीन चित्रों के साथ लेख छपते रहे। गत वर्ष रामानंद बाबू की १५०वी वर्षगाँठ थी। स्मरणस्वरूप मॉडर्न रिव्यू में छपी रचनाओं का एक छोटा सा संचयन प्रकाशित हुआ है। वह संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है, फिर भी वह रामानंद बाबू की याद दिलाता है। इंडियन कौंसिल ऑफ सोशल रिसर्च द्वारा प्रयास होना चाहिए कि विषय वार चयन निकाले जाएँ, जो शोध के लिए अत्यंत उपयोगी होंगे। अन्य संबंधित परिषदें भी इसमें सहयोग दे सकती हैं।

रामानंद चटर्जी बँगला भाषा में 'प्रवासी' पत्रिका निकाल ही रहे थे, जो अत्यंत लोकप्रिय थी। बाद को हिंदी में 'विशाल भारत' का

प्रकाशन भी प्रारंभ किया। हिंदी साहित्य के पाठक जानते हैं कि उसके प्रथम संपादक बनारसीदास चतुर्वेदी थे और उसके बाद अज्ञेयजी।

'मॉडर्न रिव्यू' की तरह देश में दो मैगजीन १९४७ के पहले निकल रही थीं। एक पटना से 'हिंदुस्तान रिव्यू' प्रकाशित होता था डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा के संपादकत्व में। दूसरी थी 'इंडियन रिव्यू' मद्रास से, जिसके संपादक थे जी.ए. नटेशन। उन्होंने होम रूल तथा बहुत सा अन्य साहित्य राष्ट्रीय आंदोलन और उनके कर्णधारों के बारे में प्रकाशित किया था। १९४७ के बाद ये दोनों भी तिरोहित हो गए। राष्ट्रीय आंदोलन के लिए शायद अपना दायित्व पूरा कर उन्होंने आज की चमकीली-भड़कीली व्यावसायिक पत्रिकाओं के लिए रास्ता प्रशस्त कर दिया। मॉडर्न रिव्यू और अन्य दोनों मैगजीनों का व्यापक प्रभाव था, चाहे उसके खरीदनेवाले कम ही रहे हों, आज की स्थिति को देखते हुए इन पत्रिकाओं का प्रभाव क्षेत्र विस्तृत ही था। बौद्धिक वर्ग, वकील, शिक्षक, सरकारी अधिकारी तक सभी जानना चाहते थे कि किसी विषय पर ये क्या लिख रही हैं।

निवेदिता और कार्नीलिया का १५०वाँ जयंती वर्ष

स्वाधीनता संग्राम की दो अद्‌भुत महिलाओं की १५०वी वर्षगाँठ है। एक हैं भगिनी निवेदिता और दूसरी हैं कार्नीलिया सोराबजी। भगिनी निवेदिता तो अपने गुरु स्वामी विवेकानंद के निर्देश पर बिल्कुल भारतीय हो गईं। एक मित्र से जानकारी मिली कि शारदा मठ, बेलूर बड़े जोर-शोर से इस पर आयोजना की तैयारी कर रहा है। साहित्य अमृत भी इनके कुछ जाने-अनजाने पहलुओं को प्रस्तुत करेगा। पारसियों की इस देश को अभूतपूर्व देन है। पारसी महिलाओं में मैडम कामा की सेवाओं से थोड़ा बहुत हम सब परिचित हैं और साहित्य अमृत में इन पर चर्चा भी हुई है। कार्नीलिया सोराबजी का जीवन संघर्ष का जीवन रहा। कैसी कठिनाइयों के रहते हुए उन्होंने भारतीय महिलाओं की स्थिति सुधारने और उनके सशक्तीकरण के लिए क्या-क्या प्रयास किए, अगले अंकों में यह जानकारी प्रस्तुत करेंगे। भारतरत्न महान् गायिका सुव्वालक्ष्मी का शती वर्ष प्रारंभ हो गया है। इसकी चर्चा इस स्तंभ में पहले हो चुकी है, पर कुछ और सामग्री प्रस्तुत करने का इरादा है। हिंदी के मूर्धन्य कवि त्रिलोचन शास्त्री का भी यह शतीवर्ष है। साहित्य अमृत का प्रयास रहेगा कि आगे के अंकों में उनके जीवन और कृतित्व पर रोशनी डालने वाली सामग्री प्रस्तुत की जाए।

२६ जनवरी को प्रतिवर्ष की तरह गणतंत्र दिवस का आयोजन हो रहा है। सीमा के रक्षक सैनिक और अर्धसैनिक बलों के जवानों की शहादत कभी भुलाई नहीं जा सकती। उनकी स्मृति में उनके प्रति हमारा श्रद्धावनत नमन। अगला वर्ष भी कठिनाइयों भरा हो सकता है। पाकिस्तान का नीति और व्यवहार कैसा होगा, यह उस पर निर्भर करेगा। पाकिस्तान सेना के नए अध्यक्ष ने पद सँभालने के बाद कहा कि नियंत्रण रेखा पर शीघ्र सुधार होगा, यद्यपि उसी रोज निवर्तमान सेना अध्यक्ष जनरल खलील शरीफ जाते-जाते भी अपनी हरकतों से बाज नहीं आए। नए सेना अध्यक्ष जनरल वाजवा ने आई.एस.आई. का एक नया मुखिया बनाया है। वह स्वयं भी नियंत्रण रेखा की समस्याओं से परिचित हैं। उनका कैसा रुख होगा, यह देखना है। ११ दिसंबर, २०१६ को केंद्रीय गृहमंत्री राजनाथ सिंह ने देश के लिए बलिदान हुए शहीदों की स्मृति में कठुआ में हुए कार्यक्रम में आपने भाषण में कहा कि पाकिस्तानी छद्‌म युद्ध की शुरुआत जनरल जिया ने की थी, वह अभी भी जारी है। लेकिन वास्तव में पाकिस्तान किसी तरह जम्मू कश्मीर को भारत से अलग कर बांग्लादेश के मुक्ति संग्राम में भारत ने जो भूमिका अदा की, उसका बदला लेना चाहता है। अपने पिछलग्गुओं के द्वारा बराबर वह अशांति फैलाने की चेष्टा करता है। शिक्षा भविष्य की उन्नति का द्वार है, किंतु पाकिस्तान के दलालों ने करीब तीस स्कूलों की इमारतें जला दीं। जम्मू और कश्मीर के लड़के-लड़कियाँ पढ़ना चाहते हैं, पर पाकिस्तान की मदद से कुछ आतंकवादी इसमें रोड़े अटकाने की कोशिश करते हैं। वे उन्हें जहालत में ही रखना चाहते हैं। जनता सामान्य स्थिति चाहती है। इसीलिए गृहमंत्री को चेतावनी देनी पड़ी कि धर्म के आधार पर और दो राष्ट्र के सिद्धांत को उभारकर पाकिस्तान अब सफल नहीं हो सकता; वह इस प्रकार की कोशिश करेगा तो स्वयं पाकिस्तान के दस टुकड़े हो जाएँगे, क्योंकि उत्पीड़न के कारण वहाँ भारी क्षेत्रीय आक्रोश है। यह पाकिस्तान को धमकी नहीं है, एक कटु सत्य है, पर भारत के लिए भी यह एक सतर्कता की चुनौती है और देश की रणनीति को चुनौती है कि शीघ्रातिशीघ्र जम्मू कश्मीर में किस प्रकार सामान्य स्थिति बन सके। आज की परिस्थितियों में देश की सीमाओं की रक्षा करनेवाले जवानों के प्रति हमारा विशेष दायित्व है। हर प्रकार से उनका मनोबल मजबूत बना रहना चाहिए।

हमें प्रसन्नता है कि नवंबर मास का साहित्य अमृत बाल साहित्य पर केंद्रित था, सुधी पाठकों को पसंद आया। कई विद्वान् पाठकों ने नवंबर अंक को 'बाल विशेषांक' की संज्ञा दी। नवंबर अंक में प्रयास यह था कि बाल कथाओं के साथ-साथ कुछ लेख बाल साहित्य के रूप और स्वभाव का विवेचन भी करें। यह सही है कि बँगला भाषा की तुलना में हिंदी में बाल साहित्य बहुत कम है और बाल साहित्यकारों को उनका उचित स्थान प्राप्त नहीं हो रहा है। आवश्यकता है कि बाल साहित्य के महत्त्व को साहित्यिक स्तर पर पहचाना जाए।

हिंदी साहित्य की एक अन्य विधा 'लघुकथा' को उजागर किया जाए तो उत्तम होगा, ऐसा विचार हुआ। इसलिए जनवरी २०१७ का अंक 'लघुकथा विशेषांक' के रूप में आपके सम्मुख है। आशा है आपको रुचिकर लगेगा। इस अंक का संयोजन-संकलन-आकल्पन सुप्रसिद्ध लघु कथाकार श्री बलराम अग्रवाल तथा बलरामजी ने किया है; इस श्रमसाध्य कार्य और उनके अतिशय सहयोग के लिए हम हृदय से आभारी हैं।

नववर्ष तथा गणतंत्र दिवस की हार्दिक बधाई व सबके उत्कर्ष-उन्नयन हेतु मंगलकामनाएँ।

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी)

प्राचीन लघुकथाएँ

कथा-कथन की शक्ति

चलते-चलते वसुदेव को थका हुआ जान, अंशुमान ने कहा, ''आर्यपुत्र! क्या मैं आपको ले चलूँ? यदि नहीं, तो आप मुझे ले चलिए।''

वसुदेव ने सोचा—'थकान के कारण पैर लड़खड़ा रहे हैं, ऐसी हालत में यह मुझे कैसे लेकर चल सकता है? यह राजपुत्र सुकुमार है। मैं ही इसे क्यों न ले चलूँ?' यह सोच उसने कहा, ''आओ मित्र! चढ़ जाओ, मैं तुम्हें लेकर चलता हूँ।''

अंशुमान ने हँसकर उत्तर दिया, ''आर्यपुत्र! इस तरह किसी को मार्ग में लेकर नहीं चला जाता। यदि कोई थकान के कारण थके-माँदे व्यक्ति को रोचक कथाएँ सुनाता चले, तो इसे ले चलना कहते हैं। इससे थकान दूर हो जाती है।''

वसुदेव ने कहा, ''ऐसी बात है तो कोई रोचक कथा सुनाओ। तुम्हीं इस कला में कुशल हो।''

(संघदासगणि वाचक रचित प्राचीन जैन ग्रंथ 'वसुदेवहिंडी' से; इस ग्रंथ के मध्य खंड के रचयिता धर्मसेन हैं।)

बातचीत

साधु : तुम आज भिक्षा के लिए नहीं गई?

साध्वी : आर्य! मेरा आज उपवास है।

साधु : क्यों?

साध्वी : मोह का इलाज कर रही हूँ। तुम्हारा क्या हाल है?

साधु : मैं भी उसी का इलाज कर रहा हूँ। तुमने क्यों प्रव्रज्या (संन्यास-दीक्षा) ग्रहण की?

साध्वी : पति के मर जाने से। तुमने?

साधु : मैंने पत्नी के मर जाने से।

साधु ने उसे स्नेह भरी नजर से देखा।

साध्वी : क्या देख रहे हो?

साधु : दोनों की तुलना कर रहा हूँ। हँसने, बोलने और सौंदर्य में तुम मेरी पत्नी से बिल्कुल मिलती-जुलती हो। तुम्हारा दर्शन मेरे मन में मोह पैदा करता है।

साध्वी : मेरा भी यही हाल है।

साधु : वह मेरी गोद में सिर रखकर मर गई। यदि वह मेरी अनुपस्थिति में मरती तो शायद देवताओं को भी उसके मरने का विश्वास न होता। तुम वह कैसे हो सकती हो?

(जैन ग्रंथ 'निशीथविशेषचूर्णी' से)

भेड़िए का व्रत

एक भेड़िया था। वह गंगा के किनारे एक बड़े से पत्थर पर लेटा रहता। शाम के झुटपुटे में नदी किनारे जानवर अपनी प्यास बुझाने आया करते। वे भेड़िये को देख नहीं पाते थे। भेड़िया दबे पाँव उनके पीछे जाकर पानी पीते बेखबर जानवर को अपना शिकार बना लेता। उसको खाकर पत्थर पर आराम से लोट लगाता। पर उसका यह सुख ज्यादा दिन न रहा।

एक बार बहुत गरमी पड़ने से हिमालय पर्वत की जमी बर्फ पिघलने लगी। गंगा का पानी बढ़ने लगा और पत्थर को चारों तरफ से पानी ने घेर लिया। जानवरों ने किनारे पर पानी पीने के लिए आना बंद कर दिया। अब भेड़िया न शिकार कर पाता और न ही पेट में कूदते चूहों को शांत कर पाता।

एक दिन वह सुबह से ही भूखा था। अपने को समझाते हुए बोला, ''खाने को आज कुछ न मिले तो कोई बात नहीं। मैं सोच लूँगा कि मैंने व्रत किया है; और फिर सारे दिन व्रत ही रखूँगा।''

एक बकरी के बच्चे ने उसकी बात सुन ली। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ कि खून चूसनेवाला, मांस का लालची, खाना-पीना छोड़कर व्रत करेगा!

उसने भेड़िये को तंग करने का मन बनाया। उसका ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए वह जोर से मैं-मैं ऽ चिल्लाया। भेड़िए ने आँख उठाकर उसको देखा तो उसके मुँह में पानी भर आया। झूमता हुआ मन में बोला, आज मुझे सारे दिन भूखे रहने की क्या जरूरत है, जबकि मेरे सामने यह मेमना खड़ा है। व्रत कल कर लूँगा। यों सोचते हुए उसने उछलकर मेमने को पकड़ना चाहा, पर वह उछलकर दूसरी जगह जा खड़ा हुआ। भेड़िये ने दुबारा और जोर से छलाँग मारी, मगर शैतान मेमना बहुत दूर जाकर नाचने लगा और हँसते हुए बोला, ''मुझे पकड़ो भेड़िया मामा, तो जानूँ!''

यह सुन भेढ़िया उसके पीछे कुलाँचें मारने लगा। भगा-भगाकर मेमने ने उसे थका दिया। आखिरकार थककर वह एक पत्थर पर चित्त हो गया।

मजबूरी में उसने उससे यह कहकर संतोष करना चाहा, ''तू मुझे न मिला न सही! समझ लूँगा कि आज मेरा व्रत ही है।''

दूर खड़ा मेमना उसका मजाक उड़ाने से न चूका और बोला, ''क्या कहा, तू व्रत करेगा? इसके लिए जीभ को काबू में रखना होता है मामा। तेरे जैसे कच्चे इरादोंवाले कोई भी काम पूरा नहीं कर सकते।''

(जातक कथा पुनर्लेखन : सुधा भार्गव)

अथ कृष्णदास ब्राह्मण : उनकी वार्त्ता

कृष्णदास उस गाँव में रहते, पर अकिंचन रहते। एक समय दस-पंद्रह वैष्णव श्रीमहाप्रभु के दर्शन के लिए अडेल को जाते हुए उस गाँव में आए, जिसमें कृष्णदास रहते थे। वे कृष्णदास के घर आए तो उस समय वे घर पर नहीं थे। किसी कार्य से तीन कोस दूर गए हुए थे। घर में उनकी स्त्री थी। स्त्री ने उन वैष्णवों को साष्टांग किया। श्रीकृष्ण स्मरण कहकर बड़े आदर-सम्मान के साथ उन्हें घर में बैठाया। फिर मन में सोचने लगी कि अब क्या करूँ? उसे याद आया कि वह बनिया रोज-रोज टोका करता है कि जो तू मुझसे मिलेगी, जो माँगेगी वह दूँगा। सो आज उससे सीधा-सामग्री लाऊँ। यह सोचकर वह स्त्री चल पड़ी और बनिये की दुकान पर जा पहुँची। बनिये ने उसे टोका तो स्त्री ने उससे कहा, मैं तुझसे कल मिलने आऊँगी। आज तो जो सौदा मुझे चाहिए, वह दे। तब बनिए ने कहा, जो तू मुझसे वादा करे तो मानूँ। स्त्री ने वादा कर दिया। तब उसे जो सामान चाहिए था, बनिये ने उसे दे दिया। उसे लेकर वह घर आई। घर आकर रसोई करी। श्रीठाकुरजी को भोग समर्पित किया। समयानुसार पूजा-पाठ करने के बाद वैष्णवों को महाप्रसाद खिलाया।

जब सभी अच्छी तरह खा चुके तब कृष्णदास घर आए। वैष्णवों से मिले। दंडवत् करके भीतर गए। स्त्री से बोले, क्या सुन रहा हूँ, वैष्णवों को महाप्रसाद खिलाया है? स्त्री ने कहा—हाँ, प्रसाद तो खिलाया है। कृष्णदास ने पूछा, सामग्री कहाँ से लाई? कैसे इंतजाम किया? तब जैसे-जैसे हुआ था, उसने सब कह सुनाया और बोली, यह बनिया रोज मुझे टोकता था कि तू मुझसे एक दिन मिल, जो तू कहेगी, सो दूँगा। तो आज उससे कौल-करार करके सीधा-सामग्री लाई हूँ। यह सुनकर कृष्णदास स्त्री पर बहुत प्रसन्न हुए। उन दोनों ने भी महाप्रसाद लिया। इसके बाद कृष्णदास वैष्णवों के पास आ बैठे। सारी रात भगवद्वार्त्ता करते बीत गई। जब सवेरा हुआ तो सब वैष्णव विदा होकर चले। कृष्णदास थोड़ी सी दूर उन्हें पहुँचाने को गए, फिर अपने घर लौट आए। स्नान करके श्रीठाकुरजी की सेवा करके मंदिर को चले गए। उनके बाद स्त्री ने रसोई की। श्रीठाकुरजी को भोग समर्पित किया और महाप्रसाद उठाकर रख दिया। शाम को जब कृष्णदास घर आए तब उन दोनों ने उस महाप्रसाद को लिया। उसके बाद कृष्णदास ने अपनी स्त्री से कहा, कल जो उस बनिये से तुमने कौल किया था, सो वह तुम्हारा रास्ता देखता होगा। इसलिए उस कौल को पूरा करने में ही भलाई है। तब वह स्त्री उबटन करके नहाई और स्त्री-सुलभ सभी शृंगार करके चलने लगी।

वर्षा के दिन थे, सो बारिश होने लगी और रास्ते में कीचड़ हो गई। इसलिए कृष्णदास ने अपनी स्त्री से कहा, तू मेरे कंधे पर बैठ, मैं पहुँचा आता हूँ। रास्ते में कीच बहुत हो गई है। तेरे पैर कीच में भर जाएँगे तो वह बनिया तेरा अनादर करेगा। यों कह उस स्त्री को अपने कंधे पर चढ़ाकर ले चला और बनिये की दुकान के आगे उसने स्त्री को उतार दिया। उस स्त्री ने बनिये को पुकारकर कहा, किवाड़ खोल। उस बनिये ने किवाड़ खोल दिए और स्त्री को भीतर ले लिया। फिर उसके पैर धुलवाने के लिए वह पानी लेकर आया और बोला, पैर धो लो। स्त्री बोली, मेरे पैरों में कीचड़ नहीं लगा है। बनिया बोला, रास्ते में तो कीच बहुत है, तेरे पैर कोरे कैसे रह गए? स्त्री बोली, इससे तुझे क्या? तू अपना काम कर। बनिया बोला, यह तो बताना ही पड़ेगा। तब स्त्री ने कहा, मेरा पति अपने कंधों पर चढ़ाकर लाया था। यह सुनकर बनिये को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उससे सारा किस्सा पूछा। उस स्त्री ने तब सारा किस्सा उसे बता दिया। उसे सुनकर बनिया अपने मन में खुद को धिक्कारने लगा और कहने लगा—धन्य है तुम्हारा यह जीवन, जिनका मन इतना सच्चा है और धिक्कार है मेरे जीवन को। फिर दोनों हाथ जोड़कर उसने दंडवत् की और कहा, मेरे अपराध को क्षमा करो और मेरे ऊपर कृपा करो। मेरी तुम बहन हो। यों कहकर उस बनिये ने स्त्री को कपड़े पहनाकर उसके घर पहुँचा दिया और कृष्णदास से बहुत विनती करता बोला, मेरा अपराध क्षमा करो। यह मेरी बहन है और तुम मेरे पूज्य। कृष्णदास ने कहा, तेरा कोई कसूर नहीं, तू संकोच मत कर। वह बनिया फिर महाप्रभु का सेवक हुआ। नाम समर्पित किया। उसका नाम श्रीआचार्यजी महाप्रभु ने ज्ञानचंद रखा। बहुत बड़ा भगवद्भक्त बना। यह सब कृष्णदास की संगति से संभव हुआ। इसलिए 'संगति करनी हो तो भगवद्भक्त की करो, जिससे भगवद्भक्ति पैदा हो।' वह बनिया सदा कृष्णदास के सामने झुका रहता। उनकी स्त्री से बहन कहता। इस तरह वे कृष्णदास श्रीमहाप्रभु के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हैं; इसलिए इनकी वार्ता कहाँ तक लिखें।

(गोस्वामी गोकुलनाथ (१५५१-१६४७ ई.) कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से, प्रसंग १ : वैष्णव ८३, ब्रजभाषा से खड़ी बोली में रूपांतरण : बलराम अग्रवाल)

प्रारंभिक खड़ी बोली की एक लघुकथा

एक यशी वकील वकालत का काम करते-करते बुड्ढा होकर अपने दामाद को यह काम सौंप के आप सुचित हुआ। दामाद कई दिन काम करके एक दिन आया ओ प्रसन्न होकर बोला, ''हे महाराज! आपने जो फलाने का पुराना वो संगीन मोकदमा हमें सौंपा था, सो आज फैसला हुआ।''

यह सुनकर वकील पछता करके बोला, ''तुमने सत्यानाश किया। उस मुकदमे से हमारे बाप बढ़े थे, तिस पीछे हमारे बाप मरती समय हमें हाथ उठाकर के दे गए ओ हमने भी उसको बना रखा ओ अब तक भलीभाँति अपना दिन कटा ओ वही मुकदमा तुमको सौंपकर समझा था कि तुम भी अपने बेटे-पोते-परोतों तक पलोगे, पर तुम थोड़े से दिनों में उसे खो बैठे।''

('उदंत मार्तंड' (१८२६ ई.) से आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा हिंदी साहित्य का इतिहास में उद्धृत)

पहले कौन ?

● वृंदावनलाल वर्मा

मेवाड़ और मारवाड़ (जोधपुर) में परस्पर बहुत वैर बढ़ गया था। बात लगभग तीन सौ वर्ष पुरानी है।

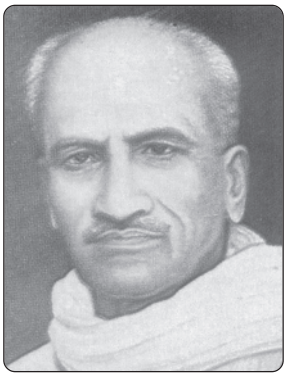

मेवाड़ की सीमा पर जोधपुर राज्य का एक गढ़ था। गढ़ खँडहर हो गया है और खँडहरों का नाम क्या! जोधपुर अपनी आन पर था और मेवाड़ अपनी बान पर। उस गढ़ पर दोनों का अपना-अपना दावा था। एक का पाँच सौ वर्ष पुराना तो दूसरे का सात सौ वर्ष पुराना। गढ़ का स्वामित्व कभी मेवाड़ के हाथ में रहा, कभी जोधपुर के। गढ़ का और कोई महत्त्व न था।

जब उस वर्ष मेवाड़ का एक आक्रमण असफल रहा, तब मेवाड़ के महाराणा बहुत उदास हो गए। दरबार किया। सामंत-सरदार इकट्ठे हुए। महाराणा ने अपनी वेदना व्यक्त की। तुरंत दो सरदार खड़े हो गए। एक सिसौदिया, दूसरा हाड़ा।

सिसौदिया सरदार ने कहा, 'मुझे बीड़ा बख्शा जावे। मैं उस गढ़ में पहले प्रवेश करूँगा।' इसका नाम रणवीरसिंह था।

उसी क्षण हाड़ा सरदार भी बोला, 'पहले मुझे। मैं पहले पहुँचूँगा गढ़ के भीतर।' इसका नाम गजराजसिंह था।

दोनों में गढ़ पर पहले विजय प्राप्त करने की होड़ लग गई। महाराणा की वेदना तो चली गई, परंतु किस सरदार को पहले बीड़ा उठाने दें, इस कठिन समस्या ने उन्हें परेशान कर दिया।

अंत में महाराणा ने निर्धार किया, 'दोनों एक साथ बीड़ा उठा लो। गढ़ में जो पहले प्रवेश कर लेगा, विजय का टीका उसी के माथे पर लगाया जावेगा।'

दोनों ने मान लिया और सोने के थाल में से एक साथ पान के बीड़े उठा लिये। दोनों सरदारों ने अपनी-अपनी तैयारी को चरमता की सीमा पर पहुँचा दिया। कौन पहले पहुँचकर गढ़ का फाटक तोड़े और भीतर प्रवेश करे, इस होड़ में दोनों कुछ समय उपरांत एक साथ गढ़ के निकट जा पहुँचे। जोधपुर की ओर से भी तैयारी थी; परंतु उस प्रचंड आक्रमण की जोधपुर के गढ़ नायक को आशंका न थी, जिसका सामना उसे करना पड़ा। मेवाड़ के उन सरदारों ने गढ़ को चारों ओर से ऐसा घेरा कि जोधपुर से कुमुक का प्राप्त करना असंभव हो गया; और एक दिन आया, जब गढ़ के फाटक पर ही जोर-शोर का युद्ध हो पड़ा। तोपों तथा बंदूकों की धाँय-धाँय और साँय-साँय कुछ देर के बाद शिथिल पड़ गई। इधर तलवारें चमकने लगीं, उधर गढ़ के ऊपर से निवारण के उपाय किए जाने लगे।

कवच, झिलम और टोप से ढके रणवीर सिसौदिया और गजराज हाड़ा ने अपने-अपने हाथी को गढ़ का फाटक तोड़ने के लिए एक साथ जा अड़ाया। दोनों के हाथी, जो लोहे के मोटे तवों से प्रच्छन्न थे, अपने-अपने सरदार के जोश का साथ दे रहे थे। सरदारों की होड़ ने परस्पर द्वेष का रूप पकड़ा। एक ही राज्य, एक ही सेना और एक ही उद्देश्य के होते हुए भी वे एक-दूसरे के अविलंब विनाश की कामना कर उठे।

धाड़! धाड़!! गजराज के हाथी ने प्रचंड वेग और बल के साथ फाटक पर ठोकरें दीं। रणवीर ने भी अपने हाथी से यही कराना चाहा।

धाड़! धाड़!! धाड़!!! गजराज के हाथी ही ने पागल-सा होकर ठोकरें दीं और फाटक टूट गया। गजराज ने मुड़कर तिरस्कार की दृष्टि से रणवीर को छेद-सा डाला। गजराज का हाथी गढ़ के भीतर प्रवेश करना ही चाहता था कि उसके कानों में सिसौदिया के शब्द पड़े—'मैं पहले!' देखा तो रणवीर के हाथी पर रणवीर का रुंड मात्र था—तड़पता हुआ रुंड और हाथ से छूटने ही वाली लहूलुहान तलवार। हाड़ा ने सामने जो देखा तो हाथी के आगे सिसौदिया का कटा हुआ सिर। उसपर टोप नहीं था। सिसौदिया ने अपना ही सिर अपने हाथ से काटकर उचटा दिया था। इस प्रकार मरकर भी उसने आगे रहने का गौरव पाना चाहा।

जब विजय के टीके का समय आया, महाराणा के दरबार भर में प्रसन्न कोई नहीं दिखलाई पड़ रहा था। महाराणा भी खिन्न मन थे और मन-ही-मन सिसौदिया सरदार के शौर्य की सराहना और अविवेक की भर्त्सना कर रहे थे।

हाड़ा सरदार ने टीका लगवाने से इनकार कर दिया। अब उसके मन में न द्वेष था और न हिंसा। हाड़ा ने विनय की, 'घणीखमा अन्नदाता, जिस माथे पर विजय का टीका लगना चाहिए था, वह तो यहाँ है ही नहीं!'

□

लुटेरे का विवेक

बात बारहवीं शताब्दी के अंत की है। मुहम्मद साम दिल्ली का सुल्तान था और भीम द्वितीय गुजरात का राजा। भीम ने लगभग इकसठ वर्ष राज किया। वह सिद्धांत पर चलता था, जिसे सत्रहवीं शताब्दी में छत्रसाल ने यों व्यवहृत और व्यक्त किया था—'रैयत सब राजी रहे,

ताजी रहे सिपाह'। भीम बल-पराक्रम और प्रजा-पालन के लिए एक समान प्रसिद्ध था।

मुहम्मद साम ने गुजरात पर आक्रमण किया। भीम ने उसे बुरी तरह हराया। हार खाई, साम का धन-जन बहुत नष्ट हुआ। गुजरात की राजधानी पाटन थी। पाटन में गजनी का बसाबुहीर नाम का एक मुसलमान व्यवसायी बहुत समय से रहता था। उसके जहाज चलते थे। पाटन से बगदाद और गजनी माल भेजा-मँगाया करता था। लाखों की संपत्ति पाटन में थी और कम-से-कम दस लाख की गजनी में। बसाबुहीर पाटन की नगर पंचायत का एक मुखिया भी हो गया था।

मुहम्मद साम दिल्ली लौटकर फिर से गुजरात पर चढ़ाई करने की बात सोचने लगा; परंतु इतना नुकसान उठाकर आया था कि रुपए-पैसे की बहुत कमी पड़ गई। सिपाही और रुपए दोनों की आवश्यकता। बड़ी सेना खड़ी करने के लिए काबुल-कंधार इत्यादि से लड़नेवाले चाहिए। इन लड़नेवालों के लिए पैसा का ही आकर्षण सबसे बड़ा था। इधर साम की गाँठ बहुत कमजोर।

साम के एक मंत्री ने उसे सुझाव दिया, 'बसाबुहीर नाम का एक गजनवी पाटन में रहता है। उसने बहुत माल-जायदाद पाटन में जोड़ रक्खी है, और कम-से-कम दस लाख की गजनी में। गजनवी होने पर भी बसाबुहीर हिंदी हो गया है—पाटन शहर का एक मुखिया तक। गजनी में उसकी जो जायदाद है, वह जब्त कर ली जाए। उस रुपए से काबुल-कंधार के लड़ाकुओं को इकट्ठा करने में बड़ी मदद मिलेगी; फिर गुजरात की फतह बाएँ हाथ का खेल हो जाएगा।'

साम सोचने लगा और सोचता रहा। कई दिन तक उसने अपने मंत्री को कोई उत्तर नहीं दिया।

मंत्री उकता रहा था। उसने अपने हाथ से लिखकर एक प्रार्थना-पत्र मुहम्मद साम के पास भेजा, जिसमें उसने अपने जबानी सुझाव को विस्तार के साथ प्रकट किया था।

मुहम्मद साम निश्चय पर पहुँच गया। मंत्री के प्रार्थना-पत्र पर साम ने लिख भेजा—'अगर कभी पाटन शहर मेरे हाथ में आया तो बसाबुहीर की पाटनवाली जायदाद की कौड़ी-कौड़ी लूटकर अपने कब्जे में कर लूँगा—मेरा हक होगा; लेकिन उसकी जो जायदाद गजनी में है, उसे जब्त करना बटमारी के बराबर होगा और इनसाफ के बिल्कुल खिलाफ।' □

इंद्र का अचूक हथियार

तपस्वी की साधना की जो प्रतिक्रिया हुई, उससे इंद्र का इंद्रासन डगमगाने लगा। तपस्या भंग करने के उपकरण इंद्र के हाथ में थे ही। उसने प्रयुक्त किए। तपस्वी के पास मेनका अप्सरा अपने साज-बाज के साथ जा पहुँची। ऋतु वसंत की तो न थी, परंतु तपस्वी के स्थान पर मेनका के पहुँचते ही पौधों और वृक्षों में कोंपलें लहलहा उठीं, रंग-बिरंगी कलियों ने उन कोंपलों के आसपास नए-नए रंग बिखेरे और मन को नचानेवाले रूप सँवार दिए। कोयल कूकी, बुलबुल ने हूक लगाई।

तपस्वी ध्यानमग्न था। उसकी आँखें खुल गईं। कलियाँ खिल पड़ीं। कोयलें और बुलबुलें गा-गाकर नाचने लगीं। तपस्वी ने देखा कि अनन्य सुंदरी मेनका भी नाच रही है। मेनका में रूप था, रस था। प्रकृति में गंध थी, सुगंधि थी। तपस्वी ने मेनका से कहा, 'आओ मेनके!'

मेनका ने सोचा, 'अरे! यह तो बिना किसी बड़े प्रयास के ही फिसलपट्टी पर फिसल गया।'

मेनका उसके पास जा पहुँची।

कुछ समय उपरांत मेनका ने इंद्र को अपनी करामात की सूचना दी। परंतु इंद्र प्रसन्न नहीं हुआ, उसका आसन अब भी डाँवाँडोल था।

इंद्र ने फिर और कई अप्सराएँ भेजीं। उन्होंने ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शिशिर, हेमंत—सभी के नाना रूप दिखलाकर तपस्वी को मोहित करने के पूरे प्रयास किए। तपस्वी ने सभी का स्वागत किया। फिर भी न तो उसका ध्यान टूटा और न तपस्या टूटी।

इंद्र का आसन हिलता-डोलता ही रहा। इंद्र ने दूसरे उपकरणों का प्रयोग किया। उसने तपस्वी के पास एक निंदक भेजा।

निंदक ने चिल्ला-चिल्लाकर कहा, 'तुम्हारी आँखें छोटी-छोटी हैं, नाक चपटी, गाल पिचके, बाल घास जैसे; पूरी देह जैसे किसी गंदे नाले के आसपास का ऊबड़-खाबड़ जंगल हो। तुम्हारी तपस्या तप की किसी भी परिभाषा में नहीं आती। नियम विरुद्ध है, विधान के प्रतिकूल। तुम तो विरोधाभास की मूर्ति हो। कुछ नहीं पाओगे इस तपस्या से। है ही कुछ नहीं।'

तपस्वी बोला, 'बके जाओ बेटा, मैं परवाह नहीं करता।' परंतु उसका ध्यान नहीं टूटा।

निंदक लौट गया। इंद्र को अपनी काररवाई का समाचार दिया। इंद्रासन अब भी हिल रहा था।

परंतु इंद्र निराश नहीं हुआ। उसने सोच-विचारकर अपने एक गण को भेजा, जिसका नाम अहंकार था।

तपस्वी के पास अहंकार पहुँचा और उससे संबोधन किया, 'अहा हा हा! क्या कहना है आपके सौंदर्य का! देह क्या है, जैसे ब्रह्मा ने किसी साँचे में ढाली हो! आपकी तपस्या का विधान सारे विश्व में अनुपम है। इस प्रकार के तप की पहले किसी ने कल्पना ही नहीं की थी। आपके तप-तेज ने वसंत और अप्सराओं को ऐसे पचा लिया, जैसे कोई पानी पी जाता हो। आपकी तपस्या के शौर्य ने विश्व भर में वाह-वाह की झड़ी लगवा दी है। आप सारी मानवजाति के लिए उदाहरण बन गए हैं। कलाकार आपकी आराधना कर रहे हैं और अनंत काल तक करते रहेंगे।'

तपस्वी की आँखें खुलीं। अहंकार उसके भीतर समा गया था। तपस्वी ने सोचा, मुझसे बढ़कर कोई नहीं।

और उसी क्षण तपस्वी लड़खड़ाकर गिर पड़ा। अब वह केवल एक दुर्बल सा मनुष्य रह गया था और इंद्र का आसन निश्चल हो गया।

राष्ट्र का सेवक

● प्रेमचंद

राष्ट्र के सेवक ने कहा, ''देश की मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है नीचों के साथ भाईचारे का सलूक, पतितों के साथ बराबरी का बर्ताव। दुनिया में सभी भाई-भाई हैं, कोई नीचा नहीं, कोई ऊँचा नहीं।''

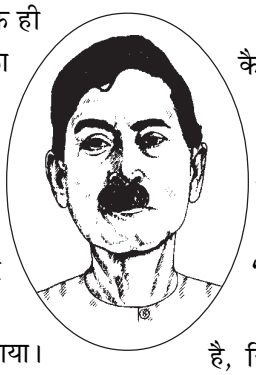

दुनिया ने जय-जयकार की—कितनी विशाल दृष्टि है, कितना भावुक हृदय! उसकी सुंदर लड़की इंदिरा ने सुना और चिंता के सागर में डूब गई।

राष्ट्र के सेवक ने नीची जात के नौजवान को गले लगाया।

दुनिया ने कहा, ''यह फरिश्ता है, पैगंबर है, राष्ट्र की नैया का खेवैया है।'' इंदिरा ने देखा और उसका चेहरा चमकने लगा।

राष्ट्र का सेवक नीची जात के नौजवान को मंदिर में ले गया, देवता के दर्शन कराए और कहा, ''हमारा देवता गरीबी में है, जिल्लत में है, पस्ती में है।''

दुनिया ने कहा, ''कैसे शुद्ध अंत:करण का आदमी है, कैसा ज्ञानी?''

इंदिरा ने देखा और मुसकराई।

इंदिरा राष्ट्र के सेवक के पास जाकर बोली, ''श्रद्धेय पिताजी, मैं मोहन से ब्याह करना चाहती हूँ।''

राष्ट्र के सेवक ने प्यार की नजरों से देखकर पूछा, ''मोहन कौन है?''

इंदिरा ने उत्साह भरे स्वर में कहा, ''मोहन वही नौजवान है, जिसे आपने गले लगाया, जिसे आप मंदिर में ले गए, जो सच्चा, बहादुर और नेक है।''

राष्ट्र के सेवक ने प्रलय की आँखों से उसकी ओर देखा और मुँह फेर लिया।

[प्रथमत: 'कौम का खादिम' शीर्षक से उर्दू कहानी-संग्रह 'प्रेम चालीसा' (१९३०) में]

गूदड़ साईं

● जयशंकर प्रसाद

''साईं! ओ साईं!'' एक लड़के ने पुकारा। साईं घूम पड़ा। उसने देखा कि एक आठ वर्ष का बालक उसे पुकार रहा है।

आज कई दिन पर उस मोहल्ले में साईं दिखाई पड़ा है। साईं वैरागी था, माया नहीं, मोह नहीं। परंतु कुछ दिनों से उसकी आदत पड़ गई थी कि दोपहर को मोहन के घर जाता, अपने दो-तीन गंदे गूदड़ यत्न से रखकर उन्हीं पर बैठ आता और मोहन से बातें करता। जब कभी मोहन उसे गरीब और भिखमँगा जानकर माँ से अभिमान करके पिता की नजर बचाकर कुछ साग-रोटी लाकर दे देता, तब उस साईं के मुख पर पवित्र मैत्री के भावों का साम्राज्य हो जाता। गूदड़ साईं उस समय १० बरस के बालक के समान अभिमान, सराहना और उलाहना के आदान-प्रदान के बाद उसे बड़े चाव से खा लेता; मोहन की दी हुई एक रोटी उसकी अक्षय-तृप्ति का कारण होती। एक दिन मोहन के पिता ने देख लिया। वह बहुत बिगड़े। वह थे कट्टर आर्य समाजी। ढोंगी फकीरों पर उनकी साधारण और स्वाभाविक चिढ़ थी। मोहन को डाँटा कि वह इन लोगों के साथ बातें न किया करे। साईं हँस पड़ा, चला गया।

उसके बाद आज कई दिन पर साईं आया और वह जान-बूझकर उस बालक के मकान की ओर नहीं गया; परंतु पढ़कर लौटते हुए मोहन ने उसे देखकर पुकारा और वह लौट भी आया।

''मोहन!''

''तुम आजकल आते नहीं?''

''तुम्हारे बाबा बिगड़ते थे।''

''नहीं, तुम रोटी ले जाया करो।''

''भूख नहीं लगती।''

''अच्छा, कल जरूर आना; भूलना मत!''

इतने में एक दूसरा लड़का साईं का गूदड़ खींचकर भागा। गूदड़ लेने के लिए साईं उस लड़के के पीछे दौड़ा। मोहन खड़ा देखता रहा। साईं आँखों से ओझल हो गया।

चौराहे तक दौड़ते-दौड़ते साईं को ठोकर लगी, वह गिर पड़ा।

सिर से खून बहने लगा। खिझाने के लिए जो लड़का उसका गूदड़ लेकर भागा था, वह डर से ठिठक रहा। दूसरी ओर मोहन के पिता ने उसे पकड़ लिया, दूसरे हाथ से साईं को पकड़कर उठाया। नटखट लड़के के सर पर चपत पड़ने लगी; साईं उठकर खड़ा हो गया।

''मत मारो, मत मारो, चोट आती होगी!'' साईं ने कहा, और लड़के को छुड़ाने लगा। मोहन के पिता ने साईं से पूछा, ''तब चीथड़े के लिए दौड़ते क्यों थे?'' सिर फटने पर भी रुलाई नहीं आई थी, वह साईं लड़के को रोते देखकर रोने लगा। उसने कहा, ''बाबा, मेरे पास दूसरी कौन वस्तु है, जिसे देकर इन 'रामरूप' भगवान् को प्रसन्न करता।''

''तो क्या तुम इसीलिए गूदड़ रखते हो?''

''इस चीथड़े को लेकर भागते हैं भगवान् और मैं उनसे लड़कर छीन लेता हूँ, उन्हीं से छिनवाने के लिए, उनके मनोविनोद के लिए। सोने का खिलौना तो उचक्के भी छीनते हैं, पर चीथड़ों पर भगवान् ही दया करते हैं!'' इतना कहकर बालक का मुँह पोंछते हुए मित्र के समान गलबाँही डाले हुए साईं चला गया।

मोहन के पिता आश्चर्य से बोले, ''गूदड़ साईं! तुम निरे गूदड़ नहीं; गुदड़ी के लाल हो!''

उजला हाथी और गेहूँ के खेत

● **रामधारी सिंह 'दिनकर'**

एक किसान के दो बेटे थे, एक बाल-बच्चोंवाला और दूसरा कुँवारा। मरने से पहले किसान ने अपनी जायदाद दोनों बेटों में बाँट दी और जब वह मरा, उसके मन में यह संतोष था कि भाइयों के बीच कोई झगड़ा नहीं होगा।

दोनों भाई मेहनती थे और दोनों ईमानदार तथा दोनों के मन में यह भाव गठा हुआ था कि मैं चाहे जैसे भी रहूँ, मगर भाई को आराम मिलना चाहिए।

दोनों भाइयों ने रबी की फसल खूब डटकर उपजाई, और बैसाख में दोनों के खलिहान गेहूँ के बोझों से भर गए।

तब एक रात छोटे भाई ने सोते-सोते सोचा, 'मैं भी कैसा निष्ठुर हूँ? मेरे आगे-पीछे कौन है कि इतना गेहूँ घर ले जाऊँ? हाँ, भाई के बाल-बच्चे बहुत हैं। अच्छा हो कि मैं अपने खलिहान से कुछ बोझे उनके खलिहान में रख आऊँ।'

इतना सोचना था कि कुँवारा भाई उठा और अपने खलिहान से बीस बोझे उठाकर उसने भाई के खलिहान में डाल दिए और वह फिर से आकर सो गया। और नींद में उसने सपना देखा, दोनों ओर गेहूँ के लहलहाते खेत हैं और वह उनके बीच उजले हाथी पर चढ़कर घूम रहा है।

और ठीक यही बात बड़े भाई के मन में भी उठी। उसने सोचा, 'मैं भी कितना स्वार्थी हूँ? अरे, मेरे तो बाल-बच्चे हैं। भगवान् ने चाहा तो जब वे जवान होंगे, तब मुझे बैठे-बिठाए दो राटियाँ मिल जाया करेंगी। मगर, मेरा छोटा भाई! हाय, उसका तो कोई नहीं है। क्यों न अपने खलिहान से कुछ बोझे उठाकर में उसके खलिहान में डाल आऊँ। अन्न बेचकर दस पैसे अगर वह जमा कर लेगा, तो बुढ़ापे में उसके काम आएँगे।' और वह भी दौड़ा-दौड़ा खलिहान में पहुँचा और अपने ढेर में से बीस बोझे उठाकर उसने छोटे भाई के खलिहान में मिला दिए। और घर आकर वह खुशी-खुशी सो गया।

और सोते-सोते उसने सपना देखा कि दोनों ओर गेहूँ के लहलहाते खेत हैं और वह उजले हाथी पर बैठकर खेतों की सैर कर रहा है।

और भोर में उठकर छोटा भाई अपने खलिहान पहुँचा, तो यह देखकर दंग रह गया कि उसके बोझों में से बीस कम नहीं हुए हैं।

और भोर में उठकर बड़ा भाई खलिहान पहुँचा, तब वह भी यह देखकर दंग रह गया कि उसके बोझों में से बीस कम नहीं हुए हैं।

निदान, रात में फिर दोनों भाइयों ने, चोरी-चोरी, अपने बोझे भाई के खलिहान में पहुँचा दिए और दोनों ने फिर रात में उजले हाथी पर चढ़कर गेहूँ के खेत में घूमने का सपना देखा और दोनों भोर मैं खलिहान को ज्यों-का-त्यों देखकर फिर दंग रह गए।

यह खेल कई रात चला। आखिर, एक रात दोनों चोर जब अपने-अपने खलिहान में बोझ उठाए भाई के खलिहान की ओर जा रहे थे, दोनों एक-दूसरे से टकरा गए और दोनों ने बोझ फेंककर एक-दूसरे को कसकर पकड़ लिया और दोनों आनंद के मारे रोने लगे।

खलिहान में बोझों की संख्या क्यों नहीं घटती थी, यह रहस्य एक क्षण में खुल गया और इसमें कोई संदेह नहीं कि यह आनंद आँसुओं में ही बोल सकता था।

उनके आँसुओं की जो बूँदें पृथ्वी पर गिरीं, उनसे नीचे पड़ा हुआ पीपल का एक बीज भीग गया और उत्तम अंकुर निकल आया।

अब उस खलिहान की जगह पर पीपल का एक बड़ा वृक्ष लहराता है। और जो भी राही उसके नीचे सुस्ताकर सो जाता है, वह सपना देखता है कि दोनों ओर गेहूँ के लहलहाते खेत हैं और वह उनके बीच उजले हाथी पर चढ़कर घूम रहा है।

प्रश्नोत्तर

● कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर

आज दफ्तर में बड़े साहब आए, तो जैसे ज्वालामुखी फट पड़ा। बात कुछ न थी, किसी का कोई दोष भी न था, फिर भी वे बरस पड़े।

एक 'एंट्री' को देखकर चंद्रभान से बोले, ''यह डाकखाने की रकम फुटकर खर्च खाते में क्यों चढ़ा रखी है?'' और रजिस्टर उसके ऊपर दे मारा। उसने अपने को सँभाला और रजिस्टर साहब के सामने रखते हुए कहा, ''इसकी 'डिटेल' देख लीजिए! यह रकम असल में···''

बात बीच में ही थी कि साहब चिल्ला पड़े, ''रास्कल! जबान चलाता है। सूअर, हमको हिसाब देखना सिखाएगा।''

चंद्रभान कहता है, मन में आया, पकड़ लूँ और दो ठोकरें जमाऊँ, पर नौकरी, खून की घूँट पीकर रह गया। साथ के चार दूसरे बाबुओं की भी यही दशा हुई।

साहब की नेकटाई श्रीमतीजी और बच्चे!

पाँच बजे शाम को जब दफ्तर से चले, तो सब खामोश थे; जैसे अपमान की उस घूँट को पचाने का प्रयत्न कर रहे हों। बड़े बाबू अनुभूति की तीव्रता पर विवश संतोष और निर्लज्जता के ताने-बाने से बुना परदा डालते हुए बोले, ''क्या करें भाई! इस कमबख्त नौकरी के लिए सब-कुछ सहना पड़ता है।'' जरा रुककर, जैसे अपना मन समझा रहे हों, बोले, ''बड़ा साहब, जुबान का बड़ा ही कडुवा है, पर एक बात है, 'इंक्रीमेंट' के मामले में बहुत ही फराखदिल है।''

टी-स्टॉल आ गया और सब चाय पीने लगे, पर चंद्रभान के गले वह न उतरी और वह इधर-उधर देखने लगा। सामने के गोल चक्कर पर कुछ मजदूर अपना झाबा लिये बैठे थे। सर्दी बहुत थी, वे सेंक रहे थे पत्ते जलाए। अपमान की पीड़ा में उभरा एक प्रश्न चंद्रभान के सामने आ गया, 'मैं दफ्तर में बाबू हूँ और ये मजदूर। मेरा दफ्तर मुझे कोट-पतलून देता है, पर मैं इन्हें पहनकर जितना काँप रहा हूँ, उतने ही ये अपनी फटी चादरें लपेटे काँप रहे हैं। इस नौकरी से समाज में इन मजदूरों की अपेक्षा हमारी अधिक प्रतिष्ठा है, पर दफ्तर में तो रोज जूते ही खाने पड़ते हैं। फिर इस नौकरी में ही क्या विशेषता है?'

इसी समय उसके पास से निकलकर एक नया मजदूर उन मजदूरों में जा मिला। ''आज कहीं रास्ता भूल आया भाई?'' एक मजदूर ने उससे पूछा।

''आज ठेकेदार का जनाजा निकाल आया। बदमाश माँ की गाली देता था। मैंने भी आज रोड़ियों पर डालकर ऐसा रगड़ा कि बेटा तीन दिन हल्दी पीएगा।'' अभिमान से उसका चेहरा खिल रहा था।

''अरे भाई, अच्छी नौकरी थी। यों ही झगड़ा मोल लिया।'' पहले मजदूर ने समझाया।

''अरे भाई! दबें क्यों, जब अपनी मेहनत का खाते हैं! फिर भाई, रिजक का ठेका तो रहीम ने लिया है। नौकरी नहीं तो अपना झाबा तो है!'' स्वावलंब के भाव से उसका चेहरा भी खिल गया।

चंद्रभान ने मन-ही-मन अपने प्रश्न का स्वयं उत्तर दिया, ''बस, दफ्तर की नौकरी में यही विशेषता है कि इसे छोड़कर आदमी फिर झाबा नहीं उठा सकता!''

रोटी या पाप

● विष्णु प्रभाकर

उगते सूरज की किरणें अभी समंदर की इठलाती लहरों को चूम भी नहीं पाई थीं कि फुटपाथ पर बैठे भिखमंगों में आपाधापी मच उठी। सेठ शांतिलाल की मोटर वहाँ आकर रुक चुकी थी। उसकी आवाज उन्हें उसी तरह उद्वेलित कर देती थी, जैसे भोजन का समय होने पर कुत्तों के मुँह से अपने आप ही लार टपकने लगती है।

सदा की तरह सेठजी के हाथ में एक बड़ा सा पैकेट था। उसी में से निकाल-निकालकर वे डबल रोटी का एक-एक टुकड़ा एक-एक भिखारी पर फेंकने लगे। एक-दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ में वे भिखारी उन टुकड़ों पर कुत्तों की तरह झपटते। कुछ तो उन्हें छिपाकर आगे भी जा बैठते। सेठजी देखते रहते और घृणा से हँसते रहते। कभी-कभी बोल भी उठते—लोग कहते हैं कि गरीब बड़े ईमानदार होते हैं।

लेकिन एक दिन सब उलट-पुलट हो गया। उन्होंने देखा कि भीड़ से दूर एक भिखारी चुपचाप इस दृश्य को देखता खड़ा है। उसने रोटी का वह टुकड़ा लेने के लिए हाथ तक नहीं हिलाया। सेठजी ने उससे पूछा, ''तुझे रोटी मिली?''

उत्तर दिया उसने, ''रोटी है कहाँ जो मुझे मिलती!''

''क्या यह रोटी नहीं है?''

''नहीं।''

''तो क्या है?''

''आपका पाप। आप रोटी नहीं, अपने पाप बाँट रहे हैं। मुझे पाप नहीं, 'आप' चाहिए। दे सकेंगे अपने आप को।''

सेठजी सकते में आ गए, लेकिन बस एक क्षण के लिए। दूसरे ही क्षण उपेक्षा से हँसकर बोले, ''तू भूखा नहीं है। दो आखर पेट में पड़ गए हैं शायद। तभी रोटी को पाप कहता है।''

और वे पूर्वत: रोटी (पाप) बाँटने के लिए आगे बढ़ गए।

संस्कृति

● **हरिशंकर परसाई**

भूखा आदमी सड़क के किनारे कराह रहा था। एक दयालु आदमी रोटी लेकर उसके पास पहुँचा और उसे दे ही रहा था कि एक दूसरे आदमी ने उसका हाथ खींच लिया। वह आदमी बड़ा रंगीन था।

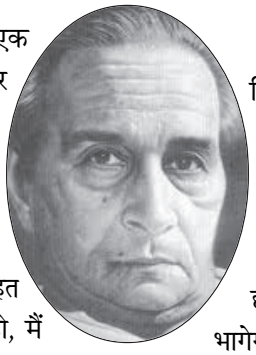

पहले आदमी ने पूछा, 'क्यों भाई, भूखे को भोजन क्यों नहीं देने देते?'

रंगीन आदमी बोला, 'ठहरो, तुम इस प्रकार उसका हित नहीं कर सकते। तुम केवल उसके तन की भूख समझ पाते हो, मैं उसकी आत्मा की भूख जानता हूँ। देखते नहीं हो, मनुष्य-शरीर में पेट नीचे है और हृदय ऊपर। हृदय की अधिक महत्ता है।'

पहला आदमी बोला, 'लेकिन उसका हृदय पेट पर ही तो टिका हुआ है। अगर पेट में भोजन नहीं गया, तो हृदय की टिक-टिक बंद नहीं हो जाएगी!'

रंगीन आदमी हँसा। फिर बोला, 'देखो, मैं बतलाता हूँ कि उसकी भूख कैसे बुझेगी!'

यह कहकर वह उस भूखे के सामने बाँसुरी बजाने लगा। दूसरे ने पूछा, 'यह तुम क्या कर रहे हो? इससे क्या होगा?'

रंगीन आदमी बोला, 'मैं उसे संस्कृति का राग सुना रहा हूँ। तुम्हारी रोटी से तो एक दिन के लिए ही उसकी भूख भागेगी, संस्कृति के राग से उसकी जनम-जनम की भूख भागेगी।' वह फिर बाँसुरी बजाने लगा।

और तब वह भूखा उठा। उसने बाँसुरी झपटकर पास की नाली में फेंक दी।

- **कहानी और लघुकथा की अंतर्धारा एक है, अब जैसे इंजीनियर एक ही करंट से बल्ब भी जला देता है, पंखा भी चला देता है और इंजन भी···जबकि यह तीनों एक जैसी चीजें नहीं। अपनी-अपनी जगह पर ये स्वतंत्र इकाइयाँ हैं, बस इनकी कार्यप्रणाली एक है। इसी तरह लघुकथा भी स्वतंत्र इकाई है और आवश्यकतानुसार अपनी बात अपने ढंग से कहती है। कुल मिलाकर कथ्य और विधा दो ऐसे दोस्त हैं जो संबंधों को लगातार सुमधुर बनाने में एक-दूसरे के व्यक्तित्व को और भी गरिमामय बना देते हैं।**
- **लघुकथा में 'अनुभव की तीव्रता' एक ऐसी विशेषता है जो इस (विसंगत)प्रकार की संवेदनाओं को प्रकट करने का जानदार माध्यम है। फिर जीवन जितना तीव्रतर होता जा रहा है उतना ही यह अधिकाधिक फैक्टर्ज में बँट रहा है और निश्चित रूप से जीवन के ये लघुतम टुकड़े ही अपने अहसासों के तहत लघुकथा को जन्म देते हैं। आदमी टुकड़े-टुकड़े ही जी रहा है और इस प्रक्रिया की प्रत्येक मनःस्थिति को तीर की तरह भोंका जा सकता है लघुकथा में उतना कहानी में नहीं; क्योंकि कहानी में इन मनःस्थितियों के व्यक्तिवादी होने या अजीब ढंग से उखड़ जाने का पूरा खतरा बना रहता है।**

–जगदीश कश्यप

विवेकी राय : लेखन के मंगल भवन और तपोवन के तपस्वी

● नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

सदैव के लिए संसार से चले जाना वस्तुत: सदैव के लिए स्मृतियों में लौट आना होता है। विवेकी रायजी के साथ भी यही हुआ। वे सदैव के लिए चले गए, लेकिन असंख्य स्मृतियों के रूप में वे मानस में लौट आए हैं। देह से वे भले चले गए, लेकिन उनकी अक्षर-देह को तो सदैव प्राणवान बने रहना है। मेरे सामने उनका ८ जून का पत्र है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि वे १४ मार्च, २०१६ को भयंकर लकवे के शिकार हुए, लेकिन ५०-६० प्रतिशत ठीक होने के बाद भी उनकी आवाज नहीं लौटी और वे पत्र किसी तरह उस दाहिने हाथ से लिखकर भेज रहे हैं, जो लकवाग्रस्त है। उन्होंने यह भी लिखा है कि पढ़ना चाहता हूँ, लेकिन पढ़ नहीं पाता और बिना पढ़े मुझसे रहा भी नहीं जाता। अंत में लिखा है कि कुछ ठीक हुआ तो फिर मिलेंगे। उनका यह मेरे लिए लिखा अंतिम पत्र है।

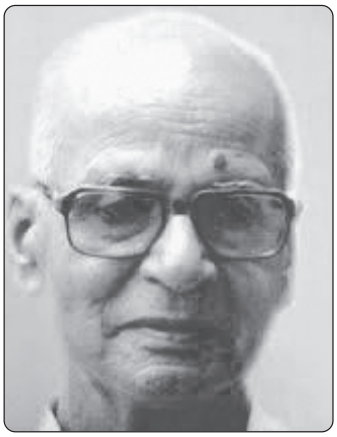

मुझे लगता है, उन्होंने एक सच्चे और ईमानदार सर्जक की प्रकृति को अभिव्यक्त कर दिया। सच्चे सर्जक की जिजीविषा कभी मरती नहीं।

पिछली बार जब बनारस से गाजीपुर उनसे मिलने गया तो उन्होंने दिनभर रोक लिया। दही-चिउड़ा उन्होंने बड़े आग्रह के साथ मुझे व मेरी पत्नी को खिलाया और पूरे दिन निबंध को लेकर हजारीप्रसादजी, विद्यानिवासजी और कुबेरजी के लिखे को बार-बार याद करते रहे, अपनी भोजपुरी कविताएँ सुनाईं और 'मंगल भवन' के कुछ अंश। मन नहीं कर रहा था लौटने का, लेकिन बनारस लौटना पड़ा और वहाँ से इंदौर। अब जब उनके सदैव के लिए चले जाने का समाचार मिला है, तब से उनकी स्मृतियों के सागर में डूबते हुए उनके लेखन का स्मरण हो रहा है।

समकालीन हिंदी साहित्य के परिदृश्य में ललित निबंध, व्यंग्य और कहानी की त्रयी विख्यात है। ललित निबंध की त्रयी में हैं पं. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय तथा विवेकी राय, व्यंग्य की त्रयी में हैं हरिशंकर परसाई, शरद जोशी और रवींद्रनाथ त्यागी इन तीनों त्रयी में केवल विवेकीजी ही विद्यमान थे, शेष सब चले गए, लेकिन अब उनके जाने के बाद ये तीनों त्रयी अतीत की निधि हो गईं।

समय का यह दारुण सच है कि जब कोई सदैव के लिए चला जाता है, तब उसकी स्मृति और जीवंत हो जाती है। उसके साथ बीते हर पल का स्मरण होता है और उसके जीवन के आरंभ से अंत तक के हर अध्याय को पढ़ा जाता है। इस लिहाज से यदि विवेकीजी के जीवनवृत्त को देखें तो ज्ञात होगा कि वे शून्य से शिखर तक पहुँचे थे।

विवेकी रायजी का जन्म १९ नवंबर, १९२४ को भरौली जिला बलिया में हुआ था। उनका बचपन अपने मामा श्री बसाऊ राय की देखरेख में बीता। आरंभिक शिक्षा उन्होंने गाँव सोनवानी, जिला गाजीपुर से प्राप्त की तथा बाद में गाँव महेंद्र से उन्होंने मिडिल तक की पढ़ाई की और उसके बाद खेती-बाड़ी में जुट गए, लेकिन उन्होंने पढ़ना-लिखना नहीं छोड़ा। वे अध्यवसाय में लगे रहे। उन्हें गाँव के लोअर प्राइमरी स्कूल में सन् १९४२ में अध्यापक की जगह मिल गई। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में भी भाग लिया। पढ़ाई भी चलती रही। बाद में उन्होंने एम.ए. भी किया तथा पी-एच.डी. की उपाधि भी प्राप्त की। सन् १९६४ में वे गाजीपुर के स्नातकोत्तर महाविद्यालय के हिंदी विभाग में व्याख्याता हो गए तथा बाद को १९८८ में वहीं से उन्होंने अवकाश ग्रहण किया। उनके लेखन का आरंभ वर्ष १९४५ से हुआ, जब उनकी कहानी पाकिस्तानी वाराणसी के लोकप्रिय दैनिक आज में प्रकाशित हुई। सन् १९५७ से लेकर १९७० तक उन्होंने 'आज' में ही साप्ताहिक स्तंभ 'मनबोध मास्टर की डायरी' में निबंध लिखे, जो संकलित होकर इसी शीर्षक से पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए।

विवेकीजी का सृजन वन के फूलों की तरह है, जिनमें नैसर्गिक सौंदर्य और सौरभ है। उनका लेखन उपवन के उन फूलों की तरह नहीं है, जो कलमों की जोड़ से जनमते हैं और इस तरह वे उस सुंदरता और सौरभ के प्रतीक होते हैं, जो आरोपित होता है। विवेकीजी का लेखन नैसर्गिक है। वह बहुत सहज, सरल और संप्रेषणीय है।

उनकी बहुआयामी प्रतिभा और विपुल सृजन को देखकर आश्चर्य होता है। उन्होंने कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास, ललित निबंध, व्यंग्य, समीक्षा, संस्मरण और भोजपुरी में निबंध, फीचर और कविताएँ लिखीं। पाँच पुस्तकों का अनुवाद किया तथा उर्दू, पंजाबी, मराठी और उड़िया की कृतियों का भाषांतर भी किया। उनके छह काव्य संग्रह, बाहर कहानी-संग्रह, दस उपन्यास, दस ललित निबंध और व्यंग्य-संग्रह, तेरह शोध समीक्षा, चार संस्मरण-संग्रह तथा चार विविध लेखन से संबंधित ग्रंथ हैं। इनके अलावा उन्होंने पाँच ग्रंथों का संपादन और चार रचनाओं का भाषांतर भी किया है। उनके दस ग्रंथ भोजपुरी साहित्य के हैं।

विवेकीजी पर भी काफी लिखा गया है। लगभग पंद्रह ग्रंथ उन पर लिखे गए तथा उनकी डायरी सहित उनके अन्य चार ग्रंथ अभी प्रकाशित होने हैं। विवेकीजी पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोध हुए तथा लगभग ८५ शोध-ग्रंथ उन पर लिखे गए।

उन्हें अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए, जिनमें सम्मिलित हैं हिंदी संस्थान, उत्तर प्रदेश के द्वारा दिया गया प्रेमचंद पुरस्कार, साहित्य भूषण सम्मान, मध्य प्रदेश शासन का शरद जोशी सम्मान, हिंदी संस्थान उत्तर प्रदेश का महात्मा गांधी सम्मान तथा साहित्यकार संसद, समस्तीपुर बिहार का शिखर साहित्यिक सम्मान। इसी प्रकार 'विद्यावाचस्पति' तथा 'साहित्य महोपाध्याय' की उपाधियों से भी वे विभूषित हुए, लेकिन इतना सबकुछ होते हुए भी विवेकी राय एक सहज, मिट्टी से उपजे और उसी की गंध में लिपटे ऐसे रचनाकार बने रहे, जिसके लिए मिट्टी ही कागज और मिट्टी ही स्याही थी। उन्होंने कभी उधार की स्याही से सृजन नहीं किया।

लोक ही उनका भाग्य था और भाग्यविधाता भी। इतने सम्मानित और समादृत होते हुए तथा इतने बहुआयामी सृजन के कारण अद्‌भुत प्रतिष्ठा प्राप्त करते हुए भी वे सदैव गाजीपुर के अपने छोटे से कुटीर में बैठकर बतियाते रहे, लिखते रहे। महानगरों की दीप्ति ने उन्हें कभी प्रभावित नहीं किया और न ही कभी उनकी भंगिमा में दैन्य को प्रगट होने दिया। वे साहित्यकार के स्वाभिमानी चरित्र के सच्चे प्रतिनिधि थे।

विवेकीजी के पास मौलिक संवेदना थी, ओढ़ा हुआ कुछ भी नहीं था। उन्होंने लिखा तो अनेक विधाओं में, लेकिन वे जाने गए ललित निबंध के कारण। उन्होंने विसंगतियों, अव्यवस्था, ग्राम दुर्दशा, अनीति, अन्याय इन सब पर लिखा। उनके ललित निबंधों में ग्रामीण संवेदना प्रमुख है।

विद्यानिवासजी संस्कृति, लोक और कला के संगम पुरुष थे। कुबेरजी हमारी सांस्कृतिक परंपरा के अद्‌भुत आख्यानकर्ता थे, जबकि विवेकीजी हमारी ग्राम्य संवेदना के मुखर वक्तव्य थे। कृष्णबिहारी मिश्र और विवेकी राय, पूर्वांचल के ऐसे दो नाम हैं, जो ग्रामीण संवेदना के सच्चे अक्षर चितेरे कहे जा सकते हैं। 'नमामि ग्रामम्' नामक अपने निबंध-संग्रह की भूमिका में उन्होंने लिखा है, ''किसानों का देश मेरा देश है, बाहर वाला और भीतर वाला, जीवन से जुड़ा और सृजन से संपृक्त, यह मेरा प्रणम्य देवता है। इसकी प्रमुख संज्ञा गाँव मेरे भीतर एक सजीव भावात्मक सत्ता बनकर प्रतिष्ठित है।''

'जगत तपोवन सो कियो' उनका प्रसिद्ध ललित निबंध-संग्रह है। इसमें उन्होंने गाँव की ग्रीष्म ऋतु के चित्र खींचे हैं। वे कहते हैं, ''ग्रीष्म का गाँव, श्रम-विश्राम का संगम और धूप में खिला सन्नाटे का सरगम है। वह साल भर के शुभ-लाभ के लेखा-जोखा का तनाव और चढ़ता-उतरता बाजार भाव है।''

ग्रीष्म का गाँव सूखते कुओं, नदियों और तालाबों के बीच निर्जला भीमसेनी एकादशी का गाँव और लू के झोंकों में झुलसते गंगा दशहरा का गाँव है।'' फिर आगे कहते हैं, ''अब मुक्त गगन के नीचे इस विराट् के मैदान में तपो पंचाग्नि! हे ग्रीष्म के गाँव करो तपस्या, धरती, आकाश, सागर, पहाड़ और हवा सभी जल रहे हैं, नहीं तप रहे हैं, गाँव को तपा रहे हैं, जगत् को तपोवन बना रहे हैं।''

विवेकीजी ने ललित निबंध को लेकर जो कुछ कहा है, वह बड़ा प्रासंगिक है। यह विधा अपने आप में इसलिए विशिष्ट है, क्योंकि ललित निबंध में कहानीपन है। वे मानते हैं कि कहीं कहीं तो ऐसा लगता है कि कहानी और ललित निबंध का भेद मिट गया है। वे मानते हैं कि ललित निबंधकार का मत सांस्कृतिक होना चाहिए। अपने समकालीन ललित निबंधकारों की विशेषताओं को उन्होंने केवल कुछ पंक्तियों में इस तरह व्यक्त कर दिया है, 'जीना चाहते हो?' का उत्तर हजारीप्रसाद द्विवेदी को कुटज में मिलता है। अपनी किसी अज्ञात प्रतीक्षा के बीच विद्यानिवास मिश्र को नाना प्रकार के जलते युगीन सवालों का उत्तर रात भर झरती 'शेफाली' में मिलता है। 'परास्त नरक' जैसे गाँवों के भीतर से लोक संस्कृति बनाम कृषि संस्कृति का समाधान कुबेरनाथ राय को अपने गाँव के 'धोबीताल' में मिलता है।

विवेकीजी ने अपने समय को व्यक्त किया है। 'फिर बैतलवा डाल पर', 'जुलूस रुका है', 'गँवई गंध गुलाब', 'मनबोध मास्टर की डायरी', 'वन तुलसी की गंध' और 'जगत् तपोवन सो कियो' उनके प्रमुख ललित निबंध-संग्रह हैं। उनके कहानी-संग्रहों में, 'जीवन परिधि', 'नई कोपल', 'बेटे की बिक्री', 'चित्रकूट के घाट पर' तथा 'सर्कस' प्रमुख हैं। उपन्यासों में 'बबूल', 'पुरुष प्रमाण', 'मंगल भवन' तथा 'नमामि ग्रामम्' प्रमुख हैं। समीक्षाओं में 'त्रिधारा', 'हिंदी उपन्यास : उत्तर शती की उपलब्धियाँ', 'आधुनिक हिंदी उपन्यास : विविध आयाम' तथा 'समय साहित्य और समीक्षा' प्रमुख हैं। 'आँगन के वंदनवार' में उनके संस्मरण हैं। उनका भोजपुरी में प्रसिद्ध ललित निबंध-संग्रह है 'के कहल चुनरी रँगा ल' तथा काव्य-संग्रह है 'जनता का पोखरा'।

उनके उपन्यासों में 'मंगल भवन' सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास है, जिसमें हमारे अपने समय की वास्तविकता तथा ग्राम्य जीवन को व्यक्त किया है। उन्होंने युद्ध के बड़े जीवंत चित्र खींचे हैं। यह उपन्यास गहरे आशावाद से भरपूर है। इसमें देश की मंगल महागाथा है, जिसे सैनिक और लेखक रचते हैं। उपन्यास के अंत में एक संवाद है, ''चौंकों मत, जगदीश, दुनिया एक दुःखमय किंतु दिलचस्प ड्रामा है।···चलो, डेरे पर चलें। पांडेयजी आज हमारे मेहमान रहेंगे और रात में समझाएँगे कि मरे हुए ग्रामदेवता को कैसे जिंदा किया जाए। फिर खुली तबीयत से मंगल भवन के भविष्य की आशा में अमंगलहारी ठहाका लगाएँगे और नए उत्साह के साथ जिएँगे।''

विवेकीजी हमारे समकालीन हिंदी साहित्य के 'मंगल भवन' भी हैं और तपोवन भी। उनके लेखन की आकांक्षा यदि सर्वमंगल की है तो उनका जीवन ऐसे तपोवन का साक्षी भी जहाँ तपस्या करते हुए इस सर्वमंगल की कामना की जाती है।

८५, इंदिरा गांधी नगर,
आर.टी.ओ. कार्यालय के पास,
केसरबाग रोड, इंदौर-९ (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५०९२८९३

शाश्वत रिश्ता

● पृथ्वीराज अरोड़ा

उसने धीरे से दरवाजे पर दस्तक दी। थोड़ी देर प्रतीक्षा कर उसे धकियाकर अंदर आ गई। चारपाई पर लेटे व्यक्ति ने हुए उजाले में आनेवाले को देखा। युवती ने पास आकर उनके पैर छुए, झुर्रियों भरे चेहरे को आनेवाले की पहचान नहीं हो पा रही थी। उसने प्रश्ननुमा गरदन उठाई। युवती ने परिचय दिया, ''दादाजी, मैं आपके गुड्डू की पत्नी हूँ।''

अपने पोते के बचपन के नाम को सुनकर वे प्रसन्नता से उद्वेलित बोले, ''तो तू है अनीता! गुड्डू बता रहा था कि तूने मनोविज्ञान में एम.ए. किया है।''

उसने विनम्रता से उत्तर दिया, ''हाँ दादाजी।''

बहू ने सहारा देकर दादा को साथ पड़ी कुरसी पर बिठा दिया। उनके बिस्तर को ठीक किया और दो तकिए टिकाकर उन्हें पुन: चारपाई पर बैठने में सहायता दी। फिर खिड़कियों के पल्लों को खोल दिया। ताजा हवा के झोंके अंदर आने लगे। अपने साथ लाए फूलों के गुलदस्ते को एक स्टूल पर टिका दिया। दादा के पास बैठकर उनके हाथों को अपने हाथों में लेकर पूछा, ''दादाजी, आज आप नाश्ते में क्या खाएँगे और दोपहर और रात के खाने में?''

वह एक बारगी चौंक गए, ''तू यह सब क्यों पूछ रही है, बिटिया? तुम्हारी अभी-अभी शादी हुई है। बहू को भेज देती या पवन और सुमेर पोतों की बहुएँ हैं, वे आ जातीं।'' कहने को तो वे कह गए, परंतु वे जानते थे कि उनके कमरे में कोई नहीं आता। केवल काम करनेवाली आती थी।

''दादाजी, इसमें मेरा स्वार्थ है।'' वह हौले से मुसकाई।

उन्होंने आश्चर्य से पूछा, ''क्या स्वार्थ है?''

''मुझे आपसे कुछ पूछना है।''

''पूछो?''

''दादाजी, अगर आपका गुड्डू मुझसे नाराज हो जाए तो मुझे क्या करना चाहिए?''

''उसे मना लेना चाहिए!''

''और अगर मैं नाराज हो जाऊँ तो?''

वे खिलखिलाए, ''मैं उसका कान पकड़कर तुम्हें मनाने के लिए भेज दूँगा, पर यह सब मुझे बता देना।''

१० अक्तूबर, १९३९ बुचेकी, ननकाना साहिब (अब पाकिस्तान में) जन्म; 'तीन न तेरह', 'आओ इंसान बनाएँ' (लघुकथा-संग्रह); 'प्यासे पंछी (उपन्यास); 'पूजा' (कहानी-संग्रह); लघुकथा में शिखर सम्मान, लघुकथाओं पर लघु शोध प्रबंध चर्चित।

यह सुनकर वह खनकी और साथ ही बोली, ''दादाजी, एक बात और पूछनी है?''

दादा अब तक समझ चुके थे कि वह उन्हें खुश करने के लिए बतिया रही थी। उसे भी इस नटखट बहू से बातें करते हुए बेहद खुशी का अहसास हो रहा था। वह बिना सहारा लिये स्वयं उठे और कुरसी पर बैठ गए। बहू के सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा, ''बोल, अब और क्या पूछना है?''

''दादाजी, सबसे शाश्वत रिश्ता कौन सा होता है?''

इस गंभीर प्रश्न को सुनकर वे चौंके। फिर धीरे-धीरे बोले, ''मैं जानता हूँ कि तुम पढ़ी-लिखी हो और सब समझती हो। फिर भी बताए देता हूँ, जो रिश्ता सुख और दु:ख में समान रूप से सहयोगी रहे।'' वे क्षणभर रुके और दीवार की ओर इंगित करके आगे बोले, ''सामने दीवार पर लटके दादी के चित्र को देख रही हो न। वह मेरे पल-पल की साथिन थी। मेरे दु:ख के साथ उसका दु:ख बँधा हुआ था, मेरे सुख के साथ सुख। मेरे कमरे में अकसर कोई नहीं आता। मैं अकेले में इसी चित्र के साथ बातें करता हूँ। बस एक ही रिश्ता है जिंदगी भर चलने का, बाकी सब रिश्ते बीच में छूट जाते हैं।'' कहकर वे चुप्पी साध गए, मानो कहीं गहरे में खो गए हों। काफी देर बाद गंभीर स्वर में आगे बोले, ''तू मेरे गुड्डू का उसके हर सुख-दु:ख में साथ देना!''

यह कहते-कहते उनकी आँखें पनिया आईं। बहू ने दादा को एक चुटकी भर स्नेह देकर एक शाश्वत रिश्ते का अर्थ समझ लिया था। उसने अपनी उँगलियाँ बढ़ाकर दादा के चेहरे पर फैले आँसुओं को पोंछ दिया और बच्चों की मानिंद उनके गले लग गई!

कोठी नं. ८५४, शहीद विक्रम मार्ग, सुभाष कॉलोनी
करनाल-१३२००१ (हरियाणा)

काँटा

● सुरेश शर्मा

''बड़े भैया!''

''हाँ।''

''आपने हम सब भाई-बहनों के लिए काफी कुछ किया, बहुत कुछ सहा।''

''हूँ···ऊ।''

''विशेषकर आपने मेरी खातिर पिताजी का फर्ज भी निभाया। जब मैं सिर्फ पाँच साल का था, तब पिताजी शांत हो गए। छोटी सी तनख्वाह में आपने मुझे लाड़-प्यार से पाला, पढ़ाया, शादी की।

''यदि मेरी नौकरी का सवाल न होता, तो मैं आपको अकेला छोड़कर बाहर नहीं जाता, यहीं रहकर हम दोनों आपकी सेवा करते। आपके त्याग, फर्ज और एहसानों के बदले में यदि मेरे शरीर की चमड़ी भी आपके काम आ जाए तो अपने आपको धन्य समझूँगा।''

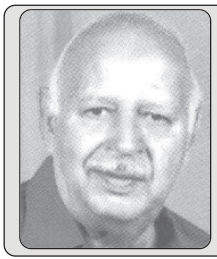

सुपरिचित साहित्यकार। 'छोटे लोग', 'शोभा', 'थके पाँव' (कहानी-संग्रह); 'अंधे-बहरे लोग' (लघुकथा-संग्रह) प्रकाशित। दो लघुकथा-संग्रहों व कुछ कहानी-संग्रहों का संपादन; विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

''बड़े भैया, एक बात कहूँ?''

''हाँ।''

''मेरी ससुराल से जो गोदरेज की अलमारी मिली थी न, आपकी बहू जिद करती है कि उसे यहाँ से···। मैंने बहुत समझाया, पर मानती ही नहीं वह। रोज कलह करती है।''

''हूँ···ऊ।''

''तो फिर ले जाऊँ?''

''आह!''

''क्या हुआ बड़े भैया?''

''कुछ नहीं, काँटा चुभ गया, दर्द हो रहा है।''

खोज

● रमेश बतरा

मैं अपने घर की मुँड़ेर पर बैठा हवाखोरी करता हुआ उसे देख रहा था। आँखें मिचमिचाती वह बड़ी देर से गली में इधर-उधर झाँकती शायद कुछ ढूँढ़ रही थी। उसके दोनों हाथ कमर को कुछ इस तरह जकड़े हुए थे कि चलने में उसके लिए लाठी का काम कर रहे थे।

मेरे समीप पहुँचकर भी उसने पहले घर में झाँका और फिर मुझे घूरती हुई आगे बढ़ने लगी। अपनी ओर से काफी तेज चलने पर भी वह सरक ही रही थी।

उसे परेशान पाकर मैंने पूछा, ''कुछ खो गया है क्या?''

''हाँ!'' वह रुककर भी अगल-बगल के मकानों पर नजर दौड़ाती रही।

''क्या खोया है? मैं मदद करूँ?''

''मेरी बेटी का दुपट्टा फट गया था, उसी को सी रही थी कि सुई गिर गई।''

२३ नवंबर, १९५२ को जालंधर (पंजाब) में जन्म। नंग-मनंग, पीढ़ियों का खून, फाटक (कहानी-संग्रह), बंदीवान (अनुवाद, उपन्यास); 'तारिका' तथा 'साहित्य निर्झर' के लघुकथा विशेषांकों का संपादन। सारिका, रविवार्त्ता तथा संडे मेल में सहायक संपादक/उपसंपादक के रूप में कार्य किया। स्मृतिशेष : १५ मार्च, १९९९।

''तुम कहाँ बैठी हुई थीं?''

''अपनी कोठरी में।''

''तो जाकर कोठरी में ढूँढ़ो। तुम्हारी आँखें कमजोर हैं। अपनी बेटी से कहना, वह ढूँढ़ लेगी।''

''कोठरी में तो नहीं मिलेगी!''

''कमाल है, जब सुई गिरी कोठरी में है तो कोठरी में ही मिलेगी, और कहाँ जाएगी?''

''वहाँ अँधेरा भर गया है!''

''तो यहाँ क्या कर रही हो?''

''रोशनी ढूँढ़ रही हूँ, रोशनी···तुम्हारे पास है क्या?''

अजगर

● विक्रम सोनी

उ 'बेटा, मुट्ठीभर गेहूँ के दाने लिए तू कहाँ जा रहा है? ये अन्न है—इसे फेंकना नहीं चाहिए।' कृषक पिता ने अपने नौ वर्षीय बेटे को समझाते हुए कहा, 'जानते हो बेटे, तुम

२५ मई, १९४३ को भूतपूर्व कोरिया स्टेट (बैकुंठपुर) म.प्र. में जन्म। मानचित्र/छोटे-छोटे सबूत/पत्थर से पत्थर तक (लघुकथा-संकलन) तथा लघुकथा की त्रैमासिक पत्रिका 'लघुआघात' का संपादन/प्रकाशन।

रोज खाना खाते हो न! उस खाने में से उतना ही अन्न हमेशा कम होता जाएगा जितना तुम्हारे हाथों नष्ट होता है। जिस दिन फेंके या नष्ट किए गए अन्न की मात्रा तुम्हारे पेट भर खाने के बराबर हो जाएगी, उस दिन तुम्हें भूखों रहना पड़ेगा। भले ही गरम-गरम स्वादिष्ट भोजन की थाली तुम्हारे आगे रखी होगी, किंतु कुछ ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो जायेंगी कि तुम उसे खा नहीं पाओगे।'

उसका बेटा टुकुर-टुकुर अपने पिता की ओर ताकता रहा। पिता के चुप होते ही मुट्ठी में बंद गेहूँ के दानों को एक बार देखकर फिर बोला, 'इसे नहीं फेंकूँगा बाबा।'

'फिर क्या करोगे?'

'मैंने इत्ते-इत्ते से, 'उसने दाएँ हाथ से हवा में दो छोटे-छोटे चौकोर घेरे बनाए और कहा, 'खेत बनाए हैं। उसी में बोऊँगा।'

कृषक को हँसी आ गई। बालसुलभ नकल उसे बड़ी भली लगी। उसने फिर पूछा, 'फिर क्या करोगे?'

'रोज सिंचाई करूँगा। इत्ते-इत्ते से पौधे उगेंगे। गेहूँ फलेगा, फिर पकेगा। छोटे-से खलिहान में लाकर उससे बीज निकालूँगा।'

'और फिर··· ?'

'इस एक मुट्ठी के बदले तुम अपनी मुट्ठी से तीन मुट्ठी गेहूँ ले लेना। अम्मा, मेरा और गौरैयों का हिस्सा रखकर बाकी मैं फिर बोऊँगा। फिर··· ।'

'फिर··· ?'

'बाबा, मैं किसी दूसरे की मजदूरी नहीं करूँगा।' वह बाहर निकल गया।

'कृषक का भाग्य··· ' वह बेटे के जाने के बाद होंठों-ही-होंठों में बुदबुदाया, 'तीन मुट्ठियों में कैद है, बेटा। तू भूख, साहूकार और सरकार से अभी परिचित नहीं है।'

बी-४, तृप्ति विहार,
इंदौर रोड, उज्जैन (म.प्र.)

तीर्थयात्रा

सुपरिचित साहित्यकार। १९२५ की दीपावली को (बिहार) जन्म। अब तक तीन उपन्यास, तीन कहानी-संग्रह, तीन नाटक, दो कविता-संग्रह, दो निबंध-संग्रह तथा पाँच लघुकथा-संग्रह किरचें, जब द्रौपदी नंगी नहीं हुई, फूलोंवाली दूब, गरम रेत, पड़ाव से आगे; कई पत्र-पत्रिकाओं के उपसंपादक/संपादक रहे। लघुकथा-केंद्रित पत्रिका द्वैमासिक 'फलक' का संपादन।

● **युगल**

उन दोनों की शादी परंपरानुसार बाप-माँ ने की थी। विवाह के बाद पहली रात दोनों मिले। युवक को लगा कि उसके मन की मूरत टूटकर फर्श पर छितरा गई है। युवती को आभास हुआ कि उसके सपने उसकी खुद की हथेली पर भुरभुरा गए हैं। भाग्य मानकर युवक ने अपने कारोबार में मन लगाया। युवती घर में व्यस्त हो गई। दोनों थे, बस थे। लेकिन दोनों को लगता कि वे एक-दूसरे के लिए नहीं हैं। निबाहते जा रहे थे। ऐसे में ही बच्चे आए। पोते-नाती आए। उन दोनों के विवाहित जीवन के चालीस साल निकल गए। दोनों का वजूद सिफर से सिफर तक का सफर रह गया।

सफेद बालोंवाली औरत बुढ़ा आए मर्द से बोली, ''मैं कल तीर्थयात्रा पर जा रही हूँ। चारों धाम और सातों पुरी जाऊँगी।''

बूढ़े ने जम्हाई ली, अँगड़ाई ली। कुरसी की पीठ से टिककर कहा, ''लेकिन मैं तुम्हारे साथ नहीं···''

औरत बोली, ''साथ के लिए नहीं कह रही हूँ।''

''फिर मुझसे क्यों कह रही हो? जहाँ चाहो, जाओ।'' मर्द झुँझलाया।

औरत चली गई।

बूढ़े के कमरे में रोज फाड़ा जाने वाला कलेंडर लगा था। जिस सुबह वह तीसवाँ पन्ना फाड़ रहा था, उसने बड़े बेटे से पूछा, ''माँ की कोई चिट्ठी आई है?''

बेटे ने सिर हिलाया कि नहीं।

दूसरे दिन की डाक बूढ़े ने खुद देखी।

बूढ़े ने कलेंडर के पन्ने एक-एक कर और फाड़े। तारीखों के पन्ने फाड़ना और डाक खुद देखना उसके रुटीन में जुड़ गए थे। उस रात वह घंटा भर सोया होगा कि नींद उचट गई। उसने छोटे बेटे को पुकारा। नींद में व्याघात के कारण बेटा खिन्नता और खीझ से भरा आया, ''क्या हो गया इस समय?''

बूढ़े ने कहा, ''तुम्हारी माँ को गए एक महीना इक्कीस दिन हो गए। जाने वह कहाँ है। कोई चिट्ठी भी नहीं। तुम दोनों भाइयों को देखता हूँ कि निश्चिंत हो, जैसे वह तुम लोगों की कोई नहीं थी; बला थी, टल गई।''

बाप इतने सारे शब्द एक साथ कभी नहीं बोला था। लड़के को लगा कि पिता क्रोध में हैं और कंठ आर्द्र है। लड़के ने कहा, ''माँ कोई बच्ची तो हैं नहीं। आ ही जाएँगी।''

बूढ़ा कटु हो आया, ''और नहीं भी आई, तो किसी का कुछ लेकर तो नहीं गई।''

उस बूढ़े ने दूसरे दिन के अखबार में पढ़ा कि बदरीनाथ जा रही बस उलट गई और अधिकांश सवारियों की इहलीला समाप्त हो गई। घंटे भर बाद वह ट्रेन में बैठा था, भीतर से बहुत उलझा हुआ। इस एक घंटे में वह बहुत बूढ़ा लगने लगा था और चेहरे पर निरीह कातरता उभरी हुई थी।

मोहिउद्दीन नगर (समस्तीपुर),
बिहार-८४८५०१

सरस्वती पुत्र

● **जगदीश कश्यप**

'क्या तुम मेरी लड़की को सुखी रख सकोगे?'

'यह बात आप अपनी लड़की से पूछो।' और लेखक ने मुरझाए चेहरे पर की धूल भरी दाढ़ी में हाथ फेरा।

'मैं तुमसे अत्यंत घृणा करता हूँ', प्रेमिका के पापा ने उसे घूरते हुए कहा। उसके बटनटूटे कुरते से सीने के बाहर झाँक रहे बालों को देख, वह और भी उबल पड़ा, 'तुम लीचड़ आदमी, शादीवाली बात सोच कैसे सके!'

'क्या यही कहने के लिए बुलाया था आपने मुझे?'

निर्णय ले लिये थे, अत: वह अचानक बोल पड़ा, 'कहो तो तुम्हारी सर्विस के लिए ट्राई करूँ?' इस पर पोस्ट ग्रेजुएट बेरोजगार चौंक पड़ा।

'लेकिन तुम्हें मेरी लड़की को भूलना होगा।' शर्तवाली बात पर कवि चुप रह गया और नमस्कार करके चला आया।

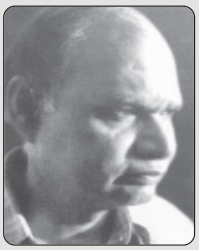

१ दिसंबर, १९४९ को गाजियाबाद (उ.प्र.) में जन्म। लघुकथा-संग्रह 'कोहरे से गुजरते हुए', 'कदम-कदम पर हादसे'। संपादित कृतियाँ : छोटी-बड़ी बातें (महावीरप्रसाद जैन के साथ), विरासत, बीसवीं सदी की हिंदी लघुकथाएँ। लघुकथा-केंद्रित अनियतकालीन पत्रिका 'मिनीयुग' का संपादन-प्रकाशन। स्मृतिशेष : १६ अगस्त, २००४।

उसके जाते ही बी.ए. में पढ़ रही लड़की का पापा बराबर सोच रहा था कि आखिर उस कमजोर युवक में ऐसा क्या था कि उसकी सुंदर लड़की ने जहर खाने की धमकी दे दी थी। जाहिर था कि वह उसकी कलम पर मर-मिटी थी।

'हूँ', लड़की के बाप ने खुद से कहा, 'भगवान् भी कैसे-कैसे लीचड़ों को लिखने की ताकत दे देता है!'

उधर लेखक सारी रात खुद को समझाता रहा कि वह शर्तवाली नौकरी कभी स्वीकार नहीं करेगा और आत्मनिर्भर होने तक उस लड़की से शादी नहीं करेगा।

आज ही

● **पारस दासोत**

आज···शिक्षिका उसके घर पर बच्चे को ट्यूशन पढ़ाकर हटी ही थी, उसने शिक्षिका से छेड़छाड़ करने की नीयत से, उसको अपनी कोहनी मार दी।

शिक्षिका कुछ न बोली।

बच्चे को होमवर्क देने के बाद, शिक्षिका जब अपने घर लौटने को हुई, उसने दरवाजे के पास ही पड़ी एक ईंट को उठाकर, मनचले की पत्नी से पूछा, 'दीदी! क्या आप इस ईंट को अपनी हथेली की मार से तोड़ सकती हैं?'

'ये ईंटऽऽ! ना बाबा ना! इतनी ताकत ना है मेरे में!'

१४ अगस्त, १९४५ को बडु (राजस्थान) में जन्म। एक और अभिमन्यु, प्रयोग, परसु, कदम बढ़ाती चूड़ियाँ, समक्ष, पुस्तक की आवाज, ईश्वर, तेरी मेरी उसकी बात सहित अब तक १८ एकल लघुकथा-संग्रह। लघुकथाओं पर छात्र पी-एच.डी. तथा एम.फिल. हेतु शोध। स्मृतिशेष : १३ सितंबर, २०१४।

'अंकल···' शिक्षिका ने पास ही खड़े उसके मनचले पति से पूछा, 'अंकल, आप, आप तोड़ सकते हैं, इस ईंट को?'

इससे पहले मनचला कुछ बोलता, शिक्षिका ने उसकी तरफ देखकर अपनी हथेली की एक ही मार से ईंट के दो टुकड़े कर दिए।

प्लॉट नं. १२९, गली नं. ९ बी, मोतीनगर, क्वींस रोड, वैशाली, जयपुर-३०२०२१ (राजस्थान)

सत्ताधीश

● **सुरेंद्र मंथन**

उम्र पिता पर हावी हो रही थी। आवाज का दबदबा कमजोर पड़ता जा रहा था। पहले लड़के डाँट खाकर सिर झुका लेते थे; अब मुसकरा भर देते। निर्णय पिता की मुट्ठी से फिसलकर माँ के आँचल में पसरते जा रहे थे। रसोई से मीठे पकवानों की गंध आती। पिता को न पकवान भाते, न चैन की नींद पड़ती। दिन का उजाला भी उन्हें उदास कर जाता।

बड़े पुत्र पर पिता को बहुत आशाएँ थीं। बचपन के सुखभोग के

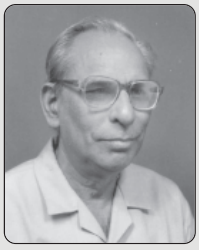

४ अप्रैल, १९३७ को अमृतसर (पंजाब) में जन्म। घायल आदमी, भीड़ में (लघुकथा-संग्रह), अपने लिए नहीं (कहानी-संग्रह), स्वतंत्रता सेनानी रणजीत सिंह विग (जीवनी), हिंदी कहानी में व्यक्तित्व विघटन-स्वरूप एवं विश्लेषण (शोध-प्रबंध); सहयात्रा (लघुकथा-संकलन) का संपादन। स्मृतिशेष : २५ मई, २०१२।

अहसास तले अपने हिस्से की मिठाई छोटों में बाँट खुशी महसूस करता। भाई-बहन भी उस पर जान छिड़कते थे।

पिता ने बड़के को अलग ले जाकर समझाया, 'बेटा, मेरे बाद तुमने ही घर सँभालना है। वैसे तो तुम्हारी माँ समझदार है; लेकिन तुम जानते हो,

घर चलाना औरतों के बस की बात नहीं। छोटे भाई-बहनों पर भी नजर रखनी जरूरी है। ऐसा न हो, मेरे आँख मूँदते ही तुम्हें आँखें दिखाने लगें।'

बेटे की आँखों में दायित्व-बोध तैर गया।

अब पिता जैसे ही घर लौटते; उनके सम्मुख शिकायतों का ढेर लग जाता। बड़के ने किसी का कान ऐंठ दिया है, किसी का जेबखर्च छीन लिया है, तो किसी को घंटा भर कड़कती धूप में एक टाँग पर खड़ा रखा है।

पिता आग-बबूला होकर माँ को कोसने लगते कि उसने घर को नर्क बना रखा है। बच्चों में न प्यार-मोहब्बत है, न तमीज। तब सबको आश्वस्त करते, 'घर आ लेने दो नालायक को। बच्चू की खोपड़ी गंजी न की तो कहना।'

देर रात बड़का लौटता तो पिता सो चुके होते। इधर उन्हें फिर से गहरी नींद आने लगी थी।

औकात

● एन. उन्नी

कबाड़ की माँग बढ़ रही है। कबाड़ की कीमत बढ़ रही है। कबाड़ से नए-नए सामान बनाकर मंडी पहुँच रहे हैं। कुल मिलाकर कबाड़ की इज्जत बढ़ गई है।

इस ज्ञान के साथ घर का अतिसूक्ष्म निरीक्षण किया तो पाया कि कमरे कबाड़ों से भरे पड़े हैं। एक साथ नहीं दे सकते, क्योंकि कॉलोनी में एक ही कबाड़ी आता है। कबाड़ ले जाने के लिए उसके पास एक ही ठेला है। मैंने कबाड़ को इकट्ठा किया। भाव करके किस्तों में कई बार ठेला भर दिया। कबाड़ी की खुशी देखते ही बनती थी। आखिर में जब घर खाली हुआ और मुझे खाने को दौड़ा तो कबाड़ की अंतिम किस्त के रूप में मैं स्वयं ठेला-गाड़ी पर आसीन हो गया। मजाक समझकर कबाड़ी हँस दिया और कहने लगा, 'कबाड़ की कीमत आप जानते ही हैं और अपनी भी। आप कृपया उतर जाइए।'

मैं उतर गया और वह चला गया। उस निर्दयी कबाड़ी की चाल मैं चुपचाप देखता रहा। सोचता रहा कि आखिर मेरी औकात क्या है?

मूलतः मलयालम भाषा-भाषी, लेकिन लेखन देवनागरी हिंदी में। लघुकथा-संग्रह 'कबूतरों से भी खतरा है' प्रकाशित। स्मृतिशेष : १६ जुलाई, २०१५।

तवा

● कालीचरण प्रेमी

नई दिल्ली के प्रगति मैदान में आयोजित अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेले की भीड़ देखकर मैं हतप्रभ रह गया। किसी तरह प्रवेश टिकट लेकर अंदर दाखिल हुआ। हॉल नं. ६ पर पहुँचकर मेरे कदम रुक गए। 'क्या खरीदूँ?' इस बात के लिए मेरे मन में ऊहापोह नहीं थी। अभावों ने इतना तंगहाल बना दिया कि 'शॉपिंग' जैसे शब्द मेरे शब्दकोश से हमेशा बाहर रहे हैं।

शादी के बाद से मैं अपनी पत्नी अंजलि को कोई सुख नहीं दे पाया, सिवाय गरीबी में रहकर जीवन काटने के उपदेशों के। हम दोनों की तकरार में सभी विषय आर्थिक ही रहे हैं। मैं एक के बाद एक कई स्टॉलों पर घूमता हुआ रुक गया। एक नॉन-स्टिक तवे को उलट-पलटकर देखने लगा। ध्यान आया, अंजलि अभी तक उसी घिसे-जले लोहे के, बिना हैंडिल वाले तवे पर रोटियाँ सेंकती है। खाना बनाते हुए उसकी उँगलियाँ कई बार जल जाती हैं। पराँठे सियाह काले पड़ जाते हैं। अंजलि अकसर मुझसे तवा बदलने को कहती रही है। मैं अंजलि की पीड़ा को समझने के बजाय झुग्गी-झोंपड़ी में रहनेवालों की कठोर जिंदगी से तुलना करके उपदेश देने लगता हूँ।

एक तवा इस बार खरीद ही लिया जाए। अंजलि के लिए यह एक सरप्राइज रहेगा। यही सोचकर मैंने तीन-चार कंपनियों के तवे पलटे। एक, जो मुझे अच्छा लगा, उसका भाव पूछा, 'यह कितने का है?'

'तीन सौ पचास का।'

कीमत सुनकर एक बार मैं सहम गया। पर तवे की खूबियाँ बार-बार मुझे आकर्षित कर रही थीं।

'यह हैंडिलवाला है, नॉन-स्टिक है, इसकी दो वर्ष की गारंटी है, इसमें पराँठे नहीं जलते, यह घी और तेल की बचत करता है, इसके साथ एक छाता फ्री है। स्टॉल वाले ने लगातार तवे की कई खूबियों का जिक्र किया।

तवा लेकर जब मैं शाम को घर पहुँचा तो अंजलि नया तवा देखकर खिल उठी। पहली बार शायद मैंने अंजलि के चेहरे पर इतनी खुशी देखी थी। अंजलि ने वह तवा सँभालकर रख लिया।

कोई दो सप्ताह बाद ही, जब मैंने अंजलि को वही पुराना तवा इस्तेमाल करते देखा तो जिज्ञासावश पूछा, 'क्यों भई, उस नए तवे का क्या हुआ?'

'मैंने उसे पैक करके संदूक में रख दिया है।'

मैंने फिर पूछा, 'क्यों भला?'

मूलतः मलयालम भाषा-भाषी, लेकिन लेखन देवनागरी हिंदी में। लघुकथा-संग्रह 'कबूतरों से भी खतरा है' प्रकाशित। स्मृतिशेष : १६ जुलाई, २०१५।

'सुरभि बिटिया के दहेज में काम आएगा।'

'अभी से?' मैं चौंकते हुए बोला, 'अभी तो वह सात-आठ साल की बच्ची है!'

'आप समझते क्यों नहीं, अंजलि मुझे समझाने लगी, अभी से तिनका-तिनका जोड़ोगे, तब भी दहेज पूरा नहीं हो पाएगा। जानते नहीं, आजकल लड़कीवालों को कितना कुछ देना पड़ता है! आगे समय और-भी खराब आनेवाला है।'

और अंजलि की बात सुनकर मैं उस रात ठीक से सो नहीं सका।

स्मृतियों में पिता

● **रघुनंदन त्रिवेदी**

'अ केले थे, तब कठोर थे। जो कमाते, खर्च हो जाता। कुछ बचता नहीं था। कोई चिंता भी नहीं थी। खाते, पीते और तानकर सो जाते थे। देखा जाए तो मजे में थे, पर कुछ अधूरा-सा भी था तो सही। एक किस्म का अनमनापन। जीने का जैसे कोई मतलब नहीं। दरअसल कुछ होना था। कुछ इस तरह कि जैसे कोई सख्त और खट्टी-सी चीज किसी नरम और मीठी-सी चीज में तब्दील होना चाहे; मसलन आम या बेर, तो वह क्या करे?' पिता कह रहे थे।

किस्से की शुरुआत दिलचस्प थी। मैं और भाई तथा बहन उत्सुक सुन रहे थे। माँ सिर्फ मुसकरा रही थीं।

मुसकराती हुई माँ का चेहरा एकदम बहन से मिलता-जुलता था, वैसे ही जैसे कुछ उदास, कुछ गंभीर होकर बहन अपने चेहरे को माँ जैसा कर लिया करती।

अगर पिता को कहीं बाहर जाना होता तो वे माँ की उस मीठी-सी मुसकराहट को जरूर अपने साथ ले जाते। पर यह दिसंबर की सुबह थी। पिता को कहीं जाना नहीं था। वे फुरसत में थे। हमारे बीच अँगीठी पड़ी थी। अँगीठी पर चाय उबल रही थी। माँ की मुसकराहट को हमने चाय में घुल जाने दिया।

फिर जो पिता ने कहा, सब मुझे याद है। वे कह रहे थे, उन्होंने शादी की, घर बसाया; बाद में हम आए और यों उनकी सारी कठोरता जाती रही।

और सपने से बाहर एक पिता की जीवनी

अपनी जिंदगी में पिता वह सब हो सकते थे, जो वे खुद या हम चाहते। घर में सबसे छोटा मैं था। मेरी इच्छा थी उन्हें घोड़ा बनकर खूब तेज भागते रहना चाहिए। भाई मुझसे बड़े थे। वे चाहते थे पिता नाव बनें ताकि बारिश के दिनों में हम चाहें तो नदी पार कर सकें। माँ और बहन का खयाल था कि उन्हें छाते में बदल जाना चाहिए, जो धूप में भी उतना ही जरूरी होता है, जितना बारिश में।

घर में किसी एक की भी इच्छा अधूरी रह जाती तो पिता कष्ट पाते, इसलिए जरूरत के मुताबिक घोड़े और नाव और छाते में बदलते रहते।

'बदलना अपने को थका लेना है', एक दिन पिता ने कहा। उनकी उम्र तब साठ साल थी। वे सचमुच थके हुए घोड़े की तरह हाँफ रहे थे और अब लालटेन या कुतुबनुमा जैसी कोई चीज हो जाना चाहते थे। हम लेकिन चाहते थे कि वे बच्चों की पसंद के हिसाब से हारमोनियम बनें

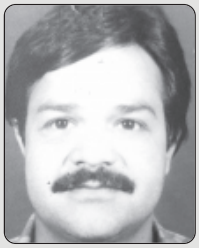

१७ जनवरी, १९५५ जन्म। 'यह ट्रेजेडी क्यों हुई', 'वह लड़की अभी जिंदा है', 'हमारे शहर की भावी लोककथा', 'इंद्रजाल तथा अन्य कहानियाँ' (कहानी-संग्रह) (२०१२, मरणोपरांत; सं. सत्यनारायण) स्मृतिशेष : १० जुलाई २००४।

और कमरे में बैठ जाएँ। एकदम नई चीज था शुरू-शुरू में हारमोनियम घर के लिए। कुतूहलवश बच्चे उन्हें घेरकर बैठ जाते और जब मन होता, बजाते। पर जल्दी ही उनके सुर बिगड़ गए। यह भी तब हुआ, जब बच्चे हारमोनियम से उकता गए थे। हारमोनियम बने पिता बच्चों की उपेक्षा से आहत होकर स्वत: बजने लगे, कई बार तो आधी रात हो जाने पर भी। असल में, वे चाहते थे, हम सब पहले की तरह चकित-से उनका किसी भी चीज में बदल जाने का जादू देखें और उन्हें घेरे रहें, शायद इसी कारण बिना किसी से पूछे एक दिन वे पेड़ हो गए। देखा जाए तो यहीं से उनकी कठिनाइयों का सिलसिला शुरू हुआ।

पेड़ में तब्दील होकर घर में वे जहाँ बैठते, वहीं धँस जाते। कभी भाई के कमरे में, कभी मेरे कमरे में। बार-बार उन्हें उखाड़कर दूसरी जगह ले जाना पड़ता, जो एक मुश्किल काम था। इसलिए एक दिन हमने उनसे प्रार्थना की कि वे पेड़ के सिवाय कुछ और हो जाएँ। पेड़ होकर पिता खुद कष्ट पा रहे थे, क्योंकि उखाड़ते वक्त न चाहते हुए भी जरा-सी बेरहमी हो जाती और जड़ों के टूटने से उनका शरीर थर-थर काँपता। हमारी बात मानते हुए वे फिर से पिता बने, मगर उनके शरीर का कंपन यथावत् रहा। डॉक्टर के मुताबिक इस बीमारी का नाम पर्किंसन था और लाइलाज थी। लेकिन डॉक्टर को पता नहीं था कि पिता खुदा को बदलने का जादू जानते हैं। वह एक परची पर कुछ दवाइयों के नाम लिखकर घर से अभी गया ही था कि पिता के चेहरे पर मुसकराहट आई। बेशक वे कमजोर हो चुके थे, मगर इतने भी नहीं कि एक बार और न बदल सकें। उनका चेहरा लाल था। हाथ-पैर काँप रहे थे। वे बदलने की कोशिश कर रहे थे। इस कोशिश में तीन-चार मिनट लगे। इन तीन-चार मिनटों में ही शरीर की पूरी ताकत लगाकर वे एक तसवीर में तब्दील हुए और मेरे कमरे में टी.वी. के दाईं ओर जहाँ दीवार खाली थी, टँग गए।

लघुकथा : बिंदु-बिंदु विचार

● मधुदीप

नए लघुकथाकारों से मेरा आग्रह है कि वे लघुकथा की भाषा और उसके शिल्प के प्रति अधिक सचेत रहें। संवेदना रचना का विशेष गुण होता है, मगर शिल्प और मँजी हुई भाषा के अभाव में रचना में संवेदना-पक्ष भी पूरी शिद्दत से नहीं उभर पाता तथा रचना सपाट और सतही बनकर रह जाती है। यह बात लघुकथा पर ही नहीं, साहित्य की हर विधा पर लागू होती है और किसी भी नए रचनाकार के लिए यह आवश्यक है कि वह इसके प्रति पूरी तरह सचेत रहे। यह जान लेना आवश्यक है कि लघुकथा में सपाटबयानी से बचना बहुत ही अनिवार्य है अन्यथा रचना अपना असर पाठक पर कतई नहीं छोड़ पाएगी।

हमें इस राग को आलापना बंद करना होगा कि पाठक समय के अभाव के होते लघुकथा की तरफ आकर्षित हुआ है या हो रहा है। ऐसा मानना एक खुशफहमी का शिकार होना मात्र है। यदि ऐसा होता तो कहानी विधा की सारी जानी-मानी पत्रिकाएँ अब तक लघुकथा की पत्रिकाओं में परिवर्तित हो चुकी होतीं। मगर स्थिति बिल्कुल इसके विपरीत है, क्योंकि लंबी-छोटी कहानियों के मध्य लघुकथा बमुश्किल कहीं-कहीं अपनी जगह बना पाती है। समय के अभाव के कारण लघुकथा की तरफ पाठक का झुकाव होने की बात करके हम लघुकथा की क्षमता को कमतर करके आँक रहे होते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम लघुकथा के सहयात्रा अपनी पूरी क्षमता से सृजन करके इसे पूरी शिद्दत के साथ कहानी के समक्ष लाकर खड़ा करें। फिर कोई भी पत्रिका कहानी को मुख्यधारा में देते हुए लघुकथा को यदा-कदा या फिलर के रूप में देने का जोखिम नहीं उठा पाएगी। मैं तो इससे भी एक कदम आगे बढ़कर अपने लघुकथाकार साथियों से यह अनुरोध करना चाहता हूँ कि वे उन पत्र-पत्रिकाओं में अपनी लघुकथाएँ प्रकाशित करने के लिए न भिजवाएँ, जो इसे उपेक्षित भाव से या फिलर के तौर पर प्रकाशित करती हैं। आठवें दशक की वह स्थिति तो कुछ समझ में आती है, जब लघुकथा अपने शुरुआती दौर में थी, मगर उसे गुजरे बहुत समय हो गया है। अब नई सदी का दूसरा दशक चल रहा है।

मेरा मानना है कि लघुकथा भाषा की दुरूहता का शिकार न होने पाए। हमें लघुकथा को बहुत अधिक संस्कृतनिष्ठ भाषा से बचाकर इसे जनभाषा में प्रस्तुत करना होगा। मेरी इस बात को कोई इस रूप में न ले कि मैं हिंदी भाषा को विकृत करने या होने देने की बात कर रहा हूँ, अपितु इसे इस रूप में ग्रहण करें कि हमारी लघुकथा आज के जनजीवन के नजदीक है तो उसे उसी की भाषा में पाठक के सामने जाना होगा। प्रांजलता का मोह हमें त्यागना ही होगा। मैं बहुत विनम्रता से कहना चाहता हूँ कि आज लघुकथा को जयशंकर प्रसाद की अपेक्षा प्रेमचंद की भाषा की आवश्यकता है, जो कि पाठक को सीधे-सीधे रूप में अपनी सी लगती है। उसी भाषा में लघुकथा की संप्रेषणीयता की पहुँच पाठक तक सही से हो पाती है। संप्रेषणीयता की मेरी इस बात को आप लघुकथा में सपाटबयानी से न जोड़ लें, इसलिए कतई साफ कर देना चाहता हूँ कि मैं लघुकथा में ही नहीं, साहित्य की किसी भी विधा के लेखन में सपाटबयानी के सख्त खिलाफ हूँ। भाषा और शिल्प का सौंदर्य ही रचना को ऊँचाई तक ले जाता है और यह साहित्य का प्राणतत्त्व भी है। बात सिर्फ सही और सटीक भाषा की हो रही है। मेरा तो यह भी मानना है कि हमें लघुकथा को अति-आंचलिकता से भी बचाना होगा, क्योंकि एक प्रदेश की आंचलिक भाषा दूसरे प्रदेश के पाठक के लिए सहज ग्राह्य नहीं हो पाती। हाँ, हम आंचलिक उपन्यास व आंचलिक कहानी की तर्ज पर आंचलिक लघुकथा का एक वर्ग अवश्य बना सकते हैं।

मित्रो, हमें यह अवश्य सोचना होगा कि हम लिख किसके लिए रहे हैं! क्या हमारा लक्ष्य पाठक तक पहुँचना है या फिर हमें विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों तथा शोधार्थियों के लिए लिखना है? नि:संदेह हम पाठकों के लिए लिख रहे हैं और विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों, शोधार्थियों को उसे ही स्वीकार कर उसकी मीमांसा तथा समीक्षा करनी होगी। उन्हें गुरुताई के बोझ से स्वयं को मुक्त करके लघुकथा के समीप आना होगा। लघुकथा उनके पीछे न भागे, अपितु उन्हें उसे उसी और सही रूप में स्वीकार करने को विवश कर दे। लघुकथा को हमें उस ऊँचाई तक ले जाना होगा कि कोई इसकी उपेक्षा न कर सके। अब सभी विश्वविद्यालयों

एक यात्रा अंतहीन, उजाले की ओर, और भोर भई, पराभव, लौटने तक, कल की बात (उपन्यास), छोटा होता आदमी (कहानी-संग्रह), मेरी बात तेरी बात, समय का पहिया (लघुकथा-संग्रह), ऐसे बनो बहादुर (बाल-उपन्यास) चर्चित। लघुकथा संकलन की महत्त्वपूर्ण शृंखला 'पड़ाव और पड़ताल' के संयोजक/संपादक तथा दिशा प्रकाशन के संचालक-प्रबंधक।

मैं फेसबुक पर व्यक्तिगत या लघुकथा-समूहों पर पोस्ट की जा रही लघुकथाओं तथा उससे इस विधा के हो रहे अहित के मुद्दे पर बात करना चाहता हूँ। यदि आप फेसबुक से जुड़े हैं तो अवश्य ही आप वहाँ पर लघुकथा-समूहों की गतिविधियों से तथा वहाँ पर पोस्ट की जा रही लघुकथाओं तथा उनकी गुणवत्ता से भी रूबरू होते होंगे। मेरे दोस्तो! बुरा मत मानना, कितनी ही कमजोर तथा अधकचरी रचनाएँ वहाँ पर प्रस्तुत की जा रही हैं, यह आपसे छिपा हुआ नहीं है। उन रचनाओं को एक-दूसरे की प्रशंसा और भ्रमित करनेवाली टिप्पणियाँ भी मिलती हैं। इस झूठी प्रशंसा से नवोदित लेखक दिग्भ्रमित होता है और मेरा यह मानना है कि इससे उसका विकास रुक जाता है।

में लघुकथा को भी साहित्य की दूसरी विधाओं की तरह पूरी गंभीरता से लेना होगा और यह हो भी रहा है, चाहे इसकी गति थोड़ी सुस्त है।

पिछले दिनों मैंने महसूस किया है कि कुछ पत्र-पत्रिकाओं के संपादक अपरिपक्व रचनाओं, चुटकुलेनुमा गद्य या दृष्टांतों को लघुकथा शीर्षक के तहत अपनी पत्र-पत्रिका में छापकर इस विधा का गहरा अहित कर रहे हैं। मैं यह तो नहीं कहूँगा कि वे जान-बूझकर ऐसा करते हैं, मगर ऐसा हो तो रहा ही है। उनकी एक शिकायत रहती है कि श्रेष्ठ लघुकथाएँ उन्हें मिलती ही नहीं हैं। प्राप्त ढेर में से छाँटने पर जो कुछ सही सा उन्हें मिलता है, उसे ही वे प्रकाशित करते हैं। उनकी बात किसी हद तक सही होते हुए भी मैं उनके इस तर्क से पूरी तरह सहमत नहीं हूँ। अच्छे के साथ ढेर सारा घटिया लेखन होना हर विधा की अपनी समस्या है। बात सिर्फ इस विधा को समझकर तथा प्राप्त रचनाओं में से श्रेष्ठ छाँटकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने की है। इतना तो पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों/उपसंपादकों को करना ही होगा। वे अपनी पत्र-पत्रिका में कुछ पृष्ठ लघुकथा के लिए निर्धारित कर इस दिशा में प्रयास तो करें। संपादक प्रतिष्ठित कहानीकारों तथा कवियों से समय-समय पर स्वयं आगे बढ़कर रचनाएँ मँगवाते हैं, कभी यह मौका लघुकथाकारों को भी दें। मेरी यही अपेक्षा बड़े प्रकाशन समूहों से भी है। वे इस विधा को उसका सही स्थान दें तथा एक निर्धारित नीति के तहत लघुकथा की रचनात्मक एवं आलोचनात्मक पुस्तकों का प्रकाशन अवश्य करें। मैं उन्हें विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि ऐसा करके उन्हें निराश नहीं होना पड़ेगा। भविष्य में लघुकथा विधा से साहित्य को बहुत अपेक्षाएँ हैं। कहानी के उद्‌भव के समय को याद करें। उस समय उपन्यास के सामने कहानी को भाव नहीं मिलता था, मगर आज कहानी साहित्य की केंद्रीय विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। समय के साथ यह प्रतिष्ठा लघुकथा को भी मिल सकती है। मैं उनसे आग्रह करता हूँ कि वे इस विधा के विकास में सारथी की भूमिका निभाएँ। पुराने और स्थापित लघुकथाकारों से मेरा अनुरोध है कि वे निरंतर सृजनशील रहें और अपनी श्रेष्ठ लघुकथाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेजकर उनकी शिकायत दूर करें।

पिछले दो वर्षों में मैंने बहुत शिद्‌दत से यह महसूस किया है कि लघुकथा विधा को कुछ पूर्णकालिक तथा पूर्ण समर्पित लेखकों की आवश्यकता है और वे ही इस विधा को विकास की ओर ले जा सकते हैं। दु:ख की बात यह है कि जो भी लेखक ठीक-ठाक लघुकथा लिखने लगता है, वह इससे हटकर कहानी और उपन्यास की ओर दौड़ लगा जाता है। न जाने ऐसी स्थिति क्यों बन गई है कि लेखक स्वयं को पूर्णतया कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, कवि और यहाँ तक कि व्यंग्यकार और बाल साहित्यकार भी मानना स्वीकार करता है; मगर कोई भी लेखक स्वयं को पूर्णकालिक लघुकथाकार कहलवाना या मानना स्वीकार नहीं करता। शायद लघुकथा में जुड़ा शब्द 'लघु' उन्हें लघुता का अहसास कराता हो! यदि ऐसा है तो यह एक भ्रम है और हम सबको यह भ्रम अपने मस्तिष्क से निकाल देना होगा। हमारा यह मानना है कि लघुकथा हिंदी साहित्य की पूर्ण तथा समर्थ विधा है और इसमें लेखन करके साहित्य की दूसरी विधाओं के लेखकों की तरह ही पूर्ण तथा सफल लेखक बना जा सकता है। शायद अभी यह दूर की कौड़ी लगे, मगर आनेवाला समय 'लघुकथा का भी' नहीं 'लघुकथा का ही' होगा।

दूसरी विधा के लेखकों ने लघुकथा-लेखन भी किया है और महत्त्वपूर्ण लेखन किया है। उनके लेखन से इस विधा को बल भी बहुत मिला है, मगर वे कभी भी इस विधा के प्रति समर्पित लेखक नहीं बने। उनका इस विधा में महत्त्वपूर्ण लेखन स्वागतयोग्य तो है; मगर हम उनके भरोसे इस विधा के पूर्ण विकास का सपना नहीं देख सकते। उसके लिए तो इस विधा के प्रति पूरी तरह समर्पित लेखकों की एक टीम की आवश्यकता होगी। इस तरह की एक पूरी टीम हमारे मध्य मौजूद भी है। बस, आवश्यकता है उसे सामने लाने की। निश्चित तौर पर कुछ लेखक हैं, जो न केवल पूरी तरह से इस विधा के प्रति समर्पित हैं, बल्कि इस विधा में नए प्रयोग करते हुए तथा इसकी गुणवत्ता कायम रखते हुए निरंतर इसके विकास में जुटे हुए हैं। ये लेखक स्वयं को लघुकथाकार कहलवाने से न तो कोई गुरेज करते हैं और न ही कोई संकोच, अपितु वे स्वयं को लघुकथाकार कहलवाने में गर्व का अनुभव महसूस करते हैं।

आजकल फेसबुक साहित्य का दौर है। छोटे आकार की रचना को फेसबुक पर सरलता से पोस्ट किया जा सकता है। इसलिए कविता, क्षणिका व हाइकू के साथ-साथ लघुकथाएँ भी बहुतायत से फेसबुक पर पोस्ट की जा रही हैं। अब तो फेसबुक पर पोस्ट की गई लघुकथाओं के संकलन प्रकाशित करने/करवाने का प्रचलन भी जोर पकड़ता जा रहा है। फेसबुक पर लघुकथाओं को पोस्ट किया जाना इस विधा के प्रचार-प्रसार के लिए एक शुभ लक्षण भी हो सकता है। आज सोशल मीडिया

का युग है और इसके माध्यम से आप अपने विचार तथा रचनाएँ द्रुत गति से अन्य लोगों/पाठकों तक पहुँचा सकते हैं। नि:संदेह किसी भी विधा के प्रसार के लिए सोशल मीडिया एक सशक्त माध्यम हो सकता है, मगर इसके अपने खतरे भी कम नहीं हैं।

मैं फेसबुक पर व्यक्तिगत या लघुकथा-समूहों पर पोस्ट की जा रही लघुकथाओं तथा उससे इस विधा के हो रहे अहित के मुद्दे पर बात करना चाहता हूँ। यदि आप फेसबुक से जुड़े हैं तो अवश्य ही आप वहाँ पर लघुकथा-समूहों की गतिविधियों से तथा वहाँ पर पोस्ट की जा रही लघुकथाओं तथा उनकी गुणवत्ता से भी रूबरू होते होंगे। मेरे दोस्तो! बुरा मत मानना, कितनी ही कमजोर तथा अधकचरी रचनाएँ वहाँ पर प्रस्तुत की जा रही हैं, यह आपसे छिपा हुआ नहीं है। उन रचनाओं को एक-दूसरे की प्रशंसा और भ्रमित करनेवाली टिप्पणियाँ भी मिलती हैं। इस झूठी प्रशंसा से नवोदित लेखक दिग्भ्रमित होता है और मेरा यह मानना है कि इससे उसका विकास रुक जाता है। एक रचनाकार जो भी रचता है, उसकी दृष्टि में वह श्रेष्ठ ही होता है। अगर उसकी दृष्टि में वह पूर्ण और श्रेष्ठ न हो तो वह उसे कागज पर उतारेगा ही नहीं। लेखक अपनी रचना की सही-सही परख कभी नहीं कर सकता, क्योंकि वह उसकी अपनी रचना होती है। यह बात नवोदितों पर ही नहीं, पुराने रचनाकारों पर भी लागू होती है। रचना के गुण-दोषों की परख तो कोई दूसरा निष्पक्ष व्यक्ति ही कर सकता है और यह दूसरा होता है—पाठक, अन्य वरिष्ठ लेखक, समीक्षक या संपादक। पहले जब लेखन होता था तो उसके सृजन तथा प्रकाशन के मध्य संपादक होता था, जो कि रचना के गुण-दोष के आधार पर उसका प्रकाशन स्वीकार या अस्वीकार करता था। इस तरह रचना की पड़ताल हो जाती थी तथा कमजोर रचना बाहर हो जाती थी। मगर फेसबुक पर ऐसा नहीं हो पाता। वहाँ पर यह सुविधा उपलब्ध है कि जो कुछ भी आप लिखें, उसे वहाँ पर पोस्ट कर दें। ऐसे रचनाकारों का एक समूह बन जाता है, जो एक-दूसरे की रचनाओं की जी-खोलकर प्रशंसा भी कर देते हैं। अब तो स्थिति इतनी विकट और विकृत हो गई है कि यदि कोई वरिष्ठ रचनाकार उन्हें सही बात समझाना चाहता है तो वे एकदम आक्रामक मुद्रा में आ जाते हैं और वरिष्ठ को ही अपनी इज्जत सँभालकर वहाँ से खिसकना पड़ता है। यह बात सब पर नहीं तो अधिकतर पर तो अवश्य ही लागू होती है। मैं फेसबुक पर लघुकथा-समूहों के 'एडमिन' से निवेदन/आग्रह करना चाहता हूँ कि वे लघुकथा विधा को गहराई से समझें और अपने-अपने समूह में लघुकथा पोस्ट किए जाने के लिए कुछ नियम-कायदे अपनाएँ। 'आप मेरी प्रशंसा करें, मैं आपकी प्रशंसा करूँ' की नीति से लघुकथा के विकास में बाधा आ रही है—इस बात को आप भी, आज नहीं तो कल अवश्य ही समझेंगे।

प्रेमचंद की एक लघुकथा राष्ट्र का सेवक आदर्श लघुकथा के रूप में रखी जा सकती है। मुख्य बात यह है कि प्रेमचंद जैसा रचनाकार, जो छह-सात सौ पृष्ठों का उपन्यास लिख सकता है, बीस-पच्चीस पृष्ठों की कहानियाँ लिख सकता है, वह तीन-चार सौ शब्दों की लघुकथा भी लिख सकता है। यह क्षमता आज के लघुकथाकारों को विकसित करनी चाहिए कि वे अपने आपको केवल लघुकथा तक ही सीमित न रखें और प्रेमचंद के आदर्श को अपने सामने रखें।

कमल किशोर गोयनका : दिनांक 20-22 अप्रैल 1990, कमलेश भट्ट कमल से लंबी बातचीत में

हमारा साहित्य की किसी विधा से कोई विरोध नहीं है तथा किसी को होना भी नहीं चाहिए। मगर आनेवाले समय की दस्तक को न पहचानना सच्चाई से आँखें मूँदना ही होगा। कहानी के आने से उपन्यास का महत्त्व कम नहीं हुआ और न ही लघुकथा के साहित्य के केंद्र में आने से कहानी का ही महत्त्व कम होगा। यह तो समय की अपनी माँग होती है कि किस समय में साहित्य की कौन सी विधा केंद्र में रहती है। कभी काव्य को ही साहित्य माना जाता था, मगर समय ने गद्य को केंद्र में ला दिया। हम क्यों न आशा करें कि २०२० के बाद का समय लघुकथा के उत्कर्ष का समय होगा। इसके लिए जोर-शोर से काम भी हो रहा है। हाँ, इसे हमारा किसी भी अन्य विधा के प्रति द्वेष न समझा जाए। मैं पहले उपन्यासकार हूँ, फिर कहानीकार और अब बाद में लघुकथाकार। यह और बात है कि समय ने मुझ पर पूरी तरह लघुकथाकार का ठप्पा लगा दिया है। बहरहाल, मैं स्वीकार करता हूँ और अपने सभी साथी लघुकथाकारों से यह स्वीकार करने का आग्रह करता हूँ कि साहित्य की कोई भी विधा किसी दूसरी विधा से छोटी या बड़ी नहीं होती, अपितु यह समय ही है जो आवश्यकतानुसार कभी एक विधा को केंद्र में ले आता है तो कभी दूसरी विधा को।

कभी काव्य में महाकाव्य, खंडकाव्य, कभी उपन्यास में बृहत् उपन्यास, लघु उपन्यास तो कभी कहानी में लंबी कहानी, सामान्य कहानी, कभी नाटक में लंबे नाटक और एकांकी तो कभी गद्य में व्यंग्य और लघुकथा। आपस में सभी सहोदर हैं तो फिर एक-दूसरे के उत्कर्ष से ईर्ष्या कतई नहीं होनी चाहिए। वैसे सही बात यह भी है कि सहोदरों के मध्य ईर्ष्या होती ही है, मगर वह अपनों की होती है, गैरों की नहीं। मित्रो, मैं कामना करता हूँ कि साहित्य की प्रत्येक विधा अपने चरम की ओर अग्रसर हो। कहते हैं न कि सबके भले में ही अपना भला होता है, तो उस दृष्टि से साहित्य के संपूर्ण विकास में ही लघुकथा का विकास भी निहित है अन्यथा तो पाठकों के अभाव का संकट तो पूरे साहित्य के समक्ष ही दैत्य के रूप में खड़ा है। हमें अलग-अलग खेमों में बँटकर नहीं, मिलकर तथा एकजुट होकर इस दैत्य का सामना करना होगा।

मन में और बहुत से विचार उमड़-घुमड़ रहे हैं, लेकिन एक सीमा होती है, जहाँ पर हमें अपनी बात को विराम देना ही पड़ता है। वह सीमा यहाँ मेरे समक्ष उपस्थित हो गई है, इसलिए मैं यहाँ पर अपने विचारों को विराम देता हूँ। आशा है, मेरे विचार लघुकथा के विमर्श को आगे बढ़ाएँगे।

१३८, गली नं. १६, ओंकार नगर बी, त्रिनगर-११००३५
दूरभाष : ९३१२४००७०९

फकीरा

● रामदरश मिश्र

वह मसजिद कस्बे के किनारे थी, काफी पुरानी और ऐतिहासिक।

सभी सड़कें घूम-फिरकर इधर जरूर आती थीं, यही कारण था कि इधर भीड़ बराबर बनी रहती। कुछ नई-पुरानी दुकानें, ठेले-खोमचेवाले, सबसे किनारे बालू, सीमेंट और सरिया आदि की बड़ी सी दुकान, सामने के मैदान में कभी मदारी बंदरों को नचाता, कभी नट खुद ही रस्से पर नाचता और कभी किसी पागल के पीछे बच्चे दौड़ते।

आज भी कुछ भीड़ थी, कोई नया लड़का भिखारी के रूप में पहली बार दिखा था। कहाँ से आया? इसे कोई नहीं जानता था, सिवा अटकल बाजियों के।

मौलवी साहब कस्बे की तमाम गतिविधियों से वाकिफ रहते थे। ऐसा कुछ भी नहीं था, जिसकी जानकारी उन्हें न हो।

'अरे! यह तो गूँगा भिखारी था, कोई कहता, 'रीवाँ का है' और कोई आस-पास के इलाके का बताता।

मौलवी साहब ने अपने दिव्य ज्ञान का फतवा जारी किया कि यहीं सराय इनायत का रहनेवाला है।

मौलवी साहब ने उस लड़के को छुआ, टटोला और उसके पुट्ठे को थपथपाते हुए 'फकीरा' का खिताब दे डाला। अब वह गूँगा कस्बे का फकीरा बन गया था। उसके भोजन-पानी का इंतजाम मसजिद की ओर से होने लगा था, वह मसजिद और उसके आस-पास नियमित रूप से झाड़ू-बुहारू करता। सुराहियों में वजू का पानी भरता। आस-पास के दुकानदार भी उससे बेगार लेने लगे।

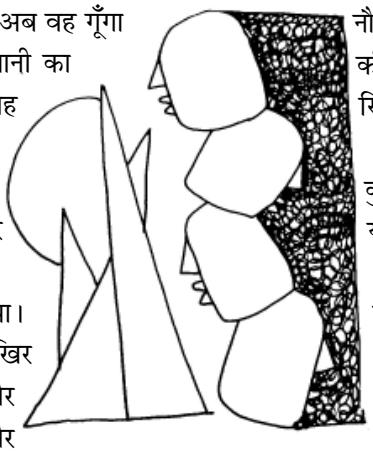

रोजा पूरा होते ही ईद का उत्साह छाया था। सबसे अधिक उत्साहित थे मौलवी साहब। आखिर उन्होंने ही ईद का चाँद सबसे पहले देखा था और मसजिद के लाउडस्पीकर से ऐलान किया था और सबको ईद की मुबारकबाद भी दी थी। खुशी में आतिशबाजी भी हुई थी, क्योंकि ईद का चाँद मौलवी साहब को दिख गया था।

उदार मौलवी ने मोटिया ही सही, फकीरा के लिए नए कपड़े का जुगाड़ लगवा दिया था।

मसजिद में नमाजियों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। फकीरा भी मसजिद के एक कोने में नए कपड़े पहनकर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था। इस वक्त उसकी आँखों की चमक उसके गूँगेपन पर हावी थी।

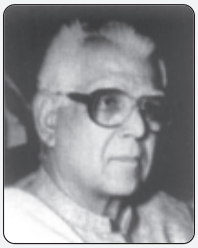

हिंदी के मूर्धन्य कवि-साहित्यकार, जिन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं को अपने रचनात्मक अवदान से समृद्ध किया। 'जल टूटता हुआ' और 'पानी के प्राचीर' उपन्यासों की धूम रही। अभी हाल में कविता-संग्रह 'आम के पत्ते' व्यास सम्मान से अलंकृत। इसके अतिरिक्त भी अनेक विशिष्ट सम्मानों से सम्मानित।

उसके दाहिने बाजू पर एक हिंदुवानी ताबीज देखकर मौलवी साहब का समूचा मिजाज एकाएक पारे सा छितर गया।

''स्याला! काफिर है!'' फकीरा को ताबड़तोड़ धक्के दे डाले, वह बेचारा बेजान सरीखा सीढ़ियों पर लुढ़कने लगा।

नमाजियों की संख्या लगातार बढ़ रही थी, लोग ईद की मुबारकबाद देकर एक-दूसरे से गले मिल रहे थे। कहीं कोई हलचल या आश्चर्य नहीं था।

राजनीति की संवेदना

एक लंबे अरसे तक प्रयास करने के बाद ही उसे नगर निगम में सफाईकर्मी की जगह मिल पाई। वैसे था तो वह ग्रेजुएट, लेकिन नौकरी की समस्या अपने स्थायीभाव में थी। पत्नी ने राहत की साँस ली, कम-से-कम अब उसे घर-परिवार और नाते-रिश्तेदारों में ताने तो सुनने को नहीं मिलेंगे।

पत्नी ने प्रस्ताव रखा, क्यों न पहली पगार से गरीबों को कुछ दान-पुण्य कर दिया जाए, क्या पता उन्हीं के भाग्य से यह नौकरी मिली हो।

पहला वेतन पाते ही उसने बिस्कुट, डबलरोटी और कुछ लंच पैकेट्स खरीदे तथा एक बोरेनुमा झोले में रखकर पत्नी के साथ झोंपड़पट्टी की ओर चला गया, जहाँ गरीब-गुरबा रहते थे।

भीड़ लग गई। आदमी, औरत और बच्चों ने उन्हें चौतरफा घेर लिया। उसकी पत्नी हर किसी को एक-एक पैकेट थमाती जा रही थी और बदले में ढेर सारी आशीषें बटोर रही थी।

एक दादा किस्म के आदमी ने अपना हिस्सा लेने के बाद पूछा, ''कौन निशान पर बटन दबाना है, बाबू?''

आर-३८, वाणी विहार,
उत्तम नगर, दिल्ली

नई पौध

● सूर्यकांत नागर

राधाबाई पिछले चार बरस से मेरे यहाँ झाड़ू-पोंछा, कपड़े, बरतन का काम कर रही है। पति के न रहने के बाद से कुछ घरों में काम कर अपना और बच्चों का भरण-पोषण कर रही है। बच्चों को पढ़ा रही है। कमली तो खैर अभी छोटी है, पर किसन ग्यारहवीं में पढ़ रहा है। राधा सपने देख रही है कि किसना भी बड़े घरों के बच्चों की तरह पढ़-लिखकर लाट-साहब बने।

इस बीच सौरभ के कुछ कपड़े निकले तो सोचा, राधा को उसके बेटे के लिए दे दूँ। कपड़े ज्यादा पुराने नहीं थे। फटे भी नहीं थे। साफ-सुथरे थे। राधाबाई एहसान मानते हुए कपड़े ले गई।

कुछ दिनों बाद किसन पुरानी साइकिल पर बिठाकर माँ को छोड़ने आया तो मैंने बड़े उत्साह से देखना चाहा कि किसन पर सौरभ के कपड़े कैसे फब रहे हैं! देखा, किसन अलग ही रंग-ढंग के अजीब से कपड़े पहने हुए है। देखकर निराशा हुई! उसके जाने के बाद मैंने राधाबाई से पूछा, ''कैसे लगे तुम्हारे बेटे को वो कपड़े?''

''बाबूजी! उसने तो उन कपड़ों को हाथ तक नहीं लगाया। देखते ही भड़क उठा, 'माँ, तुम ये क्या उठा लाई? दोस्त देखेंगे तो हँसेंगे। मजाक उड़ाएँगे। माँ तुम भी बस···'।''

सुनकर बुरा लगा, कहा, ''वे कपड़े वापस ले आना, किसी दूसरे को दे दूँगा।'' बाबूजी वो तो मैंने फेरीवाली बाई को दे दिए, जो पुराने कपड़ों के बदले में नए बरतन देती है।''

दुविधा

नलिनी बत्तीस की हो गई है। वैसे आजकल की लड़कियों की सोच के हिसाब से यह कोई बहुत ज्यादा उम्र नहीं है। पढ़ी-लिखी, जॉब करती लड़कियाँ कॅरियर की चिंता में लेट मैरिज में विश्वास करती हैं। नलिनी की बात तनिक भिन्न है। पढ़ी-लिखी वह भी है। दूर चेन्नई में अच्छा जॉब कर रही है। लावण्यमयी है। आकर्षक व्यक्तित्व की धनी। खाता-पीता मध्यवर्गीय परिवार है। चौबीस-पच्चीस की उम्र से ही माता-पिता ने योग्य वर की तलाश शुरू कर दी थी। पर ग्रह मिलते ही न थे। कभी शनि तो कभी मंगल, तो कभी गोत्र! कभी पढ़ाई आड़े आती थी, कभी जॉब, कभी कद, कभी पसंदगी-नापसंदगी। इसी जद्दोजेहद में समय बीतता चला जा रहा था। कई बार नलिनी मन-ही-मन चिढ़ जाती थी कि क्यों मम्मी-पापा ग्रहों के चक्कर में पड़े हैं। पर माता-पिता का भरोसा ग्रह-नक्षत्रों में था और वे नहीं चाहते थे कि बेटी का भविष्य बिगड़े। लंबे अरसे से चल रहे झमेलों के खातिर नलिनी सोच बैठी थी कि क्या शादी इतनी जरूरी है? मगर एक तरफ शरीर की शैतानियाँ उसे चैन नहीं लेने देती थीं, दूसरी तरफ समाज की निगाहें और तर्क-कुतर्क। पराजित न होने के भाव के तहत एक बार तो उसने शादी के लिए नौकरी छोड़ने की शर्त भी स्वीकार कर ली थी। आखिर एक सुंदर, शिक्षित सॉफ्टवेयर इंजीनियर से कुंडली मिल गई और विवाह की तिथि भी तय हो गई। दूरस्थ चेन्नई की नौकरी भी नहीं छोड़नी पड़ी। छुट्टी न मिलने के कारण विवाह के दो दिन पूर्व ही वह गृहनगर पहुँचनेवाली थी, उत्साह से भरपूर।

शादी की तैयारियाँ जोरों पर थीं। परिवार-जन उत्साह से भरे थे। चेन्नई से रवाना हुई थी, ट्रेन में खबर मिली कि पापा को सीरियस हार्टअटैक आया है। सुनकर समझ न आया, क्या करे, क्या न करे, कुछ अनहोनी हो गई तो? इस सोच ने उसको अंदर तक हिला दिया। एक ओर पिता की चिंता, दूसरी ओर लंबी प्रतीक्षा और संघर्ष के बाद आए विवाह के योग में यह व्यवधान। क्या उसके जीवन में सुख है ही नहीं? क्यों हर बार मुँह तक आया निवाला उससे यों छीन लिया जाता है? वह अनदेखे जगदीश्वर से प्रार्थना करने लगी कि कुछ अशुभ न घटे। उस ईश्वर से, जिसे उसने आज तक कभी तवज्जो नहीं दी थी। प्रार्थनारत उसके अंदर सहसा बिजली कोंधी। पापा के स्वास्थ्य-लाभ की उसकी यह प्रार्थना और चिंता सहज-स्वाभाविक है या विवाह में आते संभावित व्यवधान निवारण हेतु? लगा—जैसे उसने खुद अपने गाल पर तमाचा जड़ दिया। आत्मग्लानि से भरी एक चीख उसके मुख से निकली, जिसे सुननेवाला वहाँ कोई न था।

वरिष्ठ कथाकार। अनेक विधाओं में लेखन-प्रकाशन। कई साहित्यिक पत्रिकाओं का संपादन। दो उपन्यास, नौ कहानी-संग्रह, दो निबंध-संग्रह, एक पत्र-संग्रह, एक लघुकथा संग्रह 'विषबीज', तीन संपादित लघुकथा संकलन, एक आत्मकथ्य तथा लघुकथा-आलोचना पर अनेक लेख प्रकाशित। अनेक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

८१, बैराठी कॉलोनी, नं. २
इंदौर-१४ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९८९३८१००५०

विक्षेप

● प्रताप सिंह सोढी

बिजली के खंभे से टिका एक वृद्ध बड़े गौर से उन तारों को देख रहा था, जिनसे जुड़े अनेकों कनेक्शंस घरों में प्रकाश फैला रहे थे। कभी वह भी बिजली के खंभे की तरह अपने परिवार का सुदृढ स्तंभ था और अपने स्नेह के तारों से अपने परिवार के दिलों को रोशन किया करता था; लेकिन आज···।

तभी उधर से गुजर रहे पिता-पुत्र की दृष्टि उस पर पड़ी। भिखारी समझ पुत्र ने एक रुपए का सिक्का उसकी हथेली पर रख दिया। वृद्ध चौंका, इससे पहले वह कुछ बोले, पिता ने पुत्र को डाँटा, ''बड़े नासमझ हो, हर किसी को दान देने लगते हो। अरे, यह तो किसी अच्छे परिवार का लगता है। जरूर अपने पुत्रों से लड़-झगड़कर घर छोड़कर भाग आया होगा।''

यह सुनते ही वृद्ध की भृकुटि तन गई। क्रोध में उसने हथेली पर रखे सिक्के को उठाया और दूर सड़क पर फेंक दिया। सिक्का कुछ क्षण सड़क पर नाचता रहा और फिर जमीन पर लेट गया। वृद्ध ने जोर का ठहाका लगाया और चीखा, ''मेरी उम्र में पहुँचकर तुम भी इस सिक्के की तरह नाचते हुए इधर-उधर भटकते फिरोगे। तुम्हारे बच्चे भी तुम्हें घर से निकाल देंगे, जैसे मेरे साथ हुआ।''

पिता ने संशय भरी नजर से पुत्र को देखा और भविष्य में आनेवाले संकट के बारे में सोचकर भयभीत हो गया।

आशीर्वाद

वह अखबार की सुर्खियों में खोए हुए थे, तभी आठवीं में पढ़नेवाले उनके पोते ने अखबार से ढके उनके चेहरे से परदा हटाया और उनसे लिपटते हुए बोला, ''आज मेरा गणित का पेपर है। आपका आशीर्वाद लेने आया हूँ।''

दादा ने उसके हाथों को चूमा और आलिंगन में भर उसके सिर पर हाथ धरते हुए बोले, ''बेटा, तुम्हारा पेपर उत्तम होगा।''

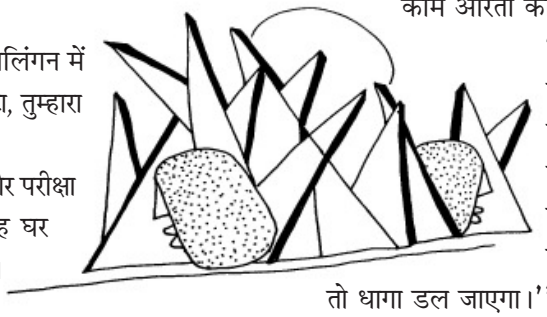

खुशी-खुशी उसने दादा के पाँव छुए और परीक्षा देने चला गया। परीक्षा समाप्त होने पर वह घर आया और सीधे दादा के कमरे में गया। उनके इर्दगिर्द खुशी से नाचते हुए बोला, ''दादाजी, आपके आशीर्वाद से मेरे सभी सवाल सही हुए हैं।''

दादा के चेहरे पर चमक उभर आई। भीतर उमड़े प्रेम को उन्होंने अपने पोते के गालों को चूमकर प्रकट किया और बोले, ''तुम्हारे दूसरे पेपर भी इसी तरह बेहतरीन होंगे।''

जाने-माने कथाकार। 'शब्द संवाद' (लघुकथा-संग्रह), कुछ लघुकथा-संकलनों का संपादन। लगभग सभी लघुकथा-संकलनों में लघुकथाएँ संकलित। लघुकथाओं का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद। अनेक उर्दू तथा पंजाबी लघुकथाओं का हिंदी में अनुवाद। सारस्वत सम्मान, हिंदी साहित्य सेवी पुरस्कार।

दरवाजे पर खड़ी उनकी पुत्रवधु उन दोनों का वार्त्तालाप सुन रही थी। उसके चेहरे को कठोर भावों ने घेर रखा था। आवेश भरे स्वर में वह बोली, ''मेरे बेटे ने दिन-रात परिश्रम कर यह सफलता पाई है। कोरे आशीर्वाद से कुछ नहीं होता, बाबूजी।''

यों कह उसने अपने बच्चे का हाथ पकड़ा और उसकी पीठ थपथपाते हुए बोली, ''शाबाश बेटे, आखिर तेरी मेहनत काम आई। चल, कपड़े बदल, मैं तेरा खाना तैयार करती हूँ।''

उदास मन वे उस दोनों को जाते हुए देखते रहे। उनकी आँखों से टपके आँसू गालों को गरमाते हुए उनकी श्वेत दाढ़ी में पनाह पा गए।

स्वाभिमान

काँपते हाथों से वह काफी देर से सुई में धागा डालने की कोशिश कर रही थी, लेकिन कभी सुई हिल जाती तो कभी धागा सुई के बारीक छेद तक पहुँच मुड़ जाता। दादी को परेशान होते देख पास खड़े पोते ने कहा, ''दादी मैं डाल देता हूँ धागा।''

पोते के गालों को थपथपाते हुए दादी ने उत्तर दिया, ''बेटा यह काम औरतों का है।''

''ठीक है, तो मैं अभी मम्मी को बुलाकर लाता हूँ।'' पोते ने कहा। बहू का नाम सुनते ही दादी के हाथ से सुई छूट गई, चश्मे के मोटे गिलासों पर आँसुओं की बूँदें फैल गईं। फिर भी थोड़ा सँभलकर पोते को रोकते हुए दादी हठतापूर्वक बोली, ''नहीं रहने दे। थोड़ी कोशिश और करूँगी तो धागा डल जाएगा।''

५, सुख शांति नगर,
बिचौली हप्सी रोड, इंदौर-४५२०१६ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९४७९५६०६२३

तंगदिली के बीच

● सतीश दुबे

सात मंजिला मल्टी के तीसरे फ्लोर पर शिवमजी, ग्राउंड पर दीपेशजी। खाने-चबाने की सुविधा के लिए नकली दाँतों का सेट दोनों ने बनवाए किंतु हेयर-डाय की बजाय उम्र की सफेद ध्वजा के रूप में बालों को दोनों ने यथावत् बनाए रखा। हमदम, हमदिल, जिंदगी जिंदादिली का नाम में विश्वास करते हुए ठहाका भरा जीवन।

प्रत्येक ब्लॉक में पंद्रह-बीस कॉरीडोर के आमने-सामने क्वार्टर, पारिवारिक चहल-पहल पर बंद फ्लैट में। एक क्वार्टर खुलने पर सामनेवाला संवाद-भय से खुलते ही बंद। क्लोज-डोर-कल्चर का तकरीबन सभी ब्लॉक पर साया। बहुत कम का डिनर-लंच, त्योहारी आदान-प्रदान में विश्वास। कारण, परंपरा से चिपकना या टेक एंड गिव से छुटकारा पाना।

इस वातावरण में दोनों मित्रों का जुगाड़ स्वाभाविक रूप से ईर्ष्या का विषय, पर दोनों बेपरवाह अपनी धुन में मस्त। घर में स्पेशल डिश बनने पर दोनों चुपचाप एक-दूसरे के साथ ऐसे शेयर करते कि मॉडर्न बहू को भनक न पड़े।

ऐसे ही एक प्रयोजन निमित्त एक दिन ब्रेकफास्ट टाइम पर फ्रेंड को लगाई कॉल का रिस्पॉन्स नहीं मिलने पर दीपेशजी हैरान-परेशान हो गए। लैंड लाइन ट्राई करने पर जो जवाब मिला, उसे सुनकर वे लगभग सुध-बुध खो बैठे। हाथ में थामा स्पेशल डिश का बाउल काँप गया।

''अरली मॉर्निंग दादाजी पास अवे।'' शब्दों ने उनके कान ही नहीं, पूरे शरीर को सुन्न कर दिया।

दुर्भाग्य से लिफ्ट और जनरेटर दोनों खराब! बावजूद इसके, वे हाँफते-रुकते तीसरे माले पर क्वार्टर में पहुँचे तथा उनकी डैड-बॉडी से प्रियजन से अधिक मान देनेवाले व्यक्ति की तरह लिपट गए। उनके मुँह में आज बनी स्पेशल डिश ठूँसते हुए रोते-बिलखते हुए हमेशा के शब्दों में अस्फुट स्वरों में बोले जा रहे थे, ''यह तो तुझे आज भी खिलाकर रहूँगा।''

पान का बीड़ा

भील आदिवासी समाज की नई पीढ़ी के तरक्की पसंद युवा वर्ग में रौनक ने अपना नाम दर्ज कराया था। उसके माता-पिता को प्रसन्नता तो थी किंतु उनकी इच्छा थी कि बेटा उनके बाप-दादों की सामाजिक विरासत को बनाए रखे।

यह सब जानते हुए बैंक में सीनियर मैनेजर पद पर पदस्थ रौनक के लिए यह निर्णय करना मुश्किल हो रहा था कि वह सहकर्मी प्रीत कौर के प्रेम-प्रसंग का जिक्र उनसे कैसे करे। पिछली दो बार की गाँव विजिट में उसने माता-पिता को सांकेतिक तथा कॉलेज में पढ़नेवाले भाई-बहन को फिल्म की लव-स्टोरी की तरह सबकुछ बता दिया था।

सुपरिचित साहित्यकार। 'सिसकता उजास', 'भीड़ में खोया आदमी', 'राजा भी लाचार है' तथा 'प्रेक्षाग्रह' सहित ७ लघुकथा संग्रह, एक शोध-प्रबंध, पंजाबी, मराठी, गुजराती, बांग्ला तथा तेलुगु में लघुकथाएँ अनूदित एवं उनके संग्रह प्रकाशित। अनेक राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त। उपन्यास पर फिल्म का निर्माण तथा छात्रों द्वारा शोध-प्रबंध।

होली के पंद्रह दिवसीय प्रसिद्ध परिणय भगोरिया पर्व पर अंतिम चर्चा के लिए प्रीत को भी घर ले जाने का रोहन ने पक्का इरादा कर लिया। निर्धारित दिन टैक्सी उसके गाँव घर के सामने खड़ी हुई।

हमेशा की तरह इस बार सबकुछ अलग प्रीत के आगमन की वजह से था। चेहरे के हावभाव से यह जानना मुश्किल था कि माता-पिता खुश हैं या नहीं? वस्तुस्थिति यह थी कि शिक्षित परिवार की छाप बनी रहे। इसका निर्वाह पिता बादल सिंह मइढा ताड़ी के नशे में भी करने लगे थे।

प्रारंभिक मिलन-भेंटी की औपचारिकताओं के बाद गिड़गिड़ाकर सबकुछ स्पष्ट कहकर, अंतिम निर्णय लेने के लिए रोहन उनके पैरों पर झुक गया। उसे ठीक से बैठने के लिए कहते हुए वे पत्नी के साथ अंदर गए तथा विचार-विमर्श किया। वापस लौटकर दोनों ने प्रीत के माथे पर हाथ रखकर कहा, ''पूरे झाबुआ जिले में तू अकेली हमारी सिख धर्म की बहू होगी। दो-चार दिन ठहर जाओ, भगोरिया हाट आनेवाला है। वहाँ तू भीलन बनकर जाना। वहाँ तेरे को ये पसंद करेगा, तू भागेगी, ये पकड़कर गुलाल लगाकर, पान का बीड़ा खिलाएगा और बस हो गए तुम लाड़ा-लाड़ी।''

''दादा, इनके घरवाले दो लाख हमसे लिये जानेवाले दापा, वरमूल्य देने को तैयार हैं।''

''चुप मेरे को अपना बचड़ा बेचना थोड़े ही है।'' और छोटे लड़के से हँसते हुए बोले, ''राघविया, बजारे! बाहर पड़ा मांदल ढोल।''

समाज की रीत के विरुद्ध बादल सिंह पुत्र-प्रेम में ऐसा निर्णय एकदम ले लेंगे, यह तीनों संतानों सहित प्रीत तो ठीक, घर की दीवारों को भी कल्पना नहीं थी।

७६६, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)

अपराध-बोध

● आभा सिंह

बहुत अरसे बाद दोनों बहनें मायके में इकट्ठी हुईं। कामकाज के बाद दोपहर की गुनगुनी धूप में माँ के पास बैठकर बतियाने लगीं। कुछ ससुराल की, कुछ पति-बच्चों की, कुछ दुनिया की, कुछ दुनियादारी की। जल्दी ही बात परिवार के विवाहों पर जा पहुँची। फिर अपने-अपने विवाह तक। बाबूजी ने क्या-क्या दिया—इसका गुणगान हुआ। फिर 'क्या-क्या नहीं दिया गया' की शिकायत तक जा पहुँची।

'मुझे तो पंद्रह तोले सोना मिला था।'

'पर मुझे तो दस ही मिला।'

'बाबूजी ने इक्कीस जोड़े दिए थे।'

'पर मुझे तो पंद्रह ही दिए।'

'तुझे कीमती गैजेट भी तो दिए।'

'तो तेरी पायलें कितनी भारी थीं।'

'तुझे जाड़ों का बिस्तर दिया था। मुझे तो नहीं दिया।'

'तेरी शादी गरमियों में हुई थी।'

'तुझे तो···।'

'मुझे तो···।'

आवाजें ऊँची से ऊँची होने लगीं।

व्यापार से थककर आए पिता खाना खाने के बाद सोने के उपक्रम में थे। शोर-शिकायतों से तंग आकर दरवाजा बंद करने उठ गए। दरवाजा बंद करते हुए उन्होंने दोनों बहनों को देखा, गुस्सा···उलाहना···तरस···तटस्थता!

दरवाजा बंद हो गया···तकरार भी।

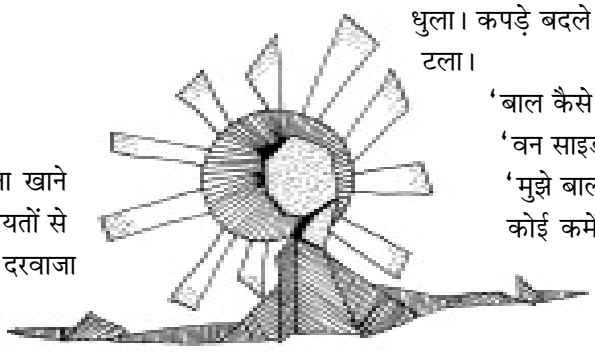

हुड़क

'उठो बिट्टू, सुबह हो गई।'

'मैंने ब्लाइंड्स खोल दी हैं।'

वन्या ने चेहरा दूसरी तरफ घुमा लिया और आँखें कसकर मींच लीं।

'देखो, सूरज निकल आया ऑरेंज कलर का, बादल पिंक-पिंक हो रहे हैं।'

करवट बदलकर वन्या ने एक आँख खोल मिचमिचाते आसमान पर उड़ती नजर डाली, फिर सोने का अभिनय करने लगी।

प्रकाशित कृतियाँ—कोने की आकाश, अब तो सुलग गए गुलमोहर, परछाइयों के अक्स, अस्तित्व का हठ, माटी कहे, टुकड़ा-टुकड़ा इंद्रधनुष।

'देखो, पास के घर की चिमनी से धुआँ भी निकलने लगा, सूरज गोल्डन हो रहा है, एक गिलहरी आ गई है।'

वन्या ने चेतन होकर खिड़की के बाहर देखा।

'अब तुम भी उठो बेटा, आज तो स्कूल जाना है।'

'आपने तो कहा था, दो दिन बाद जाएँगे।'

'नहीं बिट्टू, आज ही जाना है। तुम्हें बिठा दूँ?'

वन्या उठकर गोद में चढ़ गई। मनुहारों में ब्रश हुआ। मुँह धुला। कपड़े बदले गए। नहाने का कार्यक्रम दोपहर के लिए टला।

'बाल कैसे बनाऊँ?'

'वन साइड पोनी।'

'मुझे बाल अच्छी तरह बनाने नहीं आते।'

कोई कमेंट नहीं आया। बाल गूँथे गए, उन्हें छूकर और शीशे में निहारकर वन्या ने उँगलियों से 'परफेक्ट' की मुद्रा बनाई।

'प्यारी बिटिया, लाडो रानी, मैं तुम्हें बहुत प्यार करती हूँ।'

'क्या छुट्टू से भी ज्यादा···?'

लीला ने चौंककर देखा। वन्या की आँखों में हजार प्रश्न थे अपनी नवजात बहन के लिए। उसका दिल भर आया। छोटी बहन के आने से दूर हुई माँ की गोद पाने को हुड़कती पाँच बरस की बच्ची!

'हाँ, हाँ, छुट्टू से भी ज्यादा, सबसे ज्यादा।'

वन्या लीला के पेट से कसकर चिपक गई, 'आई लव यू अम्मा, आई लव माय मॉम वैरी मच।'

मकान नं. ८०-१७३, मध्यम मार्ग, मानसरोवर,
जयपुर-३०२०२० (राज.)
दूरभाष : ०९९२८४९४११९

लघुकथा की शास्त्रीयता : भारतीय एवं वैश्विक परिदृश्य

● शकुंतला किरण

लेखिका परिचय

वरिष्ठ लघुकथाकार। हिंदी लघुकथा में प्रथम शोधोपाधि। अनेक पुस्तकें प्रकाशित।

लघुकथा की आकारीय लघुता के लिए शाब्दिक मितव्ययता और शाब्दिक मितव्ययता के लिए कम शब्दों में अधिकाधिक जानकारी प्रदान कर सकने या कथ्य-संप्रेषण हेतु तीव्र प्रभावोत्पादक शब्दों के चयन की क्षमता अपेक्षित होती है, साथ ही शब्द-चयन में यह सतर्कता भी वांछनीय होती है कि वे शब्द दुरूह न होकर जन-सामान्य की दैनिक बोलचाल की भाषा के हों, अत: लघुकथा में भाषा की भूमिका का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है।

कहानी में प्रत्येक शब्द के चयन हेतु लघुकथा जितनी अतिरिक्त सतर्कता बरतने की बाध्यता नहीं होती, क्योंकि उसमें विस्तार संभावित रहने के कारण कथ्य के सभी पहलुओं पर प्रकाश डालना मुख्य होता है, शाब्दिक मितव्ययता की अनिवार्य-बाध्यता नहीं। कहानी के अंतर्गत बुद्धिजीवी वर्ग की विशिष्ट, सुसंस्कृत, परिष्कृत भाषा का प्रयोग भी किया जा सकता है तथा उसमें आलंकारिक वर्णन, दुरूहता, जटिल प्रतीक, बिंब-योजना, कवित्वपूर्ण वातावरण, विश्लेषण आदि भी संभावित हो सकते हैं। जैसा अंतर जयशंकर प्रसाद और कबीर की भाषा में है, लगभग वैसा ही अंतर कहानी व लघुकथा की भाषा में है।

शैली रचना का एक आवश्यक तत्त्व है, उपादान है और आधार भी। शैली विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है, ढंग है। व्यक्ति अपने संस्कारों एवं अनुभवों से जो कुछ प्राप्त करता है, वह सब शैली है, जो उसके प्रत्येक कार्य में प्रतिबिंबित होती है। शैली भाषा की वह विशेषता है, जो लेखक के विशिष्ट भाव या चिंतन को ठीक रूप में प्रेषित करती है।

इसी प्रकार, शैली लेखक के व्यक्ति का घनिष्ट एवं अविभाज्य तत्त्व है। व्यापक दृष्टिकोण से शैली किसी भी रचना की सारी विशेषताओं के और कमियों के साथ ही लेखक के व्यक्तित्व और समकालीन संस्कृति को अपने में समेटती है।

लघुकथा में शैलीगत विविधता है। प्रत्येक लघुकथाकार ने अपनी अलग शैली विकसित की है; यहाँ तक कि किसी एक ही लघुकथाकार की भिन्न-भिन्न शैलियों में लिखी गई विभिन्न लघुकथाएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरणार्थ, मोहन राजेश की 'एक और स्थिति' ('दैनिक हिंदी मिलाप' १६ जून, १९७५) अमूर्त शैली में, 'अमर-बेल' ('आठवें दशक की लघुकथाएँ') कथोपकथन शैली में, 'मुलाकातों के रंग' ('आठवें दशक की लघुकथाएँ') वर्णनात्मक शैली में, 'दिल' ('गुफाओं के मैदान की ओर') विचारात्मक शैली में, 'अभाव' ('गुफाओं से मैदान की ओर') व्यंग्यप्रधान शैली में आदि-आदि। जितने लघुकथाकार हैं, लगभग उतनी ही शैलियाँ हैं; फिर भी इनमें कथोपकथन वर्णनात्मक, विचारात्मक शैली ही प्रमुख रूप से उभरी हैं। रमेश बत्तरा, सत्य शुचि, मालती महावर आदि की शैली कथोपकथनात्मक अधिक है; मोहन राजेश, कृष्ण कमलेश, जगदीश कश्यप, भगीरथ परिहार, डॉ. सतीश दुबे, बलराम अग्रवाल, आभासिंह, विभा रश्मि, निशा व्यास आदि की लघुकथाओं में विचारात्मक शैली प्रमुख रूप से देखने को मिलती है; चित्रा मुद्गल की शैली में भाषा के अंतर्गत आंचलिकता का स्पर्श है; सिमर सदोश, पृथ्वीराज अरोड़ा, कमलेश भारतीय, मधुदीप आदि की शैली वर्णनात्मक अधिक है। यद्यपि डायरी-शैली, पत्र-शैली, संस्मरण-शैली का प्रयोग इसके सीमित कलेवर एवं सीमाओं के कारण नहीं के बराबर, बहुत कम मात्र में हुआ है; तथापि पत्र-शैली के अंतर्गत कुछ लघुकथाएँ मिल जाती हैं, जैसे डॉ. सतीश दुबे की लघुकथा 'आस्था की सलीब' (प्रभात किरण, इंदौर, गणतंत्र विशेषांक १९७५), शशांक आदर्श की 'ये पत्र के लोग' (दो धाराएँ लघुकथा संकलन) आदि-आदि। कहानियों के अंतर्गत किसी एक ही कहानी में मिश्रित शैली या उसकी विभिन्न स्थितियों के सापेक्ष उसमें विविध शैलियों का संश्लिष्ट रूप भी संभावित हो सकता है, किंतु लघुकथा में किसी एक ही प्रकार की शैली का निर्वाह हो पाता है। महावीर प्रसाद जैन (छोटी-बड़ी बातें) के अनुसार, 'लघुकथा की भाषा-शैली के संबंध में किन्हीं निशेधों या निश्चित प्रावधानों की परिकल्पना ही निरर्थक है, यह पूर्णतया लेखक की सुविधा और कथ्य की आवश्यकता पर निर्भर है।' विषय-वस्तु या कथ्य को अभिव्यक्त करने की गति धीमी एवं सूत्रकार होने के कारण कहानी हर घटना के साथ दूसरी घटना को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न करती है और इस स्थिति में एक घटना की समाप्ति पर दूसरी के सूत्र छोड़ देती है, किंतु लघुकथा में कथ्य को अभिव्यक्त करने की गति तीव्र होती है और साथ ही इस तरह की सूत्रकार घटनाओं का क्रम नहीं रहने तथा प्रखर दृष्टि के समकक्ष रहने के कारण वह न तो इस तरह की जिज्ञासा ही जाग्रत्

करती है और न ही आगे की बात जानने के लिए कोई कौतूहलपूर्ण सूत्र ही छोड़ती है, क्योंकि अपने कलेवर में वह स्वयं एक संपूर्ण सूत्र है। गुलशन बालानी की लघुकथा 'गुप्त सूचना' १ शैली के नए आयाम उद्‌घाटित करती है—

''हैलो दरोगाजी! एक गुप्त सूचना है। सेठ ज्वाला प्रसाद के हरीनगर वाले मकान में नंबर दो का माल भरा पड़ा है, छापा मारकर पकड़ लो, साला ब्लैक करता है।''

''हैलो सेठजी। एक गुप्त सूचना है; अपना गोदाम नंबर चार खाली करवा लो, अब से तीन घंटे बाद छापा मारने के ऑर्डर हो गए हैं।''

''हैलो दरोगाजी! आपने गुप्त सूचना देकर मेरी इज्जत बचा ली, आज रात गप-शप करने आप हमारे गरीबखाने पर तशरीफ ले आएँ, शराब और शबाब दोनों का इंतजाम है···आपकी गुप्त सूचना की फीस अलग होगी।''

उद्‌देश्य रचना का प्रेरणा तत्त्व होता है, जो रचनाकार को सृजन के लिए प्रेरित करता है। वह स्वांत: सुखाय भी हो सकता है और परजन हिताय भी। लघुकथा का उद्‌देश्य परंपरागत निरर्थक खोखले जीवन-मूल्यों पर प्रहार या कि हर 'गलत' व्यवस्था पर चोट करना व नवीन सार्थक जीवन-मूल्यों के लिए भूमि तैयार करना तथा सामाजिक विसंगतियों-विकृतियों एवं व्यक्ति की बाह्य व आंतरिक जटिलताओं की ओर संकेत करना है, जो सूक्ष्म होने के कारण साधारणतया अनकही रह जाती हैं या किसी विधा में अन्य स्थितियों के मध्य दब-सी जाती हैं, अप्रभावी रह जाती हैं। लघुकथा प्राय: समस्याजनक स्थिति की ओर संकेतात्मक अभिव्यक्ति देकर ही मौन हो जाती है और अप्रत्यक्ष रूप में समाधान के लिए उत्प्रेरित करती है। उसमें स्थितियों का निदान लेखक द्वारा आरोपित या सुझाया गया कम और प्रत्येक पाठक द्वारा खोजा गया अधिक होता है, क्योंकि जब पाठक किसी भी व्यवस्था के 'गलत रूप' से परिचित होता है, तब स्वभावत: ही वह उसके मूल कारण से हल तक ही यात्र का प्रयास करता है। कहानी का उद्‌देश्य किसी समस्या-निरूपण के साथ-साथ उसके समाधान की प्रस्तुति भी हो सकता है अथवा वह समस्याविहीन नितांत व्यक्तिगत अनुभूतिपरक रचना भी हो सकती है, जो साधारणतया आम पाठकों की संवेदना जाग्रत् करने में असमर्थ भी रह सकती है। इसके विपरीत लघुकथा का मुख्य कार्य ही पाठकीय संवेदना को जाग्रत् करना है। उद्‌देश्य की सफलता उसके कथ्य की संप्रेषण शक्ति पर निर्भर होती है कि वह कथ्य पाठक तक उसी रूप में यथावत् पहुँच पाया या नहीं। यद्यपि यह ग्राह्यता पाठकीय प्रबुद्धता के सापेक्ष होती है तथापि लघुकथा सजग रहती है कि उसके कथ्य का संप्रेषण साधारण मानस तक भी हो सके, जबकि कहानी में इस दृष्टिकोण पर अतिरिक्त बल नहीं पाया जाता, अत: कहा जा सकता है कि लघुकथा सोद्‌देश्य कथा-रचना होती है।

इस प्रकार लघुकथा तात्त्विक दृष्टि से कहानी से अलग है और यह अलगाव ही इसकी विशिष्टता है, क्योंकि इसके अंतर्गत बहुत-सी गैर-जरूरी बातें, परिधि से बाहर रह जाती हैं और लेखकीय कोणों पर निर्भरता का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि चयन का क्षेत्र एवं सीमा संकुचित रह जाने के कारण लेखक केवल उसे ही चुन सकता है, जो कथ्य के प्रभाव-संप्रेषण के लिए अत्यावश्यक है। अत: वे कथ्य जो कहानी के विस्तार-प्रिय वर्णनात्मक संगठन के अंतर्गत अपनी प्रभावोत्पादकता खोकर धूमिल हो जाते हैं, लघुकथा के माध्यम से प्रखर, प्रभावी और सार्थक अभिव्यक्ति पा सकते हैं। इस रूप में कहा जा सकता है, कि लघुकथा और कहानी में वही अंतर है जो एक 'तार' और 'पत्र' में है। 'पत्र' की तुलना में 'तार' में बहुत कम सीमित एवं सार्थक शब्द होते हैं, किंतु उनका प्रभाव पत्र से ज्यादा होता है। अतएव लघुकथा 'तार' है और कहानी 'पत्र'।

लघुकथा और बोधकथा में भी बहुत अंतर है। बोध-कथाओं में नैतिकता, शिक्षा, आदर्श, उपदेश आदि की प्रधानता होती है तथा वे किसी जटिल-सूत्र की सरल व्याख्या या किसी तथ्य-निरूपण अथवा किसी गहन-विचार के संप्रेषण हेतु गढ़े गए किसी उदाहरण, दृष्टांत आदि के रूप में भी प्रस्तुत हुई हैं, अत: वे शिक्षक या उपदेशक का काम करती हैं, किसी आदर्श की स्थापना के लिए प्रेरित करती हैं। उनके मूल में किसी-न-किसी प्रकार का 'त्याग' निहित है किंतु समकालीन लघुकथा इन प्रयोजनों से दूर है। उसका लक्ष्य तो व्यक्ति को व्यवस्था के विकृत रूप से परिचित कराना है और उसे 'सही' करने के प्रति व्यक्ति को कुछ सोचने हेतु बाध्य करना है। बोधकथाएँ किसी ज्ञानपरक तथ्य या सत्य से परिचित करवाती हैं किंतु लघुकथाएँ अपनी वेधक-क्षमता से पाठकों को, खोखली मान्यताओं व विसंगत परिवेश के प्रति विद्रोहात्मक रुख अपनाकर, उनसे जूझने के लिए भी प्रेरित करती हैं। अत: दोनों की प्रभावोत्पादकता में भी अंतर है। वर्तमान युवा पीढ़ी प्रत्येक बात या मान्यता को तर्क की कसौटी पर कसकर देखना-परखना चाहती है, केवल श्रद्धावश सुनकर या पढ़कर विश्वास नहीं करती, साथ ही उपदेश व आदर्श की बोझिलता से भी मुक्ति पाना चाहती है। फलस्वरूप, बोधकथाओं की ओर से उदासीन होकर लघुकथाओं की यथार्थपरक अनुभूतियों में उसकी रुचि बढ़ती जा रही है। इसका परिवेश उसे अपने ही दैनिक जीवन का एक अंग या अति निकटतम सा लगता है। यद्यपि लघुकथा के नाम पर बोधकथाएँ भी प्रकाशित हो ही रही हैं। उदाहरणार्थ प्रस्तुत है उमाकांत मालवीय की 'गृहिणी' लघुकथा, जो बोधकथात्मक है—

वह अठारहवीं शताब्दी थी, ईस्ट इंडिया कंपनी का शासनकाल। 'चारु चिंतामणी' ग्रंथ के प्रणेता श्री रामनाथ तर्क सिद्धांत, अभाव इस कदर कि इमली की पत्ती उबालकर पेट भरा जाता रहा, लेकिन यह दरिद्रता उनकी साहवी पत्नी की आत्मा को कहीं स्पर्श नहीं कर पाई थी।

नवद्वीप नगर के राजा शिवचंद्र उन पर अनुग्रह करने पधारे—

''आपके यहाँ किसी विषय में अनुपपत्ति हो तो उसे मैं दूर करने आया हूँ।''

''संप्रति मुझे अपने ग्रंथ में कोई अनुपपत्ति नहीं जान पड़ती।''

''मैं आपके ग्रंथ 'तर्कशास्त्र' के संदर्भ में नहीं, 'गृहस्थी निर्वाह' के संदर्भ में पूछ रहा हूँ।''

''गृह की बात गृहिणी जाने।''

राजा ने रामनाथ की पत्नी से भीतर जाकर यही पूछा।

''यहाँ तो कोई अभाव नहीं है, मेरा वस्त्र अभी इतना नहीं फटा कि उसे पहना न जा सके, जल का घट भी अभी सही सलामत है, यह चटाई भी ठीक है और फिर जब तक मेरे हाथ में चूड़ियाँ बची हुई हैं, मुझे अभाव क्या हो सकता है।''

इतना विनम्र उत्तर सुनकर राजा शिवचंद्र ने साहवी के चरणों पर माथा टेककर क्षमा माँगी।

दृष्टव्य है कि यह बोधकथा 'लघुकथा विशेषांक' के अंतर्गत 'लघुकथा' नाम से ही प्रकाशित की गई है। अति विपन्नावस्था में भी पति-पत्नी न केवल संतुष्ट हैं अपितु राजा की ओर से मिलनेवाली किसी भी प्रकार की सहायता नहीं स्वीकारते। त्याग का यह पक्ष जनसामान्य की साधारण प्रवृत्ति के अंतर्गत नहीं आता। चूँकि लघुकथा जनसामान्य के दैनिक यथार्थ को ही चित्रित करती है, अत: त्याग का यह आदर्शवादी रूप उसके धरातल से पृथक् है, फलस्वरूप बोधकथा एवं लघुकथा में पर्याप्त अंतर है। इसी प्रकार लघुकथा और भावकथा में भी अंतर है। भावकथाएँ किसी वैचारिक चिंतन बिंदु से रहित, मात्र भावनाओं के उद्रेक को ही चित्रित करती हैं। उनमें काल्पनिक या प्रतीकात्मक वर्णन अथवा मिलन विरह की भावानुभूतियों के चित्रण की प्रधानता रहती है। वे पाठक को कोई चिंतन-बिंदु नहीं सौंपती वरन् वैयक्तिक अनुभूतियों को ही रूपायित करती हैं, जबकि लघुकथा जनसामान्य के दैनिक संघर्षों के क्षणों को वाणी देती है, पाठकीय चिंतन को एक नई दिशा देती है। अत: लघुकथा और भावकथा के मध्य भी बहुत अंतर है।

लघुकथा को प्राय: चुटकुला या लतीफा भी समझा जाता रहा है; किंतु इन दोनों में भी बहुत भिन्नता है। चुटकुले क्षणिक मनोरंजन प्रदान करते हैं। पाठक या श्रोता को गुदगुदाने, हँसाने व चौंकाने की क्षमता भी रखते हैं; किंतु लघुकथा गुदगुदाती नहीं, वह पाठकीय चेतना पर प्रहार कर उसे किसी समस्या पर कुछ सोचने के लिए बाध्य करती है। लघुकथा के अंकित क्षणों में संघर्षों का ताप होता है, चुटकुलों के हास्य की क्षणिक शीतलता नहीं। लघुकथा विशेषांकों, संकलनों आदि में लघुकथा के नाम पर चुटकुले छपते भी रहे हैं। उदाहरणार्थ—सुभाष कौशिक की लघुकथा 'अंतत:' (साहित्य-निर्झर : लघुकथांक), शंकर मालवीय की लघुकथा 'वरदान' (प्रतिनिधि लघुकथाएँ), महेंद्र सिंह महलान की लघुकथा 'सब आप ही की मेहरबानी है हुजूर' (नवतारा : लघुकथा विशेषांक) जैसी सब रचनाएँ चुटकुले ही हैं, लघुकथा नहीं।

इस प्रकार चुटकुला मात्र हास्य उत्पादक है, लघुकथा की तरह चेतना को झकझोरता नहीं। डॉ. शंकर पुणतांबेकर के अनुसार, ''लघुकथा और चुटकुले के बीच सवाल सिर्फ आकार का ही नहीं, अर्थगर्भी सांकेतिकता का या परिवेश से जुड़े संदर्भों का भी नहीं, हमारी संवेदना या चेतना को संपादित करने की क्षमता को लेकर है।''

इसी प्रकार, लघुकथा और लतीफे में भी अंतर है, लतीफे का उद्देश्य भी मात्र विनोद करना ही है। मदनमोहन मदारिया कहते हैं, ''लघुकथा जहाँ किसी एक कथाकार की मौलिक अभिव्यक्ति होती है, वहाँ लतीफा दो-चार बैठकबाजों की सामूहिक शगल की पैदाइश होता है···लघुकथाएँ कमजोर हो सकती हैं, लेकिन फिर भी वे लतीफों से भिन्न ही रहती हैं।''

कन्नड़ भाषा की लघुकथाओं के अंतर्गत 'कन्नड़ लघुकथाएँ' पुस्तक की भूमिका में संपादक एल.एस. शेषगिरिराव लिखते हैं, ''लघुकथा ने साहित्य के एक विशिष्ट रूप में जन्म लिया करीब चालीस वर्ष पहले। ऐतिहासिक दृष्टि से पहले-पहल चाहे किसी ने लघुकथा लिखी हो, परंतु उसी को माध्यम बनाकर, उसकी शक्ति तथा उसकी विशेषता दिखानेवाले हैं 'श्रीनिवास', इसमें कोई संदेह नहीं। उनकी साधना इतनी अद्भुत है कि मानो लघुकथा 'श्रीनिवास' की प्रतीक्षा करती है।''

इस प्रकार लघुकथा कहानी, बोधकथा, भावकथा, चुटकुला, लतीफा आदि सबसे भिन्न गद्य-कथात्मक साहित्य की एक स्वतंत्र इकाई है। 'लघुकथा की संप्रेषणीयता' शीर्षक लेख में जगदीश कश्यप कहते हैं, ''लघुकथा कहानी नहीं है, परंतु इसका संबंध कहानी से उतना ही है जितना एकांकी का नाटक से है, लघुकथा कविता नहीं है, परंतु कविता की तीव्र संवेदना इसमें निहित है। लघुकथा एकांकी नहीं है, लेकिन इसके संवाद कथानक का विस्तार करके (कम शब्द संख्या होने के कारण) इसकी संप्रेषणीयता बढ़ाते हैं; लघुकथा रेखाचित्र नहीं है, परंतु इसमें पात्र की विवशता में कमजोरी और असफल पक्ष को भी उद्घाटित किया जाता है।''

यथार्थ के धरातल पर टिकी हिंदी लघुकथा अपने लघु कलेवर, सूक्ष्म व एकांगी कथ्य, सहजता, तीव्रता, प्रखर प्रभावोत्पादकता एवं बेधक क्षमता के कारण अपनी एक अलग स्वतंत्र पहचान रखती है।

हिंदीतर भाषाओं की लघुकथाएँ

हिंदी के अतिरिक्त अन्य प्रादेशिक भाषाओं की (संभव अन्वेषण के आधार पर उपलब्ध) लघुकथाओं के अंतर्गत उर्दू भाषा की लघुकथाओं में प्रेमचंद, सआदत हसन मंटो, अनीस मिर्जा, डॉ. जाकिर हुसैन, रतन सिंह आदि की लघुकथाएँ प्रमुखत: मिलती हैं। मंटो की लघुकथाएँ 'सियाह हाशिये' के रूप में हैं, जिनके अधिकांश कथ्य १९४७ में देश के बँटवारे (हिंदुस्तान-पाकिस्तान) से संबंधित दंगों, लूट-पाट, मार-काट, नृशंस हत्याओं, बलात्कारों आदि पाशविक कृत्यों की भयावह परिस्थितियों के मध्य से गुजरे दर्द भरे क्षण रहे हैं।

डॉ. जाकिर हुसैन की लघुकथा 'चाँदनी' और अनीस मिर्जा की 'खामोशी' भी अच्छी लघुकथाएँ कही जा सकती हैं।

कन्नड़ भाषा की लघुकथाओं के अंतर्गत 'कन्नड़ लघुकथाएँ' पुस्तक की भूमिका में संपादक एल.एस. शेषगिरिराव लिखते हैं, ''लघुकथा ने साहित्य के एक विशिष्ट रूप में जन्म लिया करीब चालीस वर्ष पहले। ऐतिहासिक दृष्टि से पहले-पहल चाहे किसी ने लघुकथा लिखी हो, परंतु उसी को माध्यम बनाकर, उसकी शक्ति तथा उसकी विशेषता दिखानेवाले हैं 'श्रीनिवास', इसमें कोई संदेह नहीं। उनकी साधना इतनी अद्‌भुत है कि मानो लघुकथा 'श्रीनिवास' की प्रतीक्षा करती है।''

राजस्थानी भाषा में मुरलीधर व्यास, सूर्य शंकर पारीख, विश्वनाथ, डॉ. मनोहर शर्मा, डॉ. उदयवीर शर्मा, दुर्गादत्त दुर्गेश, यादवेंद्र शर्मा, चेतन स्वामी, श्याम महर्षि, रामकुमार घोटड़, मुरलीधर वैष्णव आदि की लघुकथाएँ प्रमुख हैं। राजस्थानी लघुकथा का उद्‌भव किशोर कल्पना कांत द्वारा संपादित पत्रिका 'ओलमो' के प्रवेशांक (१९५४) में प्रकाशित मुरलीधर व्यास की 'प्रभु रो धरम' तथा ललित कुमार आजाद की 'भेद' लघुकथा से माना जा सकता है। 'मरुवाणी', 'कुरजा, 'मधुमती' आदि पत्रिकाएँ भी राजस्थानी लघुकथाओं को स्थान देती रही हैं। सन् १९७६ में डॉ. मनोहर शर्मा का 'सोनल भींग' लघुकथा-संग्रह राजस्थानी भाषा का प्रथम लघुकथा संग्रह तथा श्रीडूँगरपुर से प्रकाशित 'राजस्थानी' पत्रिका का अक्तूबर, १९७६ का लघुकथा विशेषांक राजस्थानी भाषा का प्रथम आधुनिक अथवा समकालीन 'लघुकथा विशेषांक' कहा जा सकता है। आठवें दशक से पूर्व की लघुकथाएँ किसी-न-किसी रूप में लोक-कथाओं, नीति-कथाओं, बोध-कथाओं या हास्य-कथाओं के ही अधिक निकट रही हैं, उनमें जीवन के किसी गंभीर क्षण का चित्रण प्राय: नहीं के बराबर ही मिलता है, किंतु आठवें दशक के उत्तरार्द्ध में 'जागती जोत' मासिक, 'राजस्थानी' त्रैमासिक, 'मनवार' आदि राजस्थानी भाषा की पत्रिकाओं में प्रभावोत्पादक लघुकथाएँ प्रकाशित हुई हैं, जो आम-आदमी की संवेदना व उसके छोटे-छोटे दु:खों को वाणी देती हैं। यद्यपि हिंदी लघुकथा की तुलना में इसका विकास धीमी गति से हुआ है, फिर भी 'राजस्थानी' के लघुकथा विशेषांक के बाद इसके प्रति पाठकीय रुचि में निरंतर वृद्धि होती चली गई।

गुजराती भाषा में पहली लघुकथा १९२३ में 'अब्दुल रहमान' (अमरलाल हिंगोरानी) लिखी गई। १९४७ से १९५५ तक गुजराती लघुकथाओं में प्रगतिवाद की छाप रही, जो यथार्थ से हटकर नारेबाजी तक ही सीमित थी, लेकिन १९५५ के बाद गुजराती की लघुकथाओं में व्यक्तिवाद उभरने लगा और यौन की प्रधानता दिखाई पड़ने लगी। स्त्री-पुरुष संबंध एक नए दृष्टिबिंदु से प्रगट हुए और सन् १९६० में अति आधुनिक वाद छा गया। लघुकथाएँ निम्न-मध्य वर्ग को लेकर चलती हैं, जिसमें कौतूहल तत्त्व उतना महत्त्व नहीं रखता, जितना कि जीवन में किसी उन्मादी क्षण अथवा विशिष्ट पहलू का उद्‌घाटन। हरीश वासवाणी इस शैली के नए उद्‌घाटक हैं। गुजराती लेखकों में राधेश्याम शर्मा, डॉ. जयंत खत्र, पन्नालाल पटेल, सुरेश जोशी, मधुराय, चंद्रकांत बख्शी, रावजी पटेल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

मराठी भाषा में भी काफी लघुकथाएँ लिखी गई हैं और उनमें सैक्स का उन्माद भाषा और शैली दोनों में पाया जाता है। यद्यपि हिंदी लघुकथा में भी ऐसा उन्माद मिल जाता है, किंतु मराठी लघुकथाओं की तुलना में बहुत कम मात्रा में। 'वर्ष वैभव' के विश्व लघुकथा विशेषांक में 'मराठी लघुकथा' के अंतर्गत ना.ग. बोडस की 'संतानहीन' लघुकथा छपी है, किंतु वह लघुकथा न होकर लेखक की शोध-यात्रा की प्रेरणा है व उसमें निहित मूल-प्रश्न की प्रस्तुति है, जो महाभारतयुगीन राजा पांडु तथा करील देश के राजा मल्लिकेश के संतान उत्पन्न न कर पानेवाली असमर्थता से संबंधित है। मराठी के वरिष्ठ लघुकथा-लेखकों में मालतीबाई, यशवंत, गोपाली जोशी, कुमारी पिरोज आनंदकर, वि.स. खांडेकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

बँगला भाषा की लघुकथाओं के संदर्भ में नंदगोपाल सेनगुप्त का कथन दृष्टव्य है, ''…रवींद्रनाथ के समय से लेकर शरतचंद्र के आविर्भाव तक बँगला की छोटी कहानियों में और कोई नवीन परिणति नहीं दिखाई देती…युग की रुचि के अनुसार आजकल छोटी कहानियाँ ही अधिक चलती हैं, इसीलिए इन गल्पों या छोटी कहानियों में ही इस आधुनिकता का बहुत अधिक परिचय मिलता है…छोटी कहानियों में संकेत रूप से सभी बातें रहती हैं, रवींद्रनाथ बँगला भाषा में गल्पों के पहले प्रवर्तक हैं।''

रवींद्रनाथ टैगोर यद्यपि बँगला लघुकथाओं के श्रेष्ठ रचनाकार हैं किंतु उनकी लघुकथाएँ हिंदी लघुकथाओं की तरह जीवन की निर्मम वास्तविकता को उजागर करने की अपेक्षा भावमय विश्व-मानव को ही अधिक चित्रित करती हैं। शरतचंद्र ने अपनी छोटी कहानियों में मनुष्य के प्रत्यक्ष अस्तित्व को उसके प्राप्तव्य परिवेश के अंदर से ही देखा है। प्रभात कुमार मुखोपाध्याय की अनेक छोटी कहानियों का मूल स्वर रहस्य या कौतुक के आश्रय पर टिका हुआ है। शैलजानंद मुखोपाध्याय, प्रेमेंद्र मित्र, विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय, प्रबोध कुमार सान्याल, जगदीश गुप्त, रामनाथ राय आदि ने भी छोटी-छोटी कहानियाँ लिखी हैं। आठवें दशक में हिंदी लघुकथा की तुलना में बँगला लघुकथा की गति बहुत धीमी रही है।

पंजाबी भाषा के लघुकथाकारों में सुलक्खन मीत, दर्शन मितवा, हमदर्दवीर नौशहरवी, जगदीश अरमानी, शरण मक्कड़, श्याम सुंदर दीप्ति, श्याम सुंदर अग्रवाल, विक्रमजीत नूर, निरंजन बोहा, कुलदीप सिंह 'दीप', हरभजन खेमकरणी, दर्शन जोगा, जगदीश राय कुलरियाँ आदि नाम प्रमुख हैं। खुशवंत सिंह की 'चेसटिटी बैलेट', सुरजीत सिंह बिरदी की 'चौथा सूराख', रामस्वरूप अणखी की 'इज्जत', 'केले की बहू', जसपाल सिंह मान की 'पोशाक', कुलदीप सिंह 'दीप' की 'पीला स्वर' आदि भी अच्छी लघुकथाएँ कही जा सकती हैं।

तमिल भाषा में लघुकथा का सृजन सन् १९२० से माना जा सकता

है तमिल लेखकों में अण्णा तुरे, वी.वी.एस. अय्यर, चक्रपाणि आदि के नाम प्रमुख हैं। 'वर्ष वैभव' के 'विश्व लघुकथा विशेषांक' में प्रकाशित चक्रपाणि की रचना 'परिवर्तन', जो कि लगभग १६०० शब्दों में है, कथ्य एवं शिल्प दोनों की दृष्टि से कहानी ही है, लघुकथा नहीं, जबकि वह 'तमिल लघुकथा' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित है।

इसी प्रकार हिंदीतर भाषाओं में तेलुगु, कश्मीरी, मलयालम, सिंधी आदि में भी यथेष्ट लघुकथाएँ मिलती हैं। परंतु इन भाषाओं की अधिकांश लघुकथाएँ किसी-न-किसी रूप में शिक्षात्मक या भावात्मक हैं तथा शिल्प की दृष्टि से कहानी के ही अधिक निकट हैं। यह भी कहा जा सकता है कि हिंदीतर भारतीय भाषाओं में यद्यपि लघुकथा सृजन हुआ, किंतु उसको स्वतंत्र विधा के रूप में गंभीरता से नहीं लिया गया। इसकी बेधकता, संप्रेषण क्षमता तथा प्रभावोत्पादकता के महत्त्व को कम समझा गया।

विदेशी भाषाओं की लघुकथाएँ

विदेशी भाषाओं के अंतर्गत सर्वप्रथम सीरिया देश में लेबनान प्रांत के खलील जिब्रान का नाम उभरता है, जिन्हें 'लघुकथा का जनक' भी कहा जा सकता है। जिब्रान की इन लघुकथाओं में बारीक डोरियों के कोमल चाबुक से संसार के बड़े से लेकर छोटे आदमियों तक की खबर ली है और उनकी मूर्खताओं और अंधविश्वासों का पर्दा फाश किया है। जिब्रान की लघुकथाएँ, सामाजिक, मानसिक, विसंगतियों एवं व्यवस्था के हर गलत रूप पर तीव्र प्रहार करती हैं। विश्व साहित्य में जिब्रान की लघुकथाएँ शिल्प एवं प्रभाव की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं।

रूसी भाषा में तुर्गनेव, चेखव, मेक्सिम गोर्की, दोस्तोएवस्की, बेरिसलोवकोएव, ग्रेगरी गोरिन, ब्लादलेन बाखनोव आदि लेखकों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिनकी लघुकथाएँ आधुनिकता के धरातल को स्पर्श करती हैं।

चेखव की लघुकथा 'कमजोर' सामाजिक-मानसिक विसंगति का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है। मानवीय प्रवृत्तियों की कमजोरी, दोगलेपन एवं मानसिक विसंगतियों पर चोट करना रूसी लघुकथाओं की विशेषता रही है। हिंदी लघुकथाओं की तुलना में रूसी लघुकथाएँ शिल्प-विन्यास की दृष्टि से कहीं-कहीं कहानी के निकट पहुँची लगती हैं।

अमेरिकी लघुकथाओं के क्षेत्र में जेम्स थर्बर, ओ. हेनरी, अर्नेस्ट हेमिंग्वे, विलियम सारोयां, एडगर ली मास्टर्स, मार्क ट्वेन, हाइमन कपलान, नार्मन मेलर, केन पर्डी, सैमुअल क्लीमेंस, एंबरोस बीयर्स, हेनरी स्लेजर आदि लेखकों के नाम प्रमुख हैं; किंतु जेम्स थर्बर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जेम्स ने छोटी-छोटी कहानियों के माध्यम से अपने परिवेश के उलझे तारों को झंकृत करने का प्रयास किया है। अमेरिकी लघुकथाएँ स्थितियों की आलोचना करती हैं। वे व्यंग्यात्मक भी हैं किंतु हिंदी लघुकथाओं की तुलना में उनमें विद्रोहात्मक रूप कम दिखाई देता है।

चीनी लघुकथाओं में कन्फ्यूशियस, लू-शुन, चाऊ-शू आदि नाम विशेष प्रमुख हैं। कन्फ्यूसियस की 'तानाशाह और शेर', चाऊ-शू की 'छोटा आदमी', लू शुन की 'सोहबत का असर', 'चतुर मूर्ख और गुलाम', 'एक राय', 'कुत्ते का प्रत्युत्तर', 'अभिव्यक्ति' आदि उल्लेखनीय लघुकथाएँ कही जा सकती हैं। चीनी लघुकथाएँ न केवल शासकीय व्यवस्था पर प्रहार करती हैं, अपितु मानवीय विसंगतियों को भी चित्रित करती हैं किंतु उनकी हिंदी लघुकथाओं की तुलना में नए जीवन-मूल्यों के निर्माण की भूमिका निभा सकने की गति धीमी है।

अंग्रेजी लघुकथाओं के क्षेत्र में शेक्सपियर, सामरसेट माम, चार्ल्स डिकेंस, पॉलराश, लारेंद्र हाउसमन आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

चेकोस्लोवाकिया की लघुकथाओं के क्षेत्र में काफ्का, जारोस्लाव हाशेक, लुदविक अशकेनात्सी, कारेग चापेल आदि नाम महत्त्वपूर्ण हैं। काफ्का की 'पुल', 'मेरा पड़ोसी' व 'चूहा और बिल्ली', जरोस्लाव हाशेक की 'पागलखाना', लुदविक अशकेनात्शी की 'एक आदमी' उल्लेखनीय लघुकथाएँ मानी जा सकती हैं।

आयरलैंड की लघुकथाओं में लार्ड डनसेनी, फ्रैंक ओकूनर, डानवर्न आदि के नाम प्रमुख हैं। लार्ड डनसेनी का नाम लघुकथा के क्षेत्र में विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। उनकी छोटी-छोटी कथाएँ जीवन के गंभीर पहलुओं को स्पर्श करती हैं। उनकी एक प्रसिद्ध लघुकथा 'काल और ओडीसियस' विचारात्मक है, जिसकी शैली व्यंग्यात्मक है। मोहब्बत, काल और ओडिसियस के माध्यम से मानवीय नियति एवं सनातन समस्या के पहलू को उजागर किया है।

इस प्रकार देशी-विदेशी लघुकथाओं की तुलना में आधुनिक हिंदी लघुकथा में जो विशेषताएँ मिलती हैं, उनमें प्रथम तो यह है कि इसके कथ्य निम्न-मध्यमवर्गीय सामान्य जन के दैनिक संघर्षों से भरे यथार्थ क्षण ही अधिक रहे हैं, वायवीय या अलौकिक नहीं। दूसरी बात यह है कि वह प्रत्यक्षत: समस्या का समाधान न देकर, अप्रत्यक्ष में ही समाधान के लिए उत्प्रेरित करती है तथा अपने लक्ष्य पर सीधे चोट करने के कारण अनावश्यक फैलाव के जाल में भी उलझती नहीं, फलस्वरूप इसकी गति में त्वरा होती है और भाषा में तल्खी व ताप। निरर्थक व सड़े-गले परंपरागत जीवन-मूल्यों का यह न केवल उपहास ही उड़ाती है, अपितु नए सार्थक जीवन-मूल्यों के लिए भूमि भी तैयार करती दिखाई पड़ती हैं। सबसे बड़ी बात है, इसका जुझारूपन। इसके पात्र यथास्थिति से समझौता नहीं करते, उससे जूझ सकने का साहस रखते प्रतीत होते हैं। इनका उद्देश्य भी शिक्षात्मक या मनोरंजनात्मक न होकर व्यवस्था के गलत पहलुओं को उजागर करना है।

अतएव उपन्यास, कथा-कहानियों की भीड़ में, आधुनिक हिंदी लघुकथा ने अपने लघु कलेवर, सूक्ष्म व एकांगी कथ्य, सहजता, तीव्रता, बेधक क्षमता, संप्रेषणीयता एवं प्रखर प्रभावोत्पादकता के कारण सहज ही अपनी पृथक् पहचान बनाई है।

निदेशक, मित्तल हॉस्पिटल एंड
रिसर्च सेंटर, पुष्कर रोड,
अजमेर (राज.)

दवा

● श्याम सुंदर दीप्ति

जसबीर को आज काम में व्यस्त न पाकर उसकी माता ने डॉक्टर के पास जाँच करवाने के लिए कहा। दो दिन पहले लाई गई दवाई खत्म हो गई थी।

जसबीर ने डॉक्टर के सामने बैठ, अपनी माता को स्टूल पर बैठा दिया और अपनी आदत के अनुसार बोला, 'डॉक्टर साहब, देखो तो, माता अब बचेगी भी या नहीं, और अगर बचेगी तो कितने दिन?'

डॉक्टर दिनेश ने माता की नब्ज पर हाथ रखा और फिर ब्लड प्रेशर की मशीन का पट्टा बाँधते, उसी अंदाज में मुसकराते हुए कहा, 'यह तो माताजी की मरजी है, जितना देर जीएँ।'

ब्लड प्रेशर चैक करके डॉक्टर ने कहा, 'अब तो ठीक है। दो दिन पहले से काफी फर्क है। आपकी मिसेज को दवा समझा दी थी, वही दवा जारी रखो। और हाँ, बस थोड़ा घी व नमक का परहेज कर लें।'

'घी तो बेटा मैंने बिल्कुल ही बंद कर दिया है। गाँव में कोई कह रहा था कि मक्खन का कोई डर नहीं होता। वह थोड़ा-बहुत···।'

'मक्खन तो माता चोरी-छुपे डाल ही लेती है। ज्यादा ही जल्दी है माँ को बापूजी के पास जाने की।' जसबीर ने एक बार फिर माता से मजाक करने के लहजे में कहा।

माता के चेहरे पर आज वैसे पहले से कुछ अधिक लाली थी और खुशी भी।

'तो फिर डॉक्टर साब, आपके हिसाब से अभी माताजी नहीं जानेवालीं', और फिर माता की तरफ देखकर बोला, 'पर माँ, मक्खन, घी एक ही बात है। मक्खन को गरम करो तो घी ही बनता है कि नहीं?'

'सारी उम्र प्रयोग की गई चीजों को छोड़ने के लिए समय तो लगता है, छोड़ देंगे तो बढ़िया रहेंगे।' डॉक्टर ने अपनी राय देते हुए माता से कहा और फिर परची पकड़ाते हुए जसबीर से बोला, 'माताजी को इस उम्र में घी छुड़वाने से ज्यादा जरूरी है, इन्हें वक्त से दवा दीजिए। दोनों वक्त, बिना किसी दिन भी भूले। बुजुर्ग थोड़ा-बहुत आलस कर जाते हैं। यह जिम्मेदारी आप खुद सँभालो।'

'दोनों वक्त जसबीर आ जाए न, डॉक्टरजी, फिर तो मुझे दवा की यों जरूरत नहीं है।' माता ने सहजता से अपनी बात कही।

बोलती आँख

आज वाली ही तारीख थी। एक वर्ष पहले तीन जून। उस दिन जब मुझे सबसे अधिक मेरे तायाजी के शब्दों ने घायल किया था, जो वे माँ से कह रहे थे, 'निकाल इसे घर से, कर बेदखल। क्या-क्या बिकवाना है उसने इससे और। बाकी जो बचा है, वह भी इसने बेच-बेच के नशे के हवाले कर देना है।'

साथ ही छोटा भाई भी बोल रहा था, 'और तो और, इसने माँ की वह मन्नतवाली सोने की अँगूठी भी नहीं छोड़ी, जिसमें पंडित के कहने पर रूबी पत्थर डालकर इसे पहनाई थी, कि किसी तरह यह सही राह पर आ जाए।'

पर जब मैंने अपनी माँ की आँखों की तरफ देखा तो जैसे मैं हिल गया। हिला तो मैं पहले ही पड़ा था नशे के कारण, पर मुझे कभी बुरा नहीं लगा था। जिस तरह उस दिन अहसास हुआ। माँ हर बार की तरह चुप थी। पिछले सात साल से। उसकी आँखें बोल रही थीं।

मैंने मन-ही-मन प्रण किया। मैं इस ताये को ठीक होकर दिखाऊँगा। जो मेरे बहाने माँ को घूर रहा है। पिता की गैर-हाजिरी रड़कने लगी। पर इससे पहले मैंने कभी परवाह नहीं की थी।

मैंने अपने चाचा की बेटी, डॉक्टर रेखा को संदेशा भेजा कि मुझे दाखिल करवाए, जो कि वह पहले भी कई बार करवा चुकी थी।

मुझे लगा, जैसे मुझमें ताकत आ गई हो, पर चाहे नशे की डोज न मिलने के कारण उठा नहीं जा रहा था। पहली बार मैंने खुद कहा था कि मुझे ले चलो, वरना यही लोग उठा-उठाकर ले जाते थे।

इन्हीं खयालों में वह डॉक्टर रस्तोगी के कमरे के बाहर खड़ा था। जब वह डॉक्टर के पास पहुँचा, 'डॉक्टर साब! आज के दिन मैं सेंटर में ठीक होकर गया था। आज मेरा पहला जन्मदिन है। मैंने सोचा है कि इस दिन को ही जन्मदिन के तौर पर मनाऊँगा। आपका शुक्रिया करने आया हूँ।'

'नहीं बेटा! तुम अपनी माँ का धन्यवाद करो। सारा श्रेय उनको ही जाता है। उन्हीं ने तुम्हें दूसरी बार जन्म दिया है।'

९७-गुरु नानक एवेन्यू, मजीठा रोड,
अमृतसर (पंजाब)

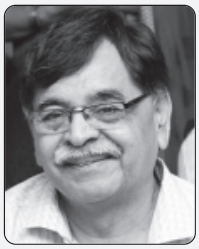

वरिष्ठ लघुकथाकार। 'मैं और तुम', 'सिर्फ एक दिन', 'पाँचवें पहर की ओर' (कविता-संग्रह), 'गैर हाजिर रिश्ता' (लघुकथा-संग्रह), पंजाबी के तीन लघुकथा-संग्रह, स्वास्थ्य विज्ञान पर तीन पुस्तकें, लघुकथा की पाँच पुस्तकें संपादित। पिछले पच्चीस वर्षों से पंजाबी पत्रिका 'मिन्नी' त्रैमासिक का सहसंपादन-प्रकाशन।

बदबू

● **भगवती प्रसाद द्विवेदी**

बलिया शहर में वहाँ के कुछ दोस्तों के साथ मैं शास्त्रीजी से मिलने गया था। वहाँ की नगरपालिका ने दलित-बस्ती में कुछ दुकानें बनवाई थीं, जिनमें से दो शास्त्रीजी ने एक विधायिका की सिफारिश पर अलॉट करवा ली थीं और प्रेस-प्रकाशन का व्यवसाय आरंभ किया था।

हम लोग जब वहाँ पहुँचे, शास्त्रीजी एक चुनाव संबंधी पैंफलेट का प्रूफ पढ़ने में मशगूल थे। अभी हम कुरसियाँ खींचकर बैठ ही रहे थे कि तीन-चार सूअर और उनके छौने दुकान में आ घुसे। शास्त्रीजी ने बड़ी कठिनाई से किसी प्रकार उन्हें बाहर किया। बाहर निकलते ही वे सभी कीचड़ में लोटने लगे। कीचड़ की सड़ाँध नाक में घुसते ही मित्रों ने जेब से रुमाल निकाल लिया। तभी सामने की झोंपड़ी से एक मुरगे ने बाँग लगाई और फिर कई छोटी-बड़ी मुरगियाँ हमारी तरफ आती दिखीं। जब उधर से हमने अपना ध्यान हटाना चाहा तो कानों में गधों के हेंचू-हेंचू के स्वर गूँज उठे। उसी वक्त एक औरत शौच की टोकरी लिये हुए उधर से गुजरी और मित्रों की थुकथुकी बढ़ने लगी।

अन्यमनस्क भाव से एक मित्र ने कहा, ''शास्त्रीजी, आप भी कहाँ आ फँसे?''

''ऐसा मत कहो यार!'' शास्त्रीजी ने बात काटते हुए जवाब दिया, ''इस बस्ती के लोगों से मुझे जो स्नेह-सम्मान मिल रहा है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कई धाँसू कहानियों के प्लॉट छिपे हुए हैं इस बस्ती में। कोई बढ़िया बाँसुरीवादक हैं। कोई ख्यातिप्राप्त गायक है तो कोई नर्तक और संगीतकार। ऐसी विलक्षण प्रतिभाएँ हैं इनमें कि जरा सा प्रोत्साहित करने पर इन्हें राष्ट्रीय स्तर की प्रसिद्धि मिल सकती है। मगर आज भी हम इन्हें अछूत माने बैठे हैं।''

''अमाँ, छोड़ो यार! मेरी मानो तो दुकान के आगे एक दीवार खड़ी कर दो, ताकि आए दिन सुअर, गधे और मुरगियों का लफड़ा खत्म हो।'' एक मित्र ने आजिजी से कहा।

इसके पूर्व कि शास्त्रीजी अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करते, तीन-चार साल का एक लड़का सहमा-सहमा सा दरवाजे के पास खड़ा हो गया। काला-कलूटा रंग, बहती हुई नाक, बदन पर एक फटी-चीथड़ी बनियान, बस।

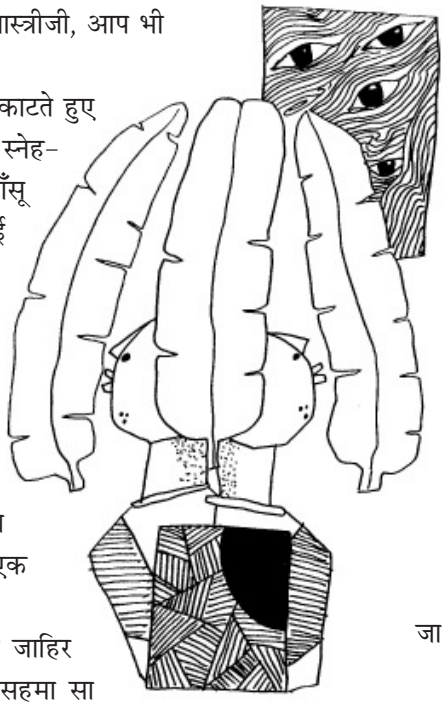

सुप्रसिद्ध साहित्यकार। बच्चों के लिए लिखी पुस्तकों में 'हक की लड़ाई', 'रसीले नींबू' *(कहानी)*, 'अक्षर गीत', 'नन्हे गीत' *(कविता)* तथा 'शिकारी की सूझबूझ' *(उपन्यास)* विशेष चर्चित। 'विशिष्ट साहित्य-सेवा सम्मान', 'भारतेंदु हरिश्चंद्र सम्मान' तथा 'शकुंतला सिरोठिया बाल-साहित्य पुरस्कार' समेत अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

''परनाम शास्तरी बाबू!'' लड़के के काँपते हुए हाथ जुड़ गए।

''आओ बेटे, मेरे पास आओ।'' शास्त्रीजी ने पुचकारा।

प्रोत्साहन पाकर वह थोड़ा सा आगे बढ़ा, फिर सवाल किया, ''शास्तरी बाबा, का हम आपको छू सकते हैं?''

शास्त्रीजी को देखने से लगा जैसे वे उद्वेलित हो उठे हों। उन्होंने कहा, ''क्यों नहीं बेटे! आओ, मैं तुम्हें गोद में उठाकर चुम्मी लूँगा और तुमको चॉकलेट दूँगा। खाओगे न?''

लड़का विस्फारित नेत्रों से उन्हें देख रहा था।

शास्त्रीजी अभी चॉकलेट लाने अंदर गए ही थे कि एक दोस्त ने दुत्कारते हुए कहा, ''अबे साले! अभी यहाँ से फूटता है या नहीं? ऐसी चपत लगाऊँगा कि...''

शास्त्री जब लौटे तो लड़का रुआँसा हो नौ-दो-ग्यारह हो चुका था। उनकी पनियाई हुई आँखें कभी सड़क पर जाते हुए लड़के को निरख रही थीं, तो कभी दोस्तों को।

मित्र एक-एक कर दुकान से बाहर निकल चुके थे, मगर मैं किंकर्तव्यविमूढ़ सा समझ नहीं पा रहा था कि ऐसी स्थिति में मुझे शास्त्रीजी से क्या कहना चाहिए, क्या करना चाहिए। बाहर जाते दोस्तों के अंतर्मन की बदबू से मेरा दम घुटा जा रहा था, न जाने क्यों?

२०४, टेलीफोन भवन, आर ब्लॉक
पोस्ट बॉक्स-११५, पटना-८००००१ (बिहार)
दूरभाष : ०९४३०६००९५८

आदमी की बातें

● **प्रबोध कुमार गोविल**

मैदान में एक भैंस घास चर रही थी। उसके पीछे-पीछे एक सफेद बगुला अपने लंबे पैरों पर दौड़ता सा चला आ रहा था।

नजदीक पेड़ पर बैठे एक तोते ने वहाँ बैठे एक कबूतर से कहा, ''प्रेम-प्रीत अंधे होते हैं। देखो, रुई के फाहे सा नरम-नाजुक धवल प्राणी उस थुलथुल काय श्यामला के पीछे दौड़ा जा रहा है।''

कबूतर ने जवाब दिया, ''प्रेम-प्रीत का तो पता नहीं, परंतु भूख जरूर अंधी होती है, भैंस चरने में मगन है, उसे पीछे आते मित्र की कोई परवाह नहीं और बगुला भी कोई भैंस की मिजाज-पुरसी करने नहीं आया है, बल्कि भैंस की साँसों से घास में जो मच्छर उड़ रहे हैं, उन्हें अपना निवाला बनाने आया है।''

''ओह, तो वे दोनों ही अपने-अपने जरूरी कार्य में व्यस्त हैं, तब हमें अकारण उन पर छींटाकशी करने का क्या हक?'' तोते ने पश्चात्ताप में डूबकर कहा।

कबूतर बोला, ''हाँ, लेकिन जोड़ी तो बेमेल है ही।''

तभी घास चरती हुई भैंस कुछ दूर बने एक तालाब के पास जाकर पानी में उतर गई। बगुला भी पानी के किनारे मछलियों पर ध्यान लगाकर खड़ा हो गया।

तोता फिर चहका, ''देखो-देखो, जोड़ी बेमेल नहीं है, दोनों की मंजिल एक ही थी, दोनों को तालाब में ही जाना था, दोनों रास्ते के मुसाफिर थे, अगर एक ही मंजिल के राही हों, उनमें तो अपनापा हो ही जाता है।''

''कुछ भी हो, वह भोजन के बाद नहाने गई है और बगुला तालाब से नहा-धोकर ही भोजन के लिए निकला होगा, दोनों का कितना अलग स्वभाव है।'' कबूतर ने उपेक्षा से कहा।

तोता बोला, ''अब घर लौटकर वह दूध देगी और यह यहाँ मछली खाएगा। जबकि कहते हैं, दूध और मछली का कोई मेल नहीं है, दोनों एक साथ खा लो तो पचते नहीं हैं।''

कबूतर ने कहा, ''और क्या, आदमी तो ऐसा ही कहते हैं।''

तभी पेड़ की तलहटी में बैठी एक गिलहरी बोल पड़ी, '' तुम दोनों ने आदमी की बातें खूब सीख रखी हैं!''

कर्म और भाग्य

विशाल दावत की तैयारियाँ चल रही थीं। शाम को हजारों मेहमान भोजन के लिए आनेवाले थे। इसलिए दोपहर से ही विविध व्यंजन बन रहे थे।

सुपरिचित साहित्यकार। अब तक सात उपन्यास, पाँच कहानी-संग्रह, चार कविता-संग्रह, संस्मरण तथा कुछ पुस्तकों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित। हिंदी संस्थान (उ.प्र.) से सम्मानित।

पेड़ पर बैठे कौवे को और क्या चाहिए था। उड़कर एक रोटी झपट लाया। रोटी गरम थी। तुरंत खा न सका, किंतु छोड़ी भी नहीं, पैरों में दाब ली और ठंडी होने का इंतजार करने लगा।

समय काटने के लिए कौवा रोटी से बात करने लगा। बोला, ''क्यों री, तू हमेशा गोल ही क्यों होती है?''

रोटी ने कहा, ''मुझे दुनिया के हर आदमी के पास जाना होता है न, पहिए की तरह गोल होने से यात्रा में आसानी रहती है।''

''झूठी, तू मेरे पास कहाँ आई? मैं ही उठाकर तुझे लाया!'' कौवे ने क्रोध से कहा।

''तुझे आदमी कौन कहता है रे?'' रोटी लापरवाही से बोली।

कौवा गुस्से से काँपने लगा। उसके पैरों के थरथराने से रोटी फिसलकर पेड़ के नीचे बैठे एक भिखारी के कटोरे में जा गिरी।

वेताल ने विक्रमादित्य को यह कहानी सुनाकर कहा, ''राजन' कहते हैं कि दुनिया में भाग्य से ज्यादा कर्म प्रबल होता है, किंतु रोटी उस कौवे को नहीं मिली, जो कर्म करके उसे लाया था, जबकि भाग्य के सहारे बैठे भिखारी को बिना प्रयास के ही मिल गई। यदि इस प्रश्न का उत्तर जानते हुए भी तुमने जवाब नहीं दिया तो तुम्हारा सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।''

विक्रमादित्य बोला, ''भिखारी केवल भाग्य के भरोसे नहीं था, वह भी परिश्रम करके दावत के स्थान पर आया था और धैर्यपूर्वक शाम की प्रतीक्षा कर रहा था। उधर कौवे ने कर्म जरूर किया था, पर कर्म के साथ-साथ सभी दुर्गुण उसमें थे—क्रोध, अहंकार, बेईमानी। ऐसे में रोटी ने उसका साथ छोड़कर ठीक ही किया।''

वेताल ने ऊबकर कहा, ''राजन, तुम्हारा मौन भंग हो गया है, इसलिए मुझे जाना होगा; लेकिन यह सिलसिला अब किसी तरह खत्म करो, जंगल और पेड़ रोज कट रहे हैं, मैं भला वहाँ कब तक रह सकूँगा?''

बी-३०१, मंगलम जागृति रेजीडेंसी
४४७, कृपलानी मार्ग, आदर्श नगर, जयपुर-३०२००४ (राज.)
दूरभाष : ०९४१४०२८९३८

जबानी खर्च

● जाफर मेहँदी जाफरी

वह ८-९ साल का लड़का था। उसने एक आदमी के सामने हाथ फैलाते हुए कहा, ''बाबू!''

उस आदमी ने पलटकर उसकी तरफ देखा और गुस्से में बोला, ''शर्म नहीं आती तुमको, अभी से भीख माँग रहे हो।''

लड़का बोला, ''भूखा हूँ।''

''चलो भागो यहाँ से, आदत बना ली है।''

वह लड़का फिर भी खड़ा रहा।

वह आदमी फिर दहाड़ा, ''जाता है या..., तेरी उम्र पढ़ने-लिखने की है, भीख माँगने की नहीं। अपने अम्माँ-अब्बा से कहो कि स्कूल में नाम लिखाएँ, भीख न मँगवाएँ।''

लड़का धीरे से बोला, ''मेरे अम्माँ-अब्बा नहीं हैं। एक धमाके में मारे गए। बाबू, आप मेरा नाम स्कूल में लिखवा दो। बदले में मैं आप के घर का सारा काम कर दिया करूँगा।''

उस आदमी ने जेब से एक रुपया निकाला और उसके हाथ पर रखता हुआ आगे बढ़ गया।

बस भी करो

वह मेरे ख्वाब में आती है, मुसकराती हुई, हँसती हुई। अपनी तोतली जबान में दुनिया-जहान की प्यारी-प्यारी बातें करती हुई। मेरे साथ देर तक खेलती रहती है और जब जाने लगती है तो मुझसे सवाल करती है, ''क्या मैं बहुत बुरी हूँ?''

मैं उसे गले लगाकर कहता हूँ, ''नहीं तुम बहुत प्यारी हो।''

उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। वह मुझसे लिपटकर कहती है, ''फिर तुमने मुझे अपनी दुनिया में आने क्यों नहीं दिया।''

लज्जा तो आती होगी

साजिद ने जोहर की नमाज खत्म की और फर्श पर फैले उन गमछों को तह करके समेटने लगा, जिस पर उसने राम नाम का छापा लगाया था। उसने उनका गट्ठर बनाया और पीठ पर लादता हुआ बोला, ''अरे, सुनती हो, मैं बाजार जा रहा हूँ।''

अंदर से उसकी बीवी हाथ पोंछती हुई बाहर निकली।

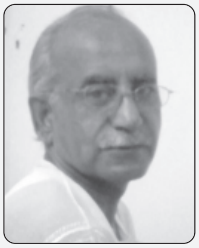

'८० के दशक में कथा पत्रिका 'सारिका' में अनेक लघुकथाएँ प्रकाशित। लगभग ३० साल बाद पुन लेखन में सक्रिय; वरिष्ठ लघुकथाकारों में जाना-माना नाम।

''ठीक है, जाओ; लेकिन मेरी एक बात मान लो। अब इस छपाई के दाम बढ़ा दो। कब तक पाँच रुपए में छापते रहोगे? खर्चा भी नहीं निकलता है।''

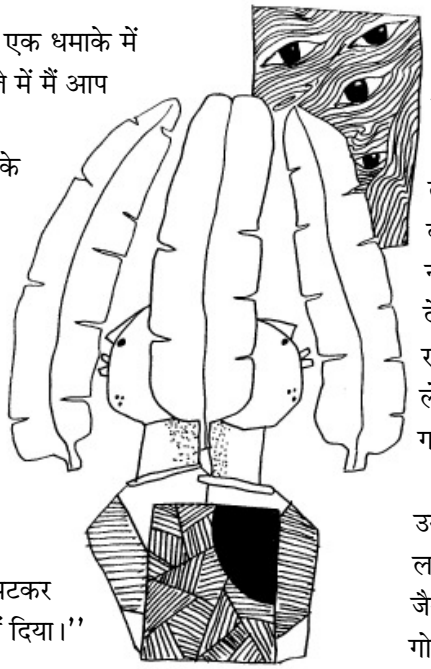

''अरी भागवान, तू जानती है कि मैं यह काम कारोबार के लिए नहीं करता। अच्छा, चलता हूँ।''

वह गली पार करके सड़क पर आ गया। तभी उसे शोर सुनाई दिया। उसने घबराकर शोर की जानिब देखा। नजरें हटी भी न थीं कि कई नौजवानों ने आकर उसे घेर लिया। वह उन्हें देखकर मुसकराया, क्योंकि उनके सिरों पर बँधे राम-नाम के गमछे उसी के हाथ के छपे हुए थे। लेकिन होंठों पर आई मुसकराहट पल भर में गायब हो गई।

वह जमीन पर ढेर हो गया। उसका लहू उसके गट्ठर में जज्ब होने लगा। साँसें डूबने लगीं। डूबती हुई साँसों में उसने महसूस किया, जैसे किसी ने उसका सर जमीन से उठाकर अपनी गोद में रख लिया हो। उसने आँखें खोलीं। एक चेहरा उस पर झुका हुआ था। उसने पहचान लिया, वह राम थे। उनकी आवाज उसके कान से टकराई।

'मैं लज्जित हूँ।'

३४, अलीग अपार्टमेंट्स,
शमशाद मार्केट, अलीगढ़-२०२००२
दूरभाष : ९८८९०५३५९०

घर

लघुकथा

● श्याम सुंदर अग्रवाल

अनीता ने कमरे की दीवार पर लक्ष्मी-गणेश का एक बड़ा-सा कलेंडर क्या लगाया, घर में क्लेश हो गया। उसका पति गिरीश गरज रहा था, 'इस घर में ऐसा कलेंडर नहीं चलेगा। तुम्हें पता है कि मैं नास्तिक हूँ, फिर भी तुम।'

'एक धार्मिक कलेंडर लगाने भर से तुम नास्तिक से आस्तिक हो जाओगे क्या? क्यों इतना भड़क रहे हो?' अनीता भी आज लड़ने के मूड में लग रही थी।

'मेरी विचारधारा को जाननेवाले मित्र इसे देखेंगे तो क्या सोचेंगे?'

इससे पहले कि अनीता आगे से जवाब देती और लड़ाई भड़कती, 'डोरबेल' बज उठी। गिरीश दरवाजे की ओर बढ़ा।

दरवाज खोला तो सामने सुधीर खड़ा था। सुधीर उसी की विचारधारा का था और वे दल की सभा में मिलते रहते थे। सुधीर से बातचीत में उसने जान लिया था कि वह भी नास्तिक है और किसी धर्म में उसका कोई विश्वास नहीं है।

अंदर आते ही सुधीर बोला, 'भाभीजी, इसे तो कई बार कह चुका हूँ कि आपके साथ हमारे नए घर में चरण डाले। आने-जाने से ही मेलजोल बढ़ेगा, लेकिन यह मेरी सुनता ही नहीं। इसलिए आज मैं खुद ही लेने आ गया।'

गिरीश मना नहीं कर सका। वह चाहता भी था कि अनीता सुधीर जैसे कट्टर नास्तिक और तर्कशील का घर देखे। शायद उस पर कुछ असर हो जाए।

कुछ ही देर बाद वे सुधीर के घर ड्राइंग-रूम में बैठे थे। चायपान के बाद गिरीश ही सुधीर की पत्नी से मुखातिब हुआ, 'भाभीजी, हम कुछ जरूरी बातें करते हैं, तब तक आप अनीता को अपना घर दिखा दें।'

कुछ देर बाद ही वे लौट आईं।

'बहुत जल्द देख लिया सारा घर!' गिरीश बोला।

'हाँ, मैंने तो देख लिया। आओ, आप भी देख लो।' अनीता बोली।

गिरीश लॉबी में पहुँचा तो आँखें फटी रह गईं, सामने एक कोने में बड़ा-सा मंदिर बना हुआ था। सुधीर की ओर हैरानी से देखते हुए बोला, 'यह क्या, तुम जैसे नास्तिक के घर में मंदिर?'

'नास्तिक मैं हूँ गिरीश, तुम्हारी भाभी नहीं, और यह घर मेरे अकेले का नहीं है। हम दोनों का है।'

'इस पर तुम्हारा आपस में झगड़ा नहीं होता?'

'झगड़ा किस बात का! यह मेरे काम में दखल नहीं देती, मैं इसके काम में। जिंदगी अच्छी गुजर रही है।'

सुपरिचित कथाकार। लघुकथा, बालकथा व कविता (पंजाबी एवं हिंदी में) लेखन। 'श्रीमती मान कौर यादगारी पुरस्कार', 'श्रीबलदेव कौशिक स्मृति सम्मान', 'माता विद्यादेवी कालड़ा स्मृति सम्मान', 'शोभना सम्मान-२०१५' व अनेक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा लघुकथा साहित्य के क्षेत्र में विशेष योगदान हेतु सम्मानित।

बाबूजी की पीड़ा

रविवार का दिन था। न बच्चों को स्कूल जाना था, न राजेश को दफ्तर। रीता तो कहीं जाती ही नहीं थी। सुबह आठ बजे के बाद वह उठी तो थोड़ी हैरान थी। बाबूजी के कमरे का दरवाजा अभी भी बंद था। 'बाबूजी तो सुबह अँधेरे ही उठ जाते हैं, आज क्या बात हो गई?' सोचते हुए वह रसोईघर की ओर हो ली। चाय वाले बरतन इस बात की स्पष्ट गवाही दे रहे थे कि बाबूजी ने आज उन्हें छुआ तक नहीं।

रीता ने धीरे-से उनके कमरे का दरवाजा खोला। अंदर का दृश्य देख उसने अपने भीतर से निकलती हँसी को मुश्किल से रोका। वह तेजी से राजेश के पास गई और उसे उठाते हुए बोली, 'आओ तुम्हें एक नजारा दिखाऊँ।'

'क्या हो गया?' राजेश ने बिस्तर छोड़ अँगड़ाई लेते हुए कहा।

'बतानेवाला नहीं, देखनेवाला है।' रीता चहक रही थी।

वह राजेश को बाबूजी के कमरे में ले गई। बिस्तर पर बाबूजी की छोटी-सी संदूकची खुली पड़ी थी, जिसे वे सदा ताला लगाकर रखते थे। उसका सामान सारे बिस्तर पर बिखरा पड़ा था। राजेश ने नजदीक जाकर देखा—छोटा-मोटा सारा सामान उसकी स्वर्गीय माँ का ही था; कई तरह की चूड़ियाँ, चुटकियाँ, बिंदियाँ, कंघी, चश्मा, माला, रुमाल, कुछ तसवीरें और ऐसा ही बहुत कुछ। बाबूजी गहरी नींद में दिखाई दे रहे थे। उनके दोनों हाथ छाती पर टिके थे। राजेश भी मुसकराए बिना न रह सका।

पति-पत्नी के चाय पीने तक भी बाबूजी नहीं उठे तो राजेश थोड़ा चिंतित हुआ। वह फिर से उनके कमरे में गया और बाबूजी को आवाज दी, लेकिन वे बेहरकत रहे। तब उसने उन्हें हिलाया तो पता लगा कि वे तो कभी न टूटनेवाली नींद में थे।

सीने पर टिके हाथों के नीचे एक कागज दिखाई दिया। राजेश ने कोशिश कर उसे बाहर निकाला तो देखा—माँ की तसवीर थी। तसवीर के पीछे टूटे-फूटे अक्षरों में लिखा था, 'अपने पास ले जा अंगूरी, यहाँ किसी के पास मेरे लिए समय नहीं है। बेटे को तो मिले भी दस दिन हो गए।'

बी-१/५२०, गली नं. ५, प्रताप सिंह नगर,
कोट कपूरा-१५१२०४ (पंजाब)
दूरभाष : ०९८८८५३६४३७

आलेख

हिंदी लघुकथा में राष्ट्रीय चेतना

● पुरुषोत्तम दुबे

राष्ट्र एक बहुआयामी सांस्कृतिक अवधारणा है, जिसका आभ्यंतरिक रचाव राष्ट्र में वासित मानवता, धार्मिक सरोकार, रीति-रिवाज, रहन-सहन, भाषागत व्यवहार, वैचारिक विनिमय इत्यादि कारकों से परिपूरित है। उक्त सांस्कृतिक विषयक विभिन्न कारकों की सजगता ही राष्ट्र का शरीर है।

वरिष्ठ आलोचक व लेखक। अनेक शोधपत्र प्रकाशित तथा शोधार्थियों के शोध निदेशक।

राष्ट्र का स्वरूप स्थायी न होकर परिवर्तनशील बना रहता है। सन् १९४७ से लगाकर अद्यतन अनेकानेक विकासशील रास्तों पर डग भरते हुए भारत-राष्ट्र का वर्तमान रूप हमारे सामने है। गोया कि तरक्कियों की तसवीरें, सभ्यताओं के लवाजमे, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धाओं के मायने, विस्तृत हुए विशाल नगरों के कायावी/मायावी आकर्षण, ये सब ऐसी बातें हैं, राष्ट्र के तारतम्य में जिन पर गंभीरता से बोला जा सकता है। बरअक्स इसके लिखा भी जा सकता है। लेकिन अधिकांशतया प्रामाणिकता बतौर लेखन के आती है। हिंदी लघुकथा ने भारतेंदु काल से ही राष्ट्रीय चेतना को उद्वेलित करने के दायित्व का निर्वहन शुरू कर दिया था। उनकी पुस्तक 'परिहासिनी' में ऐसे अनेक चित्र देखने को मिलते हैं। तत्पश्चात् गत सदी के प्रारंभिक दशकों में भी प्रकारांतर से इसने इस चेतना को बरकरार रखा।

किसी भी राष्ट्र का प्रतिबिंब उस राष्ट्र के साहित्य में दमकता है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध इत्यादि हिंदी साहित्य की प्रचलित विधाओं के अतिरिक्त वर्तमान में हिंदी-लघुकथा विधा सिरमौर बनी हुई है। हिंदी साहित्य की अन्य सद्य: स्फुट विधाओं की भाँति हिंदी लघुकथा भी अपने तट से अपने 'वतन' का पता देने लगी है। विशाल राष्ट्र की अस्मिता को दरशाने में जहाँ हजारों पन्नों में लिखा साक्ष्य भी कमतर जान पड़ रहा है, वहाँ हिंदी लघुकथा लेखन की छोटी सी धरती पर विशाल राष्ट्र का कैनवस रचती मिल रही है।

ऐतिहासिक क्रम में भारतेंदु बाबू का स्रोत पकड़कर हिंदी की प्राय: सभी मान्य विधाओं की विकासगत धाराओं का अध्ययन होता रहा है, लेकिन आधुनिक काल को पल्लवित करने में एक बड़ा नाम कथा सम्राट् प्रेमचंद का आता है, जिनके कथा-साहित्य में बहुतायत रूप में राष्ट्रीय धड़कनों का जीवंत आभास केंद्रित है। इस दृष्टि से हिंदी लघुकथा में राष्ट्रीय चेतना को मुखरित बनाने के क्रम में नि:संदेह प्रेमचंद अग्रगण्य हैं। उनकी लघुकथा 'राष्ट्र का सेवक' अपनी मूल चेतना में जात-पाँत, धर्म-अधर्म, ऊँच-नीच के घिनौने भाव को दरकिनार करती हुई भारतीय राष्ट्रीयता का आदर्श विवेचित करती मिलती है। लेकिन समभाव और समानता का उत्कट भाव जगानेवाले उद्घोषक की अपनी बेटी अछूत को अपना जीवनसाथी बनाना चाहती है, तो उद्घोषक पिता अपनी बेटी के निर्णय से मुँह फेर लेता है। इस तरह राष्ट्रीय चेतना की डगर पर बढ़ाया पहला कदम ही चोटिल हो जाता है। आदर्श बघारने वालों की कथनी और करनी का अंतर प्रस्तुत करने वाली 'राष्ट्र का सेवक' लघुकथा अंजाम गिनाने में भले ही नाकाम सिद्ध हुई मिलती है, लेकिन असमानता के आकाश में समभाव का एक छेद करने में पत्थर जरूर उछालती है।

प्रेमचंद की दूसरी लघुकथा 'गमी' है, जो गहन-विषाद के साथ भारतीय राष्ट्रीय चेतना का एक ऐसा परिशिष्ट खोलती है, जिस पर अमल करके एक ओर जहाँ बढ़ती जनसंख्या की बाढ़ को रोका जा सकता है, वहीं दूसरी ओर सीमित पारिवारिकता के आनंद को बटोरा जा सकता है। 'गमी' लघुकथा की तरंग आधुनिक समय के 'हम दो हमारे दो' रूपी किनारे को पोषित करती प्रतीत होती है। वस्तुत: प्रस्तुत लघुकथा राष्ट्रीय चेतना का सार्वकालिक रूप बुनती मिलती है। परिवार में तीसरी संतान का आना, न केवल उसके पोषण के लिहाज से आर्थिक संकट पैदा कर देता है, अपितु एक तरह से तीसरी संतान के जन्मते ही पारिवारिक आनंद की मृत्यु हो जाती है। दूरदृष्टि देखिए कि प्रेमचंद ने गत सदी के तीसरे दशक में ही इस अवधारणा को रच दिया था।

हिंदी लघुकथा क्षेत्र में व्यापक लेखन बीसवीं सदी के आठवें दशक से सामने आता है। आपातकाल के बाद भारतीय राष्ट्रीयता का गौरवधारी परिवेश स्थान-स्थान से इस तरह खंडित हुआ, जिनसे उत्पन्न दरारों में कहीं सांप्रदायिकता का अप्रीतिकर रूप, कहीं राजनैतिक स्वार्थपरता, कहीं असीमित भ्रष्टाचार, कहीं मानवीय आदर्शों का अवमूल्यन, जैसी अनेक दुरवस्थाएँ पनपीं, जिनसे भारतीय राष्ट्रीयता का उत्स धराशाही होता गया। ऐसे जटिल मुकामों से संश्लिष्ट होकर हिंदी लघुकथा लेखन के पटल पर कई चिंतनपरक लघुकथाकारों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। उनमें एक नाम डॉ. कमल चोपड़ा का आता है। उनकी अनेक लघुकथाएँ सांप्रदायिकता के उलट सामाजिक समभाव का आदर्श रूप स्थापित कर भारतीय राष्ट्रीय चेतना का नया अध्याय खोलती हैं। उनकी अनेक लघुकथा 'पवित्र स्थान' समाज की फिजाँ बिगाड़कर राजनैतिक रोटियाँ सेंकनेवाले उन्हीं धर्मावलंबियों को दोषी ठहराती हैं, जो अपने ही धर्म के मंदिर के सामने जानवर के कटे हुए अंगों को फेंक देते हैं। लेकिन

मंदिर का सहिष्णु पुजारी मंदिर में आनेवाले दर्शनार्थ भक्तों के आगमन के पूर्व ही मंदिर के आगे पड़े जानवर के अंगों को उठाकर नदी में प्रवाहित कर राष्ट्रीय चेतना के उज्ज्वल पक्ष को उद्घाटित करता है।

लघुकथाकार मधुदीप की लघुकथा 'तुम इतना चुप क्यों हो दोस्त!' राष्ट्र की प्याली में अराजकताओं की उबाल खाती कॉफी का अरुचिकर स्वाद प्रस्तुत करती है। गर्त में जाती देश की अर्थव्यवस्था, देश को लूटकर खानेवाले नेतागण, हमारे सैनिकों के सिर काटते हुए दुश्मन और देश में पनपते हुए भ्रष्टाचार को गिनाते हुए वर्तमानकालिक राष्ट्रीय मानसिकता में अराजकता के विरुद्ध चेतना जगाती मिलती है।

डॉ. अशोक भाटिया की लघुकथा 'देश' एक अलग प्रकार की चेतना का आयाम रचती है। पाकिस्तान से हुए दो युद्धों की विभीषिका के सदमे से आज की पैंसठ-सत्तर साल की पीढ़ियाँ एकबारगी उबर चुकी हैं, लेकिन अपने देश में लड़की के साथ बस में हुई दरिंदगी की खबर एक वृद्ध स्त्री को हिलाकर रख देती है। यहाँ राष्ट्रीय चेतना का स्वर मानवीय संवेदनाओं के बूते से प्रकट होता है।

डॉ. बलराम अग्रवाल की अनेकानेक लघुकथाओं में राष्ट्रीय चेतना के स्वर भास्वरित हुए हैं। उनकी 'खोई हुई ताकत' लघुकथा राष्ट्रीयता के पक्ष में जोश और जुनून के साथ खड़ी मिलती है। लघुकथा का नायक मसूद मियाँ खोई हुई ताकत का शर्तिया इलाज करनेवाले एक डॉक्टर के क्लीनिक में आशापूर्ण कदमों से दाखिल होता है। वह डॉक्टर से नपुंसकता का नहीं प्रत्युत वृद्धावस्था की वजह से शिथिल पड़े अपने जज्बे का इलाज कराना चाहता है, ताकि बहत्तर बरस का हो चुकने के बाद भी वह उन अराजकताओं से लड़ सके, जो आज भी देश को गुलाम बनाए हुए हैं। बलराम अग्रवाल की लघुकथाएँ 'गाँठ' और 'गुलमोहर' प्रतीक रूप में वह सब कहती हैं कि आजादी के इतने बरस बाद भी भारतीय राष्ट्रीयता का वह मुखर रूप हमारे सामने नहीं है, जिसको देखने के लिए शहीदों ने बलिदान किए हैं। इनकी एक अन्य लघुकथा 'यह कौन सा मुल्क है' बताती है कि हमारा वर्तमान राष्ट्र एक ऐसी भीड़ है, जो मस्तिष्क के उपयोगी बूते से नहीं अंगों-प्रत्यंगों से चलायमान है, जहाँ चेतना नहीं, मगर दिशाहीन दिशाओं में मस्तिष्क विहीन धड़ों की रेलमपेल है। कोई मंसूबा कारगार नहीं है। राष्ट्र केवल अंधों की बेमतलब की दौड़ रह गया है।

राष्ट्रीय चेतना से प्लावित अशोक जैन की लघुकथा 'पैंतरे' चुनाव के मौसम में किराए पर हल्ला करनेवाली भीड़ को इंगित करती है। राजकुमार निजात की 'ब्लॉस्ट' लघुकथा नेताजी का जन्मदिन स्कूल में बालकों के मध्य मनाने की दूषित परंपरा को रेखित करती है, ताकि आज के बच्चे कल के नागरिक न बनकर नेताजी की फौज के रूप में दिखाई पड़ें। श्याम बिहारी 'श्यामल' की लघुकथा 'राजनीतिज्ञ' डाकू से नेता बने व्यक्ति पर केंद्रित है, ध्वनित करती है कि डाकू के रूप में लूट-खसोटकर जंगल में छुपने से बेहतर है कि नेता के रूप में जनता को लूटकर एशोआराम से शहर में रहा जा सकता है। प्रतापसिंह सोढ़ी की लघुकथा 'दंगा-फसाद' ऐसे मौकापरस्त लोगों को केंद्र में रखकर लिखी गई है, जो परदे के पीछे से राष्ट्रीय अस्मिता को विखंडित करने का खेल खेलते हैं। डॉ. शकुंतला किरण की लघुकथा 'इमरजेंसी' में राष्ट्रीय चेतना के भाव को जगाया न जाकर थोपे जाने की बात होती है, ''जीजी, कल पंद्रह अगस्त है, स्कूल में कुछ बोलना है, आजादी के बारे में कुछ रटवा दो।''

यह भी उल्लेखनीय है कि 'हिंदी लघुकथा के आलोक में राष्ट्रीय चेतना' विषय पर दक्षिण भारत हिंदी प्रचार-प्रसार सभा, चेन्नई में प्रस्तुत शोध-प्रबंध पर वर्ष २०१४ में राधेश्याम भारतीय को पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त हो चुकी है।

शशीपुष्प, ७४-जे/ए, स्कीम नं. ७१, इंदौर-४५२००९ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९४०७१८६९४०

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

लघुकथा

विदाई

● सुरेश उनियाल

वह एक बहुत बड़ा शहर था, जिसे मैं छोड़कर जा रहा था। वहाँ मेरे दोस्तों की संख्या बहुत ज्यादा थी। अकसर मेरी शामें खाली नहीं गुजरती थीं। दोस्तों को खिलाने-पिलाने का मुझे शौक था।

स्टेशन पर मैं गाड़ी छूटने से करीब आधा घंटा पहले पहुँच गया था। मुझे पूरा विश्वास था कि मेरे कई दोस्त मुझे विदाई देने स्टेशन पर पहुँचे हुए होंगे। लेकिन गाड़ी छूटने में सिर्फ दस मिनट रह गए थे और कोई नहीं आया था। चाय की तलब हो रही थी। अब तक तो सिर्फ इसलिए दबाता रहा कि दोस्तों के आने पर उनके साथ पीऊँगा। लेकिन अब दोस्तों के आने की उम्मीद कम हो गई थी, इसलिए चाय के लिए स्टॉल पर आ गया।

चाय पीकर कप रखा तो कोहनी पर किसी के स्पर्श से चौंका। दस-ग्यारह साल की, गड्ढे में धँसी एक जोड़ी आँखें मेरे चेहरे पर टिकी थीं।

''कुछ खाने को दे दे न बाबू, सुबह से भूखा हूँ।''

चाहता तो उसे इग्नोर करके अपने कूपे में जा सकता था, लेकिन ऐसा न कर सका और स्टॉल वाले को एक रुपया देकर उसे कुछ खाने के लिए देने को कह दिया।

दोस्तों का स्टेशन पर न आना खल रहा था। मन कुछ अजीब सा हो रहा था, भारी-भारी और तल्ख!

ट्रेन के खिसकने तक किसी-न-किसी के आने की उम्मीद भीतर किसी कोने में बची थी। खिसकते-खिसकते ट्रेन प्लेटफॉर्म पार कर गई। सामने सींखचों के ऊपर बैठा एक लड़का हाथ हिला रहा था।

अजीब बात थी। वह मेरी ओर देखकर हाथ हिला रहा था। दिमाग पर जोर दिया। अरे, यह तो वही लड़का है, जिसे मैंने स्टेशन पर कुछ खाने को दिलवाया था। वह आराम से बैठा एक हाथ से बन खा रहा था और दूसरा मेरी ओर हिला रहा था।

मुझे लगा, एक लड़का नहीं, पूरा शहर मुझे विदाई दे रहा है। मैंने अपना हाथ खिड़की से बाहर निकाला और उसकी ओर जोर-जोर से हिलाने लगा, हिलाता रहा। कूपे में बैठे लोग अजीब नजरों से मुझे घूर रहे थे।

सुविधा

बचपन में अकसर गाँव जाता था, अपने चाचा के पास। सुदूर पहाड़ में बसे उस गाँव तक पहुँचने के लिए बस से उतरने के बाद करीब बीस मील पैदल चलकर जाना होता था। लेकिन इस दूरी के बावजूद वहाँ जाने का उत्साह कभी कम नहीं हुआ। कई चीजें थीं वहाँ, जो आकर्षित करती थीं। गाँव के नीचेवाली नदी में नहाना। ऊपर की पहाड़ी में दूर तक फैले देवदार के जंगलों में घूमना। हिंसर, काफल, किनगोड़, बेडू जैसे स्वादिष्ट फलों की तलाश में दूर-दूर तक भटकना। गाँव के किसी भी घर में चले जाओ तो चाय की बात कोई नहीं करता था, गरमागरम दूध का गिलास पीने को मिलता था।

फिर एक सड़क बनी, जो गाँव के पास से गुजरती थी। वहाँ से गाँव एक मील रह गया था। गाँव जाना अब आसान हो गया था। जिस रास्ते हम गाँव में जाते थे, उसी रास्ते गाँव के लोग पीठ पर दूध की ठेकियाँ लादे नीचे उतरते मिलने लगे। गाँव की ओर आती बस को अकसर देवदार के शहतीर लाते ट्रकों को रास्ता देने के लिए रुकना पड़ता। तब मैं थोड़ा बड़ा हो गया था और गाँव में मेरे साथ खेलनेवाले लड़कों को जंगल में चिरान में काम मिलने लगा था। चाचाजी ने भी वहीं एक चाय की दुकान खोल ली थी।

आखिरी बार जब मैं गाँव गया था, तब चाचाजी काफी बूढ़े हो गए थे। चाय की दुकान पर उनका बेटा बैठता था। गाँव के ऊपर जहाँ देवदार का जंगल होता था, अब गंजा पहाड़ खड़ा था।

मैं घर पहुँचा तो चाचाजी ने चाची को आवाज देकर कहा, ''दिवाकर शहर से आया है। एक गिलास चाय तो बना ला जल्दी से।''

''जवाब में चाची ने कहा, ''दूध तो खत्म हो गया है, किसी को भेजकर दुकान से क्यों नहीं मँगवा लेते।''

उसके बाद चाचाजी के लड़के की दुकान से चाय आई। मैंने चाय पी। कुछ इधर-उधर की औपचारिक बातें हुईं और फिर मैंने अपना ब्रीफकेस उठाते हुए जाने की इजाजत माँगी। रुकने के लिए कोई इसरार नहीं। इतना जरूर कहा कि अब तो गाँव आने की सुविधा हो गई है। जब मन हो, आ जाया करो।

वापसी में बस में बैठा मैं सोच रहा था, लौटने की भी अच्छी सुविधा हो गई है।

बी-८, प्रेस अपार्टमेंट्स, २३ इंद्रप्रस्थ एक्सटेंशन,
दिल्ली-११००९२

कथा पत्रिका सारिका के संपादकीय विभाग के अलावा टाइम्स ऑफ इंडिया के विभिन्न प्रकाशनों से भी जुड़े रहे। सिनेमा और टेलीविजन पर नियमित लेखन। 'दरअसल', 'यह कल्पना लोक नहीं', 'कहीं कुछ गलत', 'क्या सोचने लगे', 'श्रेष्ठ कहानियाँ' (कहानी-संग्रह); एक अभियान और (संपादित कहानी-संकलन)। करीब एक दर्जन पुस्तकों के अनुवाद।

अकेलापन

● अशोक जैन

माँ चल बसी। संस्कार से लौटते समय उसे ड्राइंग-रूम में दीवान पर बैठी उस बूढ़ी महिला का सूनी आँखों से मुख्य दरवाजे पर निगाहें गढ़ाए रहना याद हो आया। हमेशा खामोश-पथराई आँखों से शायद वह किन्हीं लोगों की प्रतीक्षा करती रहती।

धीरे-धीरे नम आँखें लिये वह अपने शुभचिंतकों से घिरे हुए घर की ओर सरक रहा था। तभी किसी के हाथ उसके कंधे पर पड़े। उसने पीछे मुड़कर देखा तो बड़े भैया थे। उसकी रुलाई फूट पड़ी। उसे लगा, अब वह अकेला नहीं रहा।

घर पहुँचकर जो हुआ, उसकी कल्पना भी वह नहीं कर सकता था। कुछ जोड़ी आँखें बंद अलमारी पर लटके ताले से होकर उसकी ओर प्रश्नवाचक दृष्टि सी उठीं और वह सिहर उठा। इशारा समझकर उसने बड़े भैया से कहा—

''आप खुलवा लीजिए और··· ।''

''नहीं चाचा, पापा कहते थे कि अम्मा जिसके साथ रहती है, सब कुछ उसी का है।'' बड़े भतीजे ने विरोध किया।

''नहीं रे! अम्मा तो सबकी थीं न।'' वह बोला।

सभी चुप! कुछ जोड़ी हाथों में खुजली होने लगी थी। अलमारी खोलकर सबकुछ झपट लिया गया। वह खामोश अपनी पत्नी की ओर निहारता रहा।

''इस बंद बॉक्स में क्या है, आशे?'' किसी का स्वर कान में पड़ा तो चौंका।

''पता नहीं, भाभी। देख लो।''

बॉक्स का ताला तोड़कर जैसे ही अंदर झाँका गया तो कुछ नकदी और कुछ रसीदें मिलीं। तभी बाहर दरवाजे की घंटी घनघना उठी।

''तुम बैठो, मैं देखता हूँ।'' बड़े भैया बाहर चले गए।

''नमस्कार! मैं उज्ज्वल अनाथाश्रम से आया हूँ। वो बड़ी बी की इस साल की रसीदें लाया था।''

बड़े भैया अवाक्। उनके चेहरे पर उड़ती हवाइयों को देखकर उसे लगा कि अब वह और भी अकेला हो गया है।

अपने-अपने स्वार्थ

बीमार हरखू अपनी खोलीनुमा झोंपड़ी में चारपाई पर अधलेटा सा अपनी पत्नी को हाथ में दराँती लेकर बाहर जाते देख रहा था। उसके माथे पर चिंता की लकीरें स्पष्ट थीं, लेकिन देह में इतनी शक्ति न थी कि वह उसे रोकता।

एक उपन्यास और तीन पुस्तकें बालसाहित्य की प्रकाशित। शिक्षा/प्रतियोगिता संबंधी हिंदी-अंग्रेजी की साठ से अधिक पुस्तकें। लघुकथा केंद्रित अर्द्धवार्षिक पत्रिका 'दृष्टि' के संपादक। कई पुरस्कारों से पुरस्कृत।

तभी बाहर से किसी ने पुकारा—

''अरे हरखू!''

''आजा पोलड़! अंदर ही हूँ।''

''क्या हो गया? कई दिन हो गए, काम पर नहीं आ रहा?''

''भई, जिस्म में जान ही नहीं है। पैरों व कमर में काफी दर्द है।''

''एक बात कहूँ! कल शहर से नेताजी का आदमी आया था। कह रहा था कि चुनाव आ रहे हैं।''

''अपना क्या है? अपने को तो रोज कुआँ खोदना है और पानी निकालना है।''

''यार! तुम्हारी बात सभी मानते हैं। खड़ी फसल को काटने का विरोध करेंगे तो ठेकेदार के भी होश ठिकाने आ जाएँगे। साल भर का तो खर्च चुनाव निकाल ही देगा।''

''पाँच हजार रुपए का कर्ज लेकर तो हम बँधुआ मजदूर हो गए। सालोसाल बिना खाए-पिए काम करने के बाद भी भुखमरी··· ।''

''तभी तो··· ।''

उसी शाम चौपाल पर निर्णय ले लिया गया।

ठेकेदार के खेतों में खड़ी फसल मजदूरों की प्रतीक्षा करती रही।

दूर से आती जीप के हॉर्न की आवाज हरखू व दूसरे मजदूरों के कानों में आशा का संचार कर रही थी।

अगले दिन सभी झोंपड़ियों पर पार्टी के झंडे देखे गए।

९०८, सेक्टर-७ एक्सटेंशन,
अर्बन एस्टेट, गुरुग्राम-१२२००६ (हरियाणा)
दूरभाष : ०९८१०३७४९४१

चमक

● कमल चोपड़ा

दहशत से चौड़ी हो आई आँखें पति के चेहरे पर टिकी हुई थीं। उससे खुशी सँभाले नहीं सँभल रही थी, ''गजब की दिलेरी दिखाई हमारे धर्मवालों ने? आदमियों को तो आग में झोंक दिया और दो बच्चों को भाले की नोक पर उछाल दिया। ऐसा सबक सिखाया है कि आगे से सिर नहीं उठा पाएँगे।''

''मुन्ना कहाँ है?''

थरथराकर रह गई वह, ''कुछ देर पहले तो यहीं था।''

पति का दिल भी धड़ककर रह गया, बाहर हैवानियत का नंगा नाच हो रहा है। भयानक दंगे हो रहे हैं। ये खेलने का वक्त है? ''तुझे कहा था, बच्चे का ध्यान रखना। बाहर मत निकलने देना। दंगाइयों के हत्थे चढ़ गया तो?''

वे बदहवास से बच्चे को ढूँढ़ने लगे। अंदर-बाहर, गली में, छत पर; मुन्ना कहीं नहीं मिला। कलेजा मुँह को आने लगा। बुरी तरह रोती-कलपती माँ को कोसने लगा। मारे घबराहट के वह पसीना-पसीना हो आया था, ''गया कहाँ मुन्ना? कहीं दूर न निकल गया हो?''

गली के नुक्कड़ तक देख आए। अड़ोस-पड़ोस में पूछा। दो-एक जगह फोन किए। उनकी चिंता और घबराहट बढ़ती जा रही थी। छत पर जाकर उन्होंने मकान के पिछवाड़े झाँका। रहमू मियाँ के लड़के साजिद के साथ मुन्ना बहती हुई गंदी नाली के किनारे बैठा था। दौड़कर वे नीचे उतरे। उन पर नजर पड़ते ही मुन्ना बोला, ''पापा, एक चींटा नाली में गिर गया था। मैंने पीपल के पत्ते को नाली में डुबोकर चींटे को बाहर निकाल लिया। जान बच गई बेचारे की!''

साजिद की आँखों में चमक थी। एकाएक वह भी चहका, ''अंकल-अंकल! मैंने भी एक तीड़ को तिनके पर बिठाकर बाहर निकाला। मर जाता तो बेचारे के मम्मी-पापा कितना लोते?''

छत

उनके हाथों में हथौड़े और सभल थे। वे घर के बाहर आकर एकाएक रुकी मैटाडोर से उतरे थे। पीछे-पीछे आ रही लंबी कार से एक भारी-भरकम मुच्छड़ व्यक्ति उतरा, जिसे देखते ही बाबूजी ने पहचान लिया था। उसे अपनी ओर आते देख बाबूजी डर से थरथर काँपने लगे।

अंदर आकर अपनी घनी मूँछों के नीचे से दाँत निकालते हुए मुच्छड़ ने कहा, ''तीन साल से हम कह रहे थे कि आपको ये मकान हमें बेचना पड़ेगा। हमें तो खरीदना ही है, पर आप तो 'बेचना ही नहीं, बेचना ही नहीं' की रट लगाए बैठे थे। हमारे लिए तो ये प्राइम लोकेशन का प्लॉट है। इस दस मंजिला कॉमर्शियल बिल्डिंग के सातवें फ्लोर पर आपके रहने का इंतजाम कर दिया है। लेबर साथ लेकर आया हूँ! आपका सामान बड़ी हिफाजत से वहाँ पहुँचा देंगे! आज इस मकान की तोड़ाई भी शुरू करनी है।''

चीख पड़े बाबूजी—''ऐसे कैसे? कोई जोर-जबरदस्ती है क्या? गुंडागर्दी करोगे? पुलिस-कानून कुछ होता है कि नहीं?''

जाने-माने साहित्यकार। अब तक 'अभिप्राय', 'फंगस', 'अन्यथा' (लघुकथा-संग्रह), 'अतिक्रमण' (कहानी-संग्रह), 'हालात', 'प्रतिवाद', 'अपवाद', 'आयुध', 'अपरोक्ष' (लघुकथा-संकलन) प्रकाशित। संप्रति सन् २००८ से लघुकथा वार्षिकी 'संरचना' का संपादन-प्रकाशन।

वे पुलिस को फोन करने के लिए लपके। बाबूजी काँपती हुई उँगलियों से ठीक से नंबर नहीं मिला पा रहे थे। ठहठहा पड़ा मुच्छड़, ''पुलिस हा-हा-हा···क्यों परेशान हो रहे हो? पुलिस आएगी, मेरे साथ आपको भी थाने चलकर बात करने को कहेगी। हमारे मालिक बिल्डर अग्रवाल साहब थाने में पहले ही से बैठे हैं। उनके पास इस मकान को खरीदने के सब कागजात हैं।''

''खरीदने के कागजात! मैंने बेचा कब है? किससे खरीद लिया?''

बाबूजी का सवाल मुच्छड़ ने हँसी में टाल दिया। वे चीख रहे थे, ''तुम लोगों की ये गुंडागर्दी नहीं चलेगी। इस मकान के कागजात मेरे बेटों के पास सुरक्षित हैं। शायद तुम नहीं जानते, मेरा एक बेटा पुलिस में ए.सी.पी. है और दूसरा एस.डी.एम.। मैं अभी उन्हें फोन करके बुलाता हूँ। पता चल जाएगा तुम लोगों को।''

इससे पहले हक बाबूजी बेटों को फोन मिलाते, मुच्छड़ ने अपने मोबाइल से नंबर मिलाकर बाबूजी को देते हुए कहा, ''ले अपने बेटे से बात कर ले!''

रोते-बिलखते हुए बाबूजी ने अपनी बात कही, तो बेटे ने कहा, ''रिलेक्स बाबूजी! क्यों परेशान होते हो? हाँ, वो मकान हमने अग्रवालजी को बेच दिया है। आपने एक बार हमें पावर ऑफ अटार्नी दी थी न? पुराने लोग की सेटलमेंट का कोई केस था शायद। मकान की रजिस्ट्री वगैरह हमारे पास ही थी, सो बिल्डर ने हमसे ही सेल डील करवा ली। दो-दो करोड़ दिए हैं हम दोनों भाइयों को। आपके रहने के लिए दूसरी बिल्डिंग में एक फ्लोर दिया ही है।''

रोते-बिलखते हुए बाबूजी ने बेटे से मकान से जुड़ी अपनी यादों और भावनाओं की बात की तो बेटे ने ठहाका मारते हुए कहा, ''क्या बाबूजी, आप एकदम सेंटीमेंटल फूल्स की तरह बातें कर रहे हैं। दुनिया ग्लोबलाइज हो रही है। परिवर्तन तो आना ही है! अब आप नई सुविधा के साथ नई छत के नीचे आराम से रहिए।''

उधर उनका सामान मैटाडोर में रखा जा रहा था। वे चुपचाप जाकर मैटाडोर में बैठ गए।

१६००/११४, त्रिनगर
दिल्ली-११००३५

पॉकेटमार

● मुरलीधर वैष्णव

'आइए यजमान, किसकी अस्थियाँ लाए हैं?' नजरें आगंतुक की जेब पर डालते हुए करुणामिश्रित मीठी जुबान में पंडा बोला। ''पिताश्री की!'' यजमान ने कहा।

'अरे-अरे कब'''कै बरस के थे वे?' पीकदान में शोक संवेदनाएँ उगलता हुआ पंडा बोला।

'एक सौ दो बरस के।' उसने गर्व से कहा।

'बड़े भाग्यवान हो भैया। फिर तो खुलकर दान करो।' पंडे ने उसे ज्ञान दिया।

अस्थि प्रवाह से पूर्व इक्कीस प्रकार के दान करने का वचन यजमान से लेकर पंडे ने आधे घंटे में उक्त कार्य को निबटा दिया। कुछ हील-हुज्जत के बाद भी यजमान को ग्यारह सौ रुपए उसे दान-दक्षिणा के देने ही पड़े। यजमान उसके चंगुल से मुक्त होने को छटपटाने लगा।

'बही में नाम लिखाई नहीं कराओगे तो कल कौन मानेगा कि तुम यहाँ पिताश्री की अस्थियाँ लेकर आए थे।' पंडे ने उसे आखिरी पटकनी मारी।

वह घबरा गया। जाते-जाते पंडे को एक सौ रुपए बही में नाम लिखाई के उसे और देने पड़े।

यजमान की जेब में अब जयपुर के निकट अपने गाँव लौटने का भाड़ा मात्र बचा था। वह हरिद्वार से दिल्ली पहुँचा। जयपुर की बस में बैठने से पूर्व एक कप चाय पीने की उसकी इच्छा हुई। जेब सँभाली तो पैसे गायब।

यजमान की दु:खी आत्मा यह सोचती ही रह गई कि असल में उसकी जेब कटी कहाँ—दिल्ली में या फिर हरिद्वार में?

महिला दिवस

सुबह-सुबह मेरे घर की घंटी बजी। पत्नी दरवाजे पर देखने जाती, इससे पहले ही दरवाजा खुला होने से मेरा दोस्त मदन अंदर आ गया।

''हैप्पी वुमेंस डे, भाभी!''

''हैप्पी तो तब ज्यादा होता जब आप लीला को भी साथ लेकर आते।'' पत्नी ने उसे उलाहना दिया।

''लगता है लीला भाभी ने सुबह-सुबह ही तुझे घर से बाहर निकालकर हैप्पी वुमेंस डे मनाया है।'' मैंने छेड़ा।

सुपरिचित साहित्यकार। दो कथा संग्रह 'पीड़ा के स्वर' तथा अक्षय-तूणीर, एक काव्य-संग्रह 'हेलौ-बसंत' दो बाल कथा-संग्रह 'पर्यावरण चेतना की बालकथाएँ' व 'चरित्र विकास की बाल कहानियाँ' प्रकाशित। अंग्रेजी में विभिन्न कानूनी बिंदुओं पर अंतरराष्ट्रीय पत्रिका सी.टी.जे. (कंजूमर एंड ट्रेड प्रैक्टिस लॉ) में अनेक आलेख प्रकाशित। अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

''वो तो तुझे बाद में बताऊँगा, पर पहले यह बता यार कि तू इत्ता बड़ा अफसर है और जिस भगौनी में नाश्ता बना है, उसी में खा रहा है! टेबल मेनर्स नाम की भी कोई चीज होती है या नहीं?''

''विश्व महिला दिवस मना रहा हूँ, यार।'' मैं भी खाते-खाते अपनी हँसी रोक नहीं पाया।

''महिला दिवस'''? बराय मेहरबानी आप अपनी इस बेहूदगी पर थोड़ा प्रकाश डालेंगे?'' मदन ने मुझे धराशायी करने के अंदाज में पूछा।

''देख डियर, महिला दिवस से इसका संबंध गहरा है, और वह भी दो तरह से—पहला तो यह कि आज कामवाली बाई छुट्टी पर है तो इस भगौनी को तो वैसे भी साफ करना ही था। फिर मैं भगौनी में से यह दूध में बना ओट्स किसी दूसरे बाउल में लेता तो उसे भी साफ करना पड़ता, जो अब नहीं करना पड़ेगा। दूसरा कारण बहुत इंपोर्टेंट है।'' मैंने उसके चेहरे पर सस्पेंस पैदा करते हुए कहा।

''वह क्या?''

''देख, तू तो जानता ही है कि अपने राजस्थान में यह पारंपरिक मान्यता है कि जिस बरतन में आप कुछ पकाएँ, यदि उसी में खा लें तो उस आदमी का दूसरा विवाह होने या किसी दूसरी से चक्कर होने की संभावना नहीं रहती। तो मेरे यार, इस हरकत में तेरी भाभी की इच्छा भी शामिल है।'' मैंने उसे आँख मारते हुए कहा।

यह सुन मदन हँसता, उससे पहले पत्नी खिलखिलाकर हँस पड़ी थी।

'गोकुल' ए-७७, रामेश्वर नगर
बासनी प्रथम फेज, जोधपुर (राज.)
दूरभाष : ०९४६०७७६१००

पहली हिंदी लघुकथा··· ?

● बलराम अग्रवाल

हिंदी कहानी के विधिवत् जन्म लेने से काफी पहले पाश्चात्य विद्वान् एडगर एलन पो (१८०९-१८४९ ई.), ओ. हेनरी (१८६२-१९१० ई.), गाइ द मोपांसा (१८५०-१८९३ ई.) तथा एंटन पाब्लोविच चेखव (१८६०-१९०४ ई.) के माध्यम से कहानी अपने उत्कृष्टतम स्वरूप को प्राप्त कर चुकी थी। भारतीय भाषाओं में बँगला कहानी भी खुली हवा में अपना परचम लहरा चुकी थी। हिंदी में परिमार्जित कहानी के रूप में जो रचनाएँ प्रकाश में आई हैं, आमतौर पर सन् १९०० ई. के आसपास प्रकाशित हुईं। अलग-अलग कारणों से, पहली हिंदी कहानी की दौड़ में जो कहानियाँ शामिल हैं, उन्हें उनके प्रकाशन-काल के क्रम में निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है—

१. प्रणयिनी परिचय (१८८७) किशोरीलाल गोस्वामी; २. छली अरब की कथा (१८९३) संभवत: लोककथा; ३. सुभाषित रत्न (१९००) माधवराव सप्रे; ४. इंदुमती (१९००) किशोरीलाल गोस्वामी; ५. मन की चंचलता (१९००) माधवप्रसाद मिश्र; ६. एक टोकरी भर मिट्टी (१९०१) माधवराव सप्रे; ७. ग्यारह वर्ष का समय (१९०३) रामचंद्र शुक्ल; ८. लड़की की कहानी (१९०४) माधवप्रसाद मिश्र; ९. दुलाई वाली (१९०७) राजेंद्र बाला उर्फ बंग महिला; १०. राखीबंद भाई (१९०७) वृंदावन लाल वर्मा; ११. ग्राम (१९११) जयशंकर प्रसाद; १२. सुखमय जीवन (१९११) चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी'; १३. रक्षा बंधन (१९१३) विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक'; १४. उसने कहा था (१९१५) चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी'।

डॉ. अजय तिवारी ने इस क्रम में सन् १८७१ में प्रकाशित रेवरेंड जे. न्यूटन की कहानी 'एक जमींदार का दृष्टांत' को भी जोड़ा है। 'वर्तमान साहित्य' के शताब्दी कथा विषेशांक (जनवरी-फरवरी, २०००) में उन्होंने उसका पाठ भी प्रस्तुत किया है। तिवारीजी द्वारा प्रस्तुत उक्त कहानी की भाषा आज जितनी परिमार्जित है, जो कि निश्चित रूप से १८७१ ई. में प्रचलित नहीं थी। अत: यह प्रयास संदेहास्पद प्रतीत होता है। खैर, यहाँ पर हमारा उद्देश्य मात्र इतना बताना है कि 'पहली' हिंदी कहानी की पंक्ति में इस समय तक सन् १८७१ से लेकर सन् १९१५ तक प्रकाशित विभिन्न कथाकारों की १५ कहानियाँ उपलब्ध हैं। हरेक के बारे में उसके प्रस्तोता का ठोस साक्ष्य अथवा तर्क उपस्थित है। परंतु हिंदी लघुकथा की स्थिति इससे एकदम भिन्न है। 'पहली हिंदी लघुकथा' के बारे में अब तक जो भी नाम सुझाए गए हैं, उनमें किसी दृष्टि-विशेष का ध्यान नहीं रखा गया। इस मामले में सिर्फ दो बातों को आधार बनाकर चला गया लगता है—एक, रचना का कहानी के फार्म में होना तथा दो, उसका लघ्वाकारीय होना। कोई सार्थक और तर्कयुक्त दृष्टि इस बारे में नहीं अपनाई गई।

जाने-माने कथाकार। 'चन्ना चरनदास', 'दूसरा भीम' *(बालकथा-संग्रह)*, ग्यारह अभिनेय बाल एकांकी। अंग्रेजी पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद तथा कई संपादित पुस्तकें। १२ खंडों में प्रकाशित 'प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियाँ' में संपादन सहयोग; हिंदी साहित्य कला परिषद्, पोर्टब्लेयर की साहित्यिक पत्रिका 'द्वीप लहरी' को अद्यतन संपादन सहयोग।

'पहली हिंदी लघुकथा' की प्रस्तुति की शुरुआत 'सरस्वती' (१९१६ ई.) में प्रकाशित पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की कथा-रचना 'झलमला' की गाजियाबाद से प्रकाशित पत्रिका 'सर्वोदय विश्ववाणी' में इसके पुनर्प्रकाशन से हुई। बाद में इसके कुछ अंशों को तराशकर प्रो. कृष्ण कमलेश ने इसे 'पहली हिंदी लघुकथा' शीर्ष तले ही 'कथाबिंब' के लघुकथा-विशेषांक (१९८१ ई.) में प्रकाशित किया। उन दिनों निश्चित रूप से आज जितना शोध हिंदी लघुकथा में नहीं हुआ था। यद्यपि यथेष्ट शोध तो अभी भी वांछित है और आगे भी हमेशा रहेगा, तथापि पहले की तुलना में आज हम स्वयं को कुछ अधिक स्पष्ट ढंग से व्यक्त कर पाने में सक्षम अवश्य पाते हैं। अब तक जिन लघ्वाकारीय गद्य कथा-रचनाओं को पहली लघुकथा होने की दौड़ में गिना जाना चाहिए, वे प्रमुखत: निम्न प्रकार हो सकती हैं—

१. अंगहीन धनी (परिहासिनी, १८७६) भारतेंदु हरिश्चंद्र; २. अद्भुत संवाद (परिहासिनी, १८७६) भारतेंदु हरिश्चंद्र, ३. बिल्ली और बुखार (प्रामाणिकता अप्राप्य) माखनलाल चतुर्वेदी; ४. एक टोकरीभर मिट्टी (छत्तीसगढ़ मित्र, १९०१) माधवराव सप्रे; ५. विमाता (सरस्वती, १९१५) छबीलेलाल गोस्वामी; ६. झलमला (सरस्वती, १९१६) पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी; ७. बूढ़ा व्यापारी (१९१९) जगदीशचंद्र मिश्र; ८. प्रसाद (प्रतिध्वनि, १९२६) जयशंकर प्रसाद; ९. गूदड़ साईं (प्रतिध्वनि, १९२६) जयशंकर प्रसाद; १०. गुदड़ी में लाल (प्रतिध्वनि, १९२६) जयशंकर प्रसाद; ११. पत्थर की पुकार (प्रतिध्वनि, १९२६) जयशंकर प्रसाद; १२. उस पार का योगी (प्रतिध्वनि, १९२६) जयशंकर प्रसाद; १३. करुणा की विजय(प्रतिध्वनि, १९२६) जयशंकर प्रसाद; १४. खंडहर की लिपि (प्रतिध्वनि, १९२६) जयशंकर प्रसाद; १५. कलावती की शिक्षा (प्रतिध्वनि, १९२६) जयशंकर प्रसाद; १६. चक्रवर्ती का स्तंभ (प्रतिध्वनि, १९२६) जयशंकर प्रसाद; १७. बाबाजी का भोग (प्रेम प्रतिमा, १९२६) प्रेमचंद; १८. वैरागी (आकाशदीप, १९२९) जयशंकर प्रसाद; १९. सेठजी

(१९२९) कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'।

अगर इनमें प्रेमचंद की उन लघ्वाकारीय कहानियों को भी विचारार्थ स्वीकार करना चाहें जो मूलत: उर्दू में काफी पहले प्रकाशित हो चुकी थीं, परंतु उनका रूपांतर/लिप्यांतर काफी बाद में, यहाँ तक कि उनकी मृत्यु के भी वर्षों बाद प्रकाश में आया, तो वे निम्न प्रकार हैं—

१. बाँसुरी (उर्दू कहकशाँ, जनवरी १९२०; हिंदी रूपांतर गुप्तधन-१, १९६२ में); २. राष्ट्र का सेवक (उर्दू पत्रिका 'अलनाजिर' के जनवरी १९१७ अंक में तथा उर्दू शीर्षक 'कौम का खादिम' से प्रेम चालीसी, १९३० में; हिंदी रूपांतर गुप्तधन-२, १९६२ में); ३. बंद दरवाजा (उर्दू प्रेम चालीसी, १९३० में); ४. दरवाजा (उर्दू पत्रिका 'अलनाजिर' के जनवरी १९३० अंक में; हिंदी लिप्यांतर 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', १९८८ में)।

'पहली हिंदी कहानी' के आकलन का आधार अभी तक तय नहीं हुआ है। शायद इसीलिए सर्वमान्य रूप से कोई एक कहानी भी अभी तक 'पहली हिंदी कहानी' होने का गौरव नहीं पा सकी है, अनेक कहानियाँ इस दौड़ में शामिल हैं। आगे कुछ और नाम इस सूची में जुड़ सकते हैं, इनकार नहीं किया जा सकता।

इस तरह विचारणीय कथाकार में इन गुणों का होना आवश्यक है—(१) प्रतिभा-स्फोट, (२) नैरंतर्य तथा (३) जीवन-दृष्टि। यद्यपि यह तो तय है कि नैरंतर्य की शर्त उन लेखकों पर लागू नहीं होनी चाहिए, जिन्हें दुर्भाग्यवश दीर्घ जीवन प्राप्त नहीं हुआ। उदाहरणार्थ, 'गुफाओं से मैदान की ओर' में संकलित कैलाश जायसवाल अपनी लघुकथा 'पुल बोलते हैं' की रचना के बाद संभवत: कुछ और नहीं लिख सके और दिवंगत हो गए।

इधर जैसे-जैसे हिंदी लघुकथा का विधापरक स्वरूप स्पष्ट और मान्य होता जा रहा है, वैसे-वैसे 'पहली हिंदी लघुकथा' की चिंता भी उत्पन्न होने लगी है। यह स्वाभाविक ही है। समाज द्वारा स्वीकृत विधा का अकादमी में प्रवेश निश्चित है और अकादमी में उसके पठन-पाठन, शोध और अध्ययन आदि के अपने कुछ निश्चित तौर-तरीके, कुछ निश्चित अनुशासन हैं। 'प्रथमत:' की खोज भी उन तौर-तरीकों और अनुशासनों के अंतर्गत अपनी पैठ बनाए हुए है।

'सर्वोदय विश्ववाणी' में पहली हिंदी लघुकथा के तौर पर 'झलमला' की प्रस्तुति के उपरांत दूसरा सद्प्रयास माखनलाल चतुर्वेदी की लघुकथा 'बिल्ली और बुखार' को पहली हिंदी लघुकथा घोषित करने के रूप में हुआ। परंतु यह रचना प्रस्तुतीकरण के समय से ही विवादों के घेरे में रही और आज तक भी है। इसको प्रथमत: प्रकाशित करनेवाले पत्र-पत्रिका-पुस्तक की प्रति तथा इसका ठीक-ठीक प्रकाशन-काल अभी तक निश्चित नहीं है। तीसरे स्थान पर माधवराव सप्रे की, उन्हीं के द्वारा संपादित पत्र 'छत्तीसगढ़ मित्र' के वर्ष २, अंक ४, वर्ष १९०१ ई. में प्रकाशित दो पृष्ठीय कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' का नाम आता है। इस सबके बीच कुछ सवाल हैं, जो 'पहली हिंदी लघुकथा' को तय या घोषित करते हुए स्वाभाविक रूप से उभरते हैं, उभरने चाहिए। यह कि किसी कथा-रचना को 'पहली हिंदी लघुकथा' घोषित करने का आधार क्या माना गया है? उसका लघ्वाकारीय होना मात्र ही पर्याप्त है, या उसमें उन आधारभूत गुण-तत्त्वों का होना भी आवश्यक माना गया है जिनके कारण कोई कथा-रचना 'कहानी' न होकर 'लघुकथा' होती है? दूसरे, उस रचना का (अ) मौलिक, (आ) तत्कालीन पत्र-पत्रिका-पुस्तक में प्रामाणिक रूप से प्रकाशित तथा (इ) देश व काल सापेक्ष जीवन-दृष्टि से युक्त होना आवश्यक माना गया है या नहीं? तीसरे, रचनाकार के लेखकीय इतिवृत्त की समीक्षा करने को उपयुक्त माना गया है या नहीं?

हम जानते हैं कि दृष्टांतपरक, बोधपरक, नीतिपरक आदि गद्यात्मक व पद्यात्मक दोनों प्रकार की लघु-कथाओं की सुदीर्घ परंपरा हिंदी को संस्कृत वाङ्मय और अन्य विश्व कथा साहित्य से प्राप्त है। परंतु आज 'लघुकथा' से हमारा तात्पर्य आधुनिक यथार्थ-बोध की उस लघ्वाकारीय गद्य कथा-रचना से होता है, जो मनुष्य को सामाजिक असंगतियों और असंबद्धताओं के खिलाफ उठ खड़े होने के लिए उद्वेलित करती है, उसके सुप्त संवेदन-तंतुओं को झंकृत करने का प्रयास करती है; पारंपरिक दृष्टांतपरक, बोधपरक, नीतिपरक लघु-आकारीय कथा-रचना से नहीं।

हम जानते हैं कि दृष्टांतपरक, बोधपरक, नीतिपरक आदि गद्यात्मक व पद्यात्मक दोनों प्रकार की लघु-कथाओं की सुदीर्घ परंपरा हिंदी को संस्कृत वाङ्मय और अन्य विश्व कथा साहित्य से प्राप्त है। परंतु आज 'लघुकथा' से हमारा तात्पर्य आधुनिक यथार्थ-बोध की उस लघ्वाकारीय गद्य कथा-रचना से होता है, जो मनुष्य को सामाजिक असंगतियों और असंबद्धताओं के खिलाफ उठ खड़े होने के लिए उद्वेलित करती है, उसके सुप्त संवेदन-तंतुओं को झंकृत करने का प्रयास करती है; पारंपरिक दृष्टांतपरक, बोधपरक, नीतिपरक लघु-आकारीय कथा-रचना से नहीं।

मैं समझता हूँ कि 'पहली हिंदी लघुकथा' के मामले में भारतेंदु हरिश्चंद्र की 'परिहासिनी' (१८७६) को बहुत ही हल्के अंदाज में लिया गया है। 'भारतेंदु समग्र' के संपादक हेमंत मिश्र ने अपने संपादकीय 'भारतेंदु को पढ़ने के बाद' में लिखा है, 'परिहासिनी' उनके व्यंग्य और चुटकुले का संग्रह है (पृष्ठ पैंतीस)। बस इसी को पढ़कर हम 'परिहासिनी' के चरित्र को तय कर लेते हैं, स्व-विवेक का प्रयोग कर आगे नहीं बढ़ते। पुस्तक का कवर-पृष्ठ इस प्रकार है—परिहासिनी अर्थात् हँसी, दिल्लगी, पंच, चीज की बातें और चुटकिले। बहुत संभव है कि मूल पुस्तक में पूरी सामग्री को उपर्युक्त पाँच उपशीर्षों में विभक्त करके छापा गया हो। 'भारतेंदु समग्र' में प्रकाशित 'परिहासिनी' का पहला उपशीर्षक 'चीज की बातें' है, जिसके अंतर्गत ७ गद्य की तथा एक लंबी पद्य की रचना है। दूसरा व तीसरा उपशीर्ष 'दिल्लगी की बातें' है, जिसके अंतर्गत क्रमश: १९ व १५ या १६ गद्य रचनाएँ हैं। 'ज्ञान चर्चा' व 'दुआ माँगना' उपशीर्ष भी बनाए गए हैं, जिनके अंतर्गत क्रमश: ३ व ४ गद्य रचनाएँ हैं।

अंतिम उपशीर्षक 'चुटकिले' है, परंतु उसके अंतर्गत मात्र एक गद्य रचना है, जबकि उपशीर्षक को बहुवचन रखा गया है। इससे इसके मूल पुस्तक से भिन्न होने का संदेह उत्पन्न होना स्वाभाविक है। प्रकाशन में प्रूफ की अनेक गलतियाँ तो 'भारतेंदु समग्र' के इस संस्करण में हैं ही।

भारतेंदु ने 'परिहासिनी' को 'कथा-कहानी' की पुस्तक नहीं कहा है और नि:संदेह यह 'पहली लघुकथा पुस्तक' है भी नहीं; परंतु इसके प्रथम उपशीर्षक 'चीज की बातें' में 'चीज' क्या है? यह विचारणीय है। दूसरे, 'पंच' क्या है? यह भी विचारणीय है। 'चीज' यानी 'वस्तु' अर्थात् वह जो उपयोग हेतु ग्रहण किया जा सके। 'चीज की बातें' अपने आप में एक अनोखा शब्द-प्रयोग है। रचना के, वह भी कथात्मक रचना के संदर्भ में 'वस्तु' का क्या महत्त्व है, इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। मुक्के के एक ही वार में दीवार फोड़ देने के लिए अंग्रेजी में 'पंच' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसीलिए मुक्केबाजी का यह तकनीकी शब्द है। साहित्य में इसका निहित अर्थ व्यक्ति को तिलमिलाकर रख देनेवाला प्रहारपूर्ण वक्र वाक्य-प्रयोग है। निश्चय ही यह 'आइरनी' से भिन्न प्रकृति रखता है। यही कारण है कि 'परिहासिनी' में 'चीज की बातें' उपशीर्ष के अंतर्गत संकलित गद्य रचनाएँ मात्र चुटकुला नहीं हैं। वे 'चीज' और 'पंच' दोनों प्रकार की रचनाएँ हैं। 'अद्‌भुत संवाद' प्रहारपूर्ण वक्र-वाक्य का अनुपम उदाहरण है। परंतु 'अंगहीन धनी' एक असाधारण गद्य-कथा है। वस्तुत: 'अद्‌भुत संवाद' और 'अंगहीन धनी', ये दोनों ही रचनाएँ भारतेंदु की प्रतिभा और देश-काल सापेक्ष जीवन-दृष्टि की गहराई को प्रस्तुत करती हैं। इनमें 'अंगहीन धनी' में परिस्थितियों को गंभीरता के साथ और 'अद्‌भुत संवाद' में मसखरेपन के साथ पाठकों के समक्ष रखा गया है। गहन-गंभीर प्रकृति के कारण 'अंगहीन धनी' का प्रभाव स्थायी बना रहता है, जबकि मसखरेपन के कारण वही बात 'अद्‌भुत संवाद' बनकर गुदगुदाहट पैदा कर आगे बढ़ जाती है। तथापि संदेश दोनों रचनाओं में लगभग एक ही है। पाठकों के चिंतन-मनन-विश्लेषण हेतु यहाँ प्रस्तुत हैं दोनों रचनाएँ—

अंगहीन धनी

एक धनिक के घर उसके बहुत से प्रतिष्ठित मित्र बैठे थे। नौकर बुलाने को घंटी बजी। मोहना भीतर दौड़ा, पर हँसता हुआ लौटा।

और नौकरों ने पूछा, 'क्यों बे, हँसता क्यों है?'

तो उसने जवाब दिया, 'भाई, सोलह हट्टे-कट्टे जवान थे। उन सबों से एक बत्ती न बुझे। जब हम गए, तब बुझे।'

अद्‌भुत संवाद

'ए, जरा हमारा घोड़ा तो पकड़े रहो।'

'यह कूदेगा तो नहीं?'

'कूदेगा! भला कूदेगा क्यों? लो सम्हालो।'

'यह काटता है?'

'नहीं काटेगा, लगाम पकड़े रहो।'

'क्या इसे दो आदमी पकड़ते हैं, तब सँभलता है?'

'नहीं।'

'फिर हमें क्यों तकलीफ देते हैं? आप तो हई हैं।'

'अद्‌भुत संवाद' संवाद-शैली की लघुकथा है। वस्तु-संप्रेषण के लिए इसमें एक मसखरे का प्रयोग किया गया है। व्यवस्थाजन्य खतरों से बचने के लिए लेखक को ऐसे प्रयोग अकसर ही करने पड़ जाते हैं। ईसप ने अपने अमीर मालिकों और राजाओं की कोपदृष्टि से बचने के लिए अपनी कहानियों में सदा ही मानवेतर पात्रों का प्रयोग किया, ऐसा माना जाता है। निरालाजी ने भी वस्तु-प्रेषण हेतु अपनी एक कहानी में एक नारी पात्र को 'पगली' दिखाया। भारतेंदु नाट्य विधा के गहरे विद्वान् थे। हिंदी रंगमंच और नाट्य-लेखन, दोनों को ही उनका अभूतपूर्व योगदान है। वस्तु-संप्रेषण की उनमें अद्‌भुत और अनुपम क्षमता थी। नाटक की भाषा में कहें तो 'अद्‌भुत संवाद' को 'पारसीकल थियेटर शैली' में लिखा गया है। इसका स्थूल कथानक यह है कि कोई रईसजादा अपना घोड़ा पकड़े रखने के लिए पास खड़े गरीब दिख रहे एक व्यक्ति पर रोब जमाकर उससे बेगार लेना चाहता है। लेकिन वह व्यक्ति उसके रोब में न आकर बड़े मसखरे अंदाज में उसे बेगार देने से मना कर देता है। कल्पना करिए कि उस काल में, जब ब्रिटिश-व्यवस्था ने रईसों, जमींदारों और नवाबों को असीम अधिकार दिए हुए थे, किसी व्यक्ति का उन्हें बेगार देने से मना करना उसके लिए कितना घातक सिद्ध हो सकता था। और उस लेखक के हाल की भी कल्पना करना मुश्किल नहीं है, जो अपनी रचनाओं के माध्यम से आमजन को बेगार न देने के लिए भड़का रहा हो। यही कारण रहा कि भारतेंदु को यह काम मसखरे के माध्यम से करना पड़ा।

'अंगहीन धनी' का प्रत्यक्ष कथानक बताने की आवश्यकता नहीं है। उसके संदेश को समझने की आवश्यकता है। यह अठारहवीं सदी की रचना है। गुलाम-देश के कुछ रईस और नवाबजादे ऐशगाह में मौज-मस्ती कर रहे हैं। बाहर आदेशपूर्ति के लिए नौकरों की भीड़ तैनात है। भीतर से बुलावे की घंटी बजती है और काम सिर्फ इतना है कि ऐशगाह में जलती एक बत्ती को बुझाना है। ये लोग जो अपने ही कमरे या हॉल में जलती एक बत्ती को बुझाने का श्रम नहीं कर सकते, क्या खाकर देश की आजादी के लिए लड़ेंगे? यह उस काल की शाश्वत चिंता है, जिसे भारतेंदु गंभीरतापूर्वक स्वर देते हैं। लघुकथा के आधारभूत गुण-तत्त्वों पर भी यह रचना पूरी तरह खरी उतरती है—

(अ) लाघव : यह भाषा-विज्ञान की एक टर्म है, जिसका अर्थ होता है किसी रचना को विषय से इतर यानी उससे भटकाने वाले विचारों व शब्दों से मुक्त रखना। बिल्कुल उस तरह जैसे कि विज्ञान का कोई विद्यार्थी प्रयोगशाला में ऑक्सीजन गैस बनाते समय अपनी मेज पर सिर्फ संबंधित सामग्री को ही रखता है, शेष सबको वहाँ से हटा देता है। इस रचना में भी असंगत कथ्य को स्थान नहीं मिला है। मात्र वस्तु-प्रेषण हेतु आवश्यक सामग्री का ही चयन किया गया है।

(आ) नेपथ्य : इस रचना का नेपथ्य सहज, स्पष्ट और सार्थक है। देश-काल से इसका तारतम्य आसानी से जुड़ता है। उदाहरणार्थ, लघुकथा में यद्यपि यह प्रत्यक्ष नहीं है, परंतु परोक्षत: लगता है कि अनेक

नौकर बाहर बैठे अलाव ताप रहे हैं और बंद दरवाजे के भीतर से बुलावे की घंटी के स्वर के प्रति सचेत हैं।

(इ) संपूर्णता : संपूर्णता से तात्पर्य रचना का सौंदर्यावयवों सहित समस्त प्रभावकारी कथा-अवयवों से युक्त होना। 'अंगहीन धनी' का भाषिक-गठन, शैली, संप्रेषण और प्रभाव प्रशंसनीय है। यह एक संपूर्ण लघुकथा है।

इस प्रकार 'अंगहीन धनी' गुरु-गंभीर चेतन-दृष्टि से युक्त सकारात्मक यथार्थ वाली पहली ऐसी लघुकथा है, जो अपने समय के सरोकारों से पाठक को जोड़ने का दायित्व सफलतापूर्वक निभाती है। यहाँ इस भ्रम का कि भारतेंदु हरिश्चंद्र इनके लेखक नहीं हैं और 'इनके लेखक नई शोध होने तक अज्ञात हैं' निवारण आवश्यक है। शोध एक तथ्यपरक विधा है। आधे-अधूरे तथ्यों की प्रस्तुति और पूर्वग्रहग्रस्तता इसे भ्रष्ट करते हैं।

'भारतेंदु समग्र' में पृष्ठ १०६६ पर 'परिहासिनी' को प्रस्तुत करने के क्रम में इसके संपादक हेमंत शर्मा ने अपनी ओर से एक टिप्पणी लिखी है, 'अपने मित्रों के लिए 'हँसी', 'दिल्लगी', 'चीज की बातें' और 'चुटकुले' भारतेंदु ने लिखे थे, बाद में जिसका संग्रह 'परिहासिनी' उन्होंने स्वयं प्रकाशित कराया था। इसका रचना काल १८७५ से सन् १८८० के बीच है।'

दूसरी बात, उक्त पुस्तक (परिहासिनी) पर टिप्पणी—'निज मित्रगण ठाकुर कविराज श्यामलदासजी, राजा गिरिप्रसाद सिंह, बाबू बदरी नारायण चौधरी, बाबू बालेश्वर प्रसाद और बाबू दुर्गा प्रसाद के चित्त विनोद के अर्थ हरिश्चंद्र ने संगृहीत किया।'

ऊपर हेमंत शर्मा ने लिखा है, 'भारतेंदु ने लिखे' और नीचे मुद्रक की ओर से अथवा स्वयं भारतेंदुजी की ओर से घोषणा है, 'हरिश्चंद्र ने संग्रहीत किया।' तो क्या भारतेंदु 'संग्रह' और 'संकलन' के बीच अंतर को नहीं जानते थे; या फिर यह कि उन्होंने दूसरों के लिखे चुटकुले यहाँ-वहाँ से संकलित कर जान-बूझकर अपने नाम से प्रकाशित करा लिये। अगर आप ऐसा मानते हैं तो नि:संदेह, भारतेंदु को जानते ही नहीं हैं वह कितनी हँसोड़ तबियत के व्यक्ति थे और उनमें कितना साहसपूर्ण 'विट' भरा था, उसके अनेक उदाहरण हेमंश शर्मा ने भी 'भारतेंदु समग्र' में दिए हैं।

तीसरी और अंतिम बात, प्रचलित कथाएँ जब किसी समर्थ कथाकार द्वारा विशिष्ट उद्देश्य से विशिष्ट शिल्प और शैली में रच दी जाती हैं तो उनकी जन-स्वीकृति उसी के अनुरूप बनती है। उदाहरण के लिए, तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के प्रारंभ में ही स्वीकार किया, नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि¨यानी विभिन्न पुराणों में, शास्त्रों में, वाल्मीकि रामायण में वर्णित तथा कुछ अन्य स्थानों से भी यह सामग्री मैंने जुटाई है।

जैसा कि लिखा गया है कि 'परिहासिनी' में संकलित करने से पहले भारतेंदु ने इसे तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित कराया था। तब इस रचना का प्रकाशन काल 'परिहासिनी' के प्रकाशन काल से पहले का नियत होगा। न भी प्रकाशित कराया हो तो हम इसका प्रकाशन काल १८७६ ई. तो मान ही सकते हैं। देश व काल सापेक्ष जीवन-दृष्टि ही नहीं, इसमें तत्कालीन दासता से मुक्ति हेतु संघर्ष की जमीन की ओर भी संकेत मिलता है। रचनाकार के तौर पर भारतेंदु हरिश्चंद्र का नैरंतर्य, प्रतिभा-स्फोट और जीवन-दृष्टि सबकुछ स्वयंसिद्ध है। इन समस्त व्याख्याओं और तर्कों के आधार पर निश्चित रूप से 'अंगहीन धनी' हिंदी की पहली लघुकथा सिद्ध होती है और 'अद्‌भुत संवाद' दूसरी।

'अंगहीन धनी' और अद्‌भुत संवाद', 'परिहासिनी' में इन दो रचनाओं की स्थिति वस्तुत: कटोरा भर अनार के दानों में समरूप मोतियों जैसी है। तदनुरूप पहचान के अभाव में ऐसे न जाने कितने ही और मोती अनारदानों के साथ चबाए जाकर नष्ट हो रहे होंगे। इन्हें पहचाने और बचाए जाने की आवश्यकता है। एक बात और, यह आकलन अभी तक ज्ञात लघुकथाओं के विवेचन पर आधारित है। लघुकथा अभी भी निरंतर विकासशील विधा है। भविष्य में हो सकता है कि इनसे इतर कोई अन्य लघुकथा प्रकाश में आ जाए, जो 'पहली हिंदी लघुकथा' के पूर्व-घोषित सभी दावों पर भारी पड़े। तब निश्चय ही, वही हिंदी की पहली लघुकथा होगी।

एम-७०, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२
दूरभाष : ८८२६४९९११५

इस अंक की चित्रकार

अनुप्रिया

सुपरिचित रचनाकार एवं चित्रकार। राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ तथा बाल साहित्य की पत्रिकाओं में बाल कविताएँ प्रकाशित। इसके अलावा 'संवदिया', 'विपाशा', 'ये उदास चेहरे', 'अंजुरी भर अक्षर', 'हाशिये की आवाज' आदि पत्रिकाओं में रेखाचित्र प्रकाशित।

संपर्क : श्री चैतन्य योग, गली नं. २७, फ्लैट नं. ८१७
चौथी मंजिल, डी.डी.ए. फ्लैट्स
मदनगीर, नई दिल्ली-११००६२
दूरभाष : ९८७१९७३८८८

नींव

● हरि जोशी

बहु मंजिला इमारत की दीवार नींव से उठ रही थी। ठेकेदार नया था। वह एक तगारी सीमेंट और पाँच तगारी रेत के मसाले से भयभीत सा ईंटों की जुड़ाई करवा रहा था। बारी-बारी से कई अभियंता आए। काम के प्रति सभी ने घोर असंतोष व्यक्त किया, 'ऐसा काम करना हो तो कहीं और जाइए।'

अगले दिन नए ठेकेदार ने एक तगारी सीमेंट और तीन तगारी रेत के मसाले से सशंकित हो ईंटों की जुड़ाई की। बारी-बारी से पुन: कई मंत्री आए, सभी ने नींव की दीवार पर एक निगाह डाली और गरम हो गए। इस बार ठेकेदार को अंतिम चेतावनी दी, 'यदि कल तक काम में पर्याप्त सुधार नहीं किया गया तो काम बंद करवा दिया जाएगा।'

जब नए ठेकेदार की समझ में बात नहीं आई तो उसने एक अनुभवी ठेकेदार से इस समस्या पर अपनी प्रतिक्रिया चाही। अनुभवी ठेकेदार भी हँसा और उसने भी घाघ अभियंताओं की तरह नए ठेकेदार को मूर्ख निरूपित किया, किंतु सुधार की एक तरकीब भी बताई।

अनुभवी ठेकेदार के निर्देशानुसार नए ठेकेदार ने सभी अभियंताओं के निवास पर रात्रि के प्रथम प्रहर में कुछ भारी और कुछ ज्यादा भारी लिफाफे पहुँचा दिए। लिफाफे यथायोग्य दिए गए थे।

आगामी दिन नए ठेकेदार ने एक तगारी सीमेंट और बीस तगारी रेत के मसाले से निश्चिंत हो ईंटों की जुड़ाई की। बारी-बारी से सभी अभियंता निरीक्षण करने आए। मसाले को सभी ने हाथों से रगड़कर देखा और नए ठेकेदार की भूरि भूरि प्रशंसा की।

जाते-जाते सभी ने एक ही टिप्पणी की, 'अब आप सही तरीके से काम करना सीखे हो; नींव ऐसे ही पुख्ता होती है।'

जीभ का वर्चस्व

पंक्तिबद्ध और एकजुट रहने के कारण दाँत बहुत दुस्साहसी हो गए थे। एक दिन वे गर्व में चूर होकर जिह्वा से बोले, 'हम बत्तीस घनिष्ठ मित्र हैं, एक से एक मजबूत। और तू ठहरी अकेली, चाहें तो तुझे बाहर ही न निकलने दें।'

जिह्वा ने पहली बार ऐसा कलुषित विचार सुना। वह अब हँसकर बोली, 'अच्छा, ऊपर से एकदम सफेद और स्वच्छ हो, पर मन से बड़े कपटी हो।'

जाने-माने व्यंग्यकार। अब तक तीन कविता-संग्रह, पंद्रह व्यंग्य-संग्रह, छह उपन्यास के अलावा प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित एवं आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से प्रसारित। म.प्र. हिंदी साहित्य सम्मेलन का 'वागीश्वरी सम्मान', 'व्यंग्यश्री सम्मान', 'गोयनका सारस्वत सम्मान' आदि।

'ऊपर से स्वच्छ और अंदर से काले घोषित करनेवाली जीभ वाचालता छोड़, अपनी औकात में रह। हम तुझे चबा सकते हैं। यह मत भूल कि तू हमारी कृपा पर ही राज कर रही है।' दाँतों ने किटकिटाकर कहा। जीभ ने नम्रता बनाए रखी किंतु उत्तर दिया, 'दूसरों को चबा जाने की ललक रखनेवाले बहुत जल्दी टूटते भी हैं। सामनेवाले तो और जल्दी गिर जाते हैं। तुम लोग अवसरवादी हो, मनुष्य का साथ तभी तक देते हो, जब तक वह जवान रहता है। वृद्धावस्था में उसे असहाय छोड़कर चल देते हो।'

शक्तिशाली दाँत भी अपनी हार आखिर क्यों मानने लगे? 'हमारी जड़ें बहुत गहरी हैं। हमारे कड़े और नुकीलेपन के कारण बड़े-बड़े तक हमसे थर्राते हैं।'

जिह्वा ने विवेकपूर्ण उत्तर दिया, 'तुम्हारे नुकीले या कड़ेपन का कार्यक्षेत्र मुँह के भीतर तक सीमित है। मुझमें पूरी दुनिया को प्रभावित करने और झुकाने की क्षमता है।'

दाँतों ने पुन: धमकी दी, 'हम सब मिलकर तुझे घेरे खड़े हैं। कब तक हमसे बचेगी?'

जीभ ने दाँतों के घमंड को चूर करते हुए चेतावनी दी, 'डॉक्टर को बुलाऊँ? दंत चिकित्सक एक-एक को बाहर कर देगा। मुझे तो छुएगा भी नहीं और तुम सब बाहर दिखाई दोगे।'

संगठित और घमंडी दाँत अब निरुत्तर थे। उन्हें कविता-पंक्ति याद आ गई, 'किसी को पसंद नहीं सख्ती बयान में, तभी तो दी नहीं हड्डी जबान में।'

३/३२, छत्रसाल नगर, फेज-२,
जे.के. रोड, भोपाल-४६२०२२ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९८२६४२६२३२

दुनिया का कंधा

लघुकथा

● राजेश उत्साही

बच्चों के स्कूल में छुट्टियाँ पड़ गई थीं। माँ के साथ अपनी ननिहाल जा रहे थे।

स्टेशन जाने के लिए ऑटो की जरूरत थी। रूप पास के स्टैंड से ऑटो लेने गया। वहाँ एक ही ऑटो था। ऑटोवाले से संवाद कुछ इस तरह से हुआ।

'स्टेशन चलना है कॉलेज के पीछे से।'

'हाँ जी, चलो।'

'क्या लोगे।'

'पैंतीस होते हैं, तीस दे देना।'

'पच्चीस ले लेना। आ जाओ।'

'अरे साब, आप लोगों की कुछ आदत ही हो गई, कम करने की।' ऑटोवाला झल्लाया।

'चलना है कि नहीं। पच्चीस ही दूँगा।' रूप भी ताव खा गया।

'नहीं चलना है।' ऑटोवाला लगभग चिल्लाया। उसने जिस अंदाज में उत्तर दिया, रूप को लगा कि वह मजबूरी का फायदा उठाना चाहता है। इच्छा हुई दो-चार खरी-खरी सुना दे। पर घर में पत्नी और बच्चे इंतजार कर रहे थे। ट्रेन का समय हो रहा था। बड़बड़ाता हुआ लौट आया। पत्नी और बच्चों को स्कूटर से ही दो चक्कर लगाकर स्टेशन ले गया।

रूप स्कूटर पार्क करने चला गया। लौटा तब तक पत्नी टिकट लेकर बच्चों और सामान के साथ प्लेटफॉर्म की ओर जा चुकी थी।

परिवार को जिस ट्रेन से जाना था, उसके पहुँचने तक वह आ चुकी थी। उन्हें विदा कर लौटने पर देखा, नाले पर बने स्टैंड पर वह ऑटो अब भी खड़ा था। उसने स्कूटर उसके करीब रोका और कहा, 'सुनो, दुनिया तुम्हारे कंधे पर ही नहीं टिकी है।'

ऑटो वाले को कुछ भी समझ नहीं आया। जब तक वह समझने की कोशिश करता, तब तक रूप आगे बढ़ चुका था।

प्लेटफॉर्म पर उस दिन

ऑटो से उतरकर नवीन रेलवे प्लेटफॉर्म से जुड़नेवाले ओवरब्रिज की चढ़ाई की ओर बढ़ा। आगे एक युवती चढ़ रही थी। कलाइयाँ चूड़ियों से भरी हुई। दाएँ हाथ में बेहद खूबसूरत एक गुलदस्ता। ऊपर पहुँचकर जब वह मुड़ी तो नवीन ने अंदाजा लगाया—यह नवविवाहिता है।

अच्छा लगने के बावजूद नवीन को उसमें कहीं कुछ खटक रहा था। उसने पतली कीलनुमा ऊँची एड़ी की सेंडिल पहन रखी थी। इसकी वजह से उसे चलने में भी असुविधा हो रही थी। बार-बार उसकी साड़ी भी उसमें फँस-फँस जा रही थी। बड़े-बड़े फूलों के प्रिंटवाली हलके आसमानी रंग की साड़ी। एक बड़ा फूल उसके नितंबों पर था, जो ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ कदमताल कर रहा था, लेकिन उस कील की वजह से लय बिगड़ रही थी।

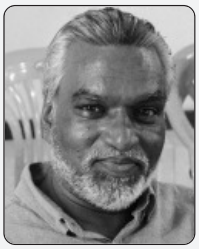

सुपरिचित साहित्यकार। कविताएँ, कहानी, व्यंग्य लेखन बच्चों के लिए साहित्य निर्माण, संपादन तथा समीक्षा में गहरी रुचि। रूमटूरीड से पाँच बाल कविता पोस्टर, फिल्प बुक तथा अन्य किताबें प्रकाशित। एक कविता-संग्रह 'वह, जो शेष है···' प्रकाशित।

नवीन का मन हुआ, उसे रोककर कहे, 'आप बहुत सुंदर हैं। अच्छा होता कि इस समय ये कीलनुमा एड़ी की सेंडिल न पहनी होतीं।' पर वह क्या सोचेगी। कहीं कुछ उलटा-सुलटा बोलने लगी तो बेकार में मिट्टी पलीद हो जाएगी। लेकिन अगले ही पल उसने तय किया, वह बोलकर ही रहेगा। चाहे जो हो जाए।

तेज कदमों से वह उससे थोड़ा आगे निकला। बराबर में आने पर, एक क्षण को ठिठका और मन की बात कह दी। नवयुवती ने अचकचाकर उसे देखा। वह ठिठककर रह गई थी। नवीन उसकी प्रतिक्रिया का इंतजार किए बगैर तेज कदमों से ओवरब्रिज की ढलान पर उतर गया।

उसकी ट्रेन आने में अभी समय था। वह बुक-स्टाल पर पत्रिकाएँ पलटने लगा।

''धन्यवाद···'' अचानक उसके कानों में एक सुरीली आवाज गूँजी। चौंककर देखा। वही युवती उसके पीछे खड़ी थी।

''धन्यवाद, आपके इस फीडबैक के लिए।'' वह कह रही थी।

नवीन झेंप सा गया था। जब तक कुछ कहता, वह आगे बढ़ गई। वह खड़ा रह गया।

भोपाल एक्सप्रेस प्लेटफॉर्म पर आ चुकी थी। सवारियाँ उतरने-चढ़ने लगीं।

उसने देखा—युवती एक नवयुवक की बाँह में अपनी बाँह डाले सधे कदमों से लौट रही थी। गुलदस्ता अब युवक के हाथों में था। चलते-चलते युवती ने एक नजर बुक-स्टाल की ओर देखा और उसकी ओर मुसकराई। उसकी प्रतिक्रिया ने नवीन में जैसे एक नई ऊर्जा का संचार कर दिया था। उसे महसूस हुआ जैसे वह कह रही हो—सही बात कहने का कायदा और साहस होना चाहिए। बाकी सारी परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं।

टीचर्स ऑफ इंडिया पोर्टल, अजीम प्रेमजी युनिवर्सिटी पीई
एस कैंपस होसूर रोड, इलेक्ट्रॉनिक सिटी
बेंगलुरु-५६०१००
दूरभाष : ०९७३१७८८४४६

लघुकथा

जीवित मृत

● महेश दर्पण

उस शहर के लोग चाहे जो करते, उन्हें लगता कि उसमें उन्हें मजा ही नहीं आ रहा। जिंदगी के साथ तरह-तरह के प्रयोग करते-करते दरअसल, अब वे खुद से भी खासे ऊब चुके थे। आखिरकार, धीरे-धीरे उन्होंने बोरियत दूर करने का एक तरीका सीख ही लिया। वे जब कभी बोर होते, फेसबुक खोल धूनी रमाकर बैठ जाते।

शुरू-शुरू में तो वे कुछ देर के लिए ही फेसबुक खोलते, लेकिन फिर काफी देर तक खोले रहने लगे। इस तरह, धीरे-धीरे फिर यह उनकी आदत का एक हिस्सा ही बनता चला गया। अब वे पूरे इत्मीनान से एक ऐसी दुनिया में खोए रहते, जो उन्हें असल दुनिया की मुसीबतों से परिचित कराते हुए भी उनसे दूर करती चली जाती।

वे जब कभी खुश होते तो फेसबुक पर जाहिर करते। जब भी दु:खी होते तो उसी पर टाँक देते। किसी को प्यार करना होता तो वे फेसबुक पर करते और अगर कभी किसी पर भड़ास निकालनी होती, तो फेसबुक पर ही जो चाहे लिख मारते।

अब वे अलग ही तरह से जीना सीख चुके थे, क्योंकि वे फेसबुक के थे और वह उनका। उन्हें अपनी दुनिया पहले के मुकाबले अब कहीं ज्यादा बड़ी लगने लगी थी। उन्हें लगता, अब कोई भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। धीरे-धीरे उन्हें लगने लगा कि अब वे अमर हो गए हैं। और जब अमर हो ही गए तो फिर डरना कैसा?

लेकिन तभी, एक दिन अचानक गजब हो गया। यह दिन उनकी जिंदगी का सबसे खराब और डरावना दिन था। उनका फेसबुक इंटरनेट फैल्योर की वजह से खुल न सका। बस यही क्षण था, जब उनकी अमरता जाती रही। अब वे खुद को मरा हुआ ही समझ रहे थे, जबकि उनकी साँस बाकायदा चलती नजर आ रही थी।

लाइक

उस दिन उसका बर्थ-डे था। उसे पूरी उम्मीद थी कि आज शाम उसका हबि ठीक समय पर घर जरूर पहुँच जाएगा। लेकिन वह उम्मीद ही क्या जो टूटे नहीं। हबि कहीं बिजी हो गया और उसने उसे थोड़ा इंतजार करने को कह दिया।

वह बेसब्री से उसके इंतजार में बैठकर अपने फ्रेंड्स के मैसेज पढ़ने लगी। लेकिन जब इंतजार बरदाश्त से बाहर हो चला तो उसने फेसबुक खोला और उसमें अपनी आत्महत्या की खबर प्रसारित कर डाली।

देखते-देखते कुछ ही देर में हजारों लाइक आ गए। वह हैरान और खुश एक साथ थी। इतने लाइक तो कभी उसे जीते-जी भी कभी हासिल न हुए थे।

सुपरिचित कथाकार। हिंदी कहानी के अध्येता और पत्रकार। अब तक सात कहानी संग्रह, दो लघुकथा संग्रह, एक यात्रा-वृत्तांत, एक आलोचना, एक जीवनी, पाँच बाल और नवसाक्षर पुस्तकें प्रकाशित। 'बीसवीं शताब्दी की हिंदी कहानियाँ' के अतिरिक्त दस पुस्तकों का संपादन और दो विदेशी पुस्तकों का अनुवाद। 'गणेशशंकर विद्यार्थी सम्मान' सहित कई सम्मान-पुरस्कार।

सब्स्टीट्यूट

उसका छोटा बेटा अकेले में मोबाइल पर हरदम जाने क्या करता रहता था। वह सोचना शुरू करता और फिर सोचता ही रह जाता। हारकर एक दिन उसने अपनी पत्नी से जानना चाहा, ''क्या तुम जानती हो, यह आजकल किस फेर में पड़ा रहता है?''

''अरे भई, मैं यह कैसे बता सकती हूँ। जैसे तुम देख रहे हो, मैं भी देख ही तो रही हूँ।'' पत्नी ने टका सा जवाब दे दिया।

उसने बेटे से पूछा, ''ये क्या लगा रहता है भई तू हर वक्त, आजकल मोबाइल के साथ?'

''पापा, आपके पास तो कभी टाइम होता नहीं। मैंने मोबाइल नेट से कनेक्ट कर लिया है। जिन चीजों के बारे में जानना चाहता हूँ, इसी से जान लेता हूँ।''

सॉरी

सड़क पर दो लोग आमने-सामने से आ रहे थे, लेकिन अपने आप में इस कदर मशगूल कि किसी दूसरे के बारे में सोचने की तो जैसे फुरसत ही न हो। एक अपने मोबाइल पर आया कोई एस.एम.एस. देखने में बिजी था तो दूसरा यह जानने की कोशिश में था कि आखिर अभी-अभी आया मिसकॉल है किसका। वे दोनों इस कदर करीब आ चुके थे कि किसी भी वक्त टकरा सकते थे। ठीक इसी वक्त पास से गुजरते एक बच्चे ने उन्हें देख लिया। उसके मुँह से निकल पड़ा, ''अंकल, सामने तो देखिए!''

दोनों ने पास से आती आवाज की तरफ तो देखा, लेकिन सामने देखना वे भूल ही गए और आपस में टकराकर एक-दूसरे को सॉरी कहने लगे। बच्चा उन्हें ऐसा करते देख हँसने लगा।

सी-३/५१, सादतपुर, दिल्ली-११००९०
दूरभाष : ९०१३२६६०५७

नोटबंदी

● अशोक गुजराती

सुपरिचित लेखक। 'तुम क्या जानो', 'व्यंग्य के रंग', 'अंगुलीहीन हथेली', 'सौर जगत् का एक बंजारा', 'जंगल में चुनाव', 'विज्ञान : हँसते-हँसाते', 'कालू का कमाल', 'लालची भालू', 'खुशी के दीये' आदि कृतियाँ चर्चित और पत्र-पत्रिकाओं में ४५० से ज्यादा रचनाएँ प्रकाशित। कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत।

अफसोस

वे बुजुर्ग हैं। कतार में लगकर न पुराने नोट बदलवा सकते हैं, न जमा करा सकते हैं और न ही अपने अकाउंट से निकालने का साहस कर सकते हैं। पता चला कि कुछ स्थानों पर निषिद्ध मुद्रा स्वीकार रहे हैं। उनको बिजली का बिल भरना था। इसमें काफी नोट निकल सकते थे। उनके पास थे ही कितने, सिर्फ पच्चीस हजार! उनमें से भी बाईस तो उनकी पत्नी के खजाने से निकले थे।

हर महीने तीन हजार पाँच सौ से चार हजार तक आनेवाला उनका बिल इस बार केवल एक हजार सत्तर रुपए आया था; यानी मात्र हजार रुपए ही खप पाएँगे। वे अफसोस प्रकट कर रहे थे कि काश बिल ज्यादा आता!

वैन का पीछा

कमलेशजी घूमते-फिरते डेबिट कार्ड जेब में रखकर वहाँ पहुँचे, जहाँ कई बैंकों के ए.टी.एम. थे। देखा कि एक बैंक के ए.टी.एम. के सामने कोई भी नहीं है। शायद ए.टी.एम. काम नहीं कर रहा होगा या कैश नहीं होगा। वे कौतूहलवश उसके भीतर घुसे।

तभी दो-तीन युवक भागते हुए वहाँ आए। वे चौंककर पलटे। अपनी साँस को काबू करते हुए पहले पहुँचा युवक बोला, 'चालू हो रहा है··· यह ए.टी.एम.··· हम दो किलोमीटर से कैश वैन का पीछा करते आ रहे हैं कि यह कहाँ पैसे जमा कराने जा रहा है···'

खुशी की बात कमलेशजी का नंबर पहला था और उन्हें दो हजार का नया नोट बिना किसी मशक्कत के प्राप्त हो गया।

दही-छाछ की खरीद

उन्होंने अपने समूचे जीवन में कभी कोई बेईमानी नहीं की। उस दिन वे दही-छाछ खरीदने एक दुकान पर पहुँचे। पूछा, 'भैया, पुराना पाँच सौ का नोट चलेगा?'

दुकानदार ने साफ मना कर दिया। उन्होंने बचे हुए चंद सौ के नोटों में से विवश होकर उसे एक नोट दिया।

दही-छाछ की कुल कीमत हुई थी उनतालीस रुपए। दुकानदार ने पहले एक पचास का नोट दिया, फिर एक रुपया और अंत में दे दिया फिर पचास का नोट। उनके ध्यान में यह आ गया। वे चुप रहे। सौ के बदले एक सौ एक लेकर लौटते हुए उन्हें अपनी पारदर्शी आत्मा पर अविवेक का परदा डालते हुए कष्ट तो बहुत हुआ, पर उन्होंने चलन के नोट मिलने पर खामोश रहना ही बेहतर समझा।

बैंक में हिजड़े

बैंक के सामने लंबी-लंबी तीन लाइनें लगी थीं। लोग बेचैन थे कि उनका नंबर पता नहीं कब आएगा। तभी दो हिजड़े आए, वे सीधे द्वार पर खड़े पुलिसवाले के करीब पहुँचकर तालियाँ बजाते हुए बैंक के भीतर घुस गए। लोग शोर मचाते रह गए, वे तो अंदर जा चुके थे।

बैंक के काउंटर भी ग्राहकों से घिरे पड़े थे। जमा करनेवालों, पैसे निकालने वालों और नोट बदलने वालों की प्रत्येक पंक्ति में दस-बारह लोग होंगे ही होंगे। दोनों हिजड़े उनके बीच से होते हुए निकासी की खिड़की पर सबसे आगे जा खड़े हुए। पीछे के एक युवक ने फौरन टोका, 'लाइन में लगो, वहाँ कहाँ जा रहे हो?'

साड़ी पहने दोनों हिजड़ों में से एक, जो लगभग पाँच फीट आठ इंच की ऊँचाई, गौरवर्ण, सुदृढ काया और सुंदर स्त्रियों को मात करता व्यक्तित्व लिये था, तुरंत पलटा। दोनों हाथों से तालियाँ पीटता मटकता हुआ मुँहफट हुआ, 'यहाँ आजा मेरे पास जानी, तेरे को बताती हूँ कि मैं यहाँ क्यों आ गई?'

युवक बगलें झाँकने लगा तो अन्य भी सब मौन! हिजड़ों ने अपने नोट सँभाले, जो कैशियर ने भी फटाफट देने में ही अपनी भलाई समझी और निकल भी गए। लाइन के अंतिम छोर से एक हताश आवाज आई, 'काश! मैं भी हिजड़ा होता!'

उसके नजदीक खड़े एक वृद्ध भारी गंभीर स्वर में बोले, 'बेटे! ऐसा सोचना भी मत। उनकी बदकिस्मती का खयाल कर। वे न मर्द हैं न औरत···कुदरत ने उनके साथ यह नाइंसाफी की है। क्या हुआ जो वे अनुशासन तोड़कर आगे चले गए। आखिर भाग्य ने भी तो उनको नियम तोड़कर बनाया है।'

बी-४०, एफ-१, दिलशाद कॉलोनी,
दिल्ली-११००९५
दूरभाष : ९९७१७४४१६४

आलेख

समकालीन हिंदी लघुकथा : पारिवारिक संदर्भ

● अशोक भाटिया

भारतीय संदर्भ में परिवार व्यक्ति और समाज के मध्य की सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई है। व्यक्ति की शक्तियों को दिशा देनेवाली 'परिवार' नामक संस्था जितनी स्वस्थ परंपराओं की संवाहक होगी, उतना ही राष्ट्र प्रगति करेगा। परिवारों की वर्तमान स्थिति की यथार्थ तस्वीर समकालीन लघुकथा में देखी जा सकती है।

सुपरिचित साहित्यकार। बाल साहित्य, कविता, लघुकथा, आलोचना की कई पुस्तकें चर्चित। अनेक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित। अंतरराष्ट्रीय लघुकथा गौरव सम्मान, लघुकथा आलोचना शिखर सम्मान (पटना), विशिष्ट हिंदी सेवी सम्मान, पूर्वोत्तर हिंदी अकादमी सम्मान, बलदेव कौशिक स्मृति सम्मान।

दांपत्य संबंध

दांपत्य जीवन परिवार का मूल आधार है। यहीं से परिवार नामक संस्था का ताना-बाना बनना शुरू होता है। समकालीन हिंदी लघुकथा में दांपत्य जीवन पर काफी लिखा गया है। वहाँ विविधता भी है, जरूरी सवाल भी उठाए गए हैं। 'वह चली क्यों गई' (माधव नागदा) लघुकथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री की प्रसिद्ध कहानी 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' का स्मरण करा देती है। पति हर तिमाही-छमाही पत्नी के यहाँ आता, तमाम सुविधाएँ और नोटों की बरसात कर जाता। पर उसे तो केवल पति चाहिए। अगली बार पति आता है, तो पत्नी गरीब नौकर के साथ भाग चुकी होती है। दांपत्य-सुख के बिना दांपत्य निरर्थक है।

इसी पक्ष पर 'उसम' (राजकुमार गौतम) असफल दांपत्य की कथा गद्य-गीत की तरह लिखती है। यह लघुकथा कहती है कि समझौतों का आडंबर झेलने की एक सीमा होती है। असहमतियों और असंबंधों की बढ़ती खाई के बीच नायक फोन पर पत्नी की बात सुनकर गलती से उसका 'स्वीकार' भाव मान लेता है, लेकिन घर लौटने पर वही ढाक के तीन पात, वही की वही। न दिन के काम की, न रात के' ही पाता है।

कहीं दांपत्य में पुरुष का अहं तो आड़े नहीं आता? दीपक मशाल की लघुकथा 'अहम्' तो यही कहती है। स्त्री के संदर्भ में पुरुष की मानसिकता अभी बदली नहीं है। एक डॉक्टर अपनी शादी के पंजीकरण के लिए पालिका के क्लर्क से मुखातिब है। पत्नी अधिक पढ़ी-लिखी है। क्लर्क का कथन है, 'क्या यह ठीक लगेगा कि पत्नी पति से ज्यादा पढ़ी-लिखी हो? आप कहें तो उनको इंटरमीडिएट पास लिख दूँ?' क्लर्क भी तो पुरुष ही है। यह सुनकर डॉक्टर का 'पुरुष' भी जाग जाता है, 'चाहे जो लिख दो यार, सँभालना उन्हें चौका ही है।'

जब पति और पत्नी सकारात्मक सोच के साथ चलते हैं, तो घर का परिदृश्य ही बदल जाता है। 'बेर' (योगेंद्र दवे) में अधेड़ दंपती पार्क में घूमता हुआ बेर पर अटक जाता है। पत्नी को जवानी में बेर बहुत पसंद थे। वर्तमान के खुरदुरेपन में मखमली अतीत पसर जाता है। खाँसी, डर—सबकुछ के बावजूद पति बाहर खड़े ठेले से बेर ले आता है। 'उस रात निश्छल आकाश में चाँद पूर्ण आशा के साथ उगा था।' इसी प्रकार 'रूपांतरण' (उमेश महादोशी) में आपसी झगड़ा दूर करने के लिए पत्नी द्वारा विवेकपूर्ण निर्णय घर के परिवेश को चार चाँद लगा देता है। 'प्यार' (वीरेंद्र कुमार भारद्वाज) बताता है कि दांपत्य में प्यार का मजबूत धागा हर झगड़े पर भारी पड़ता है। रिश्ता खत्म करने की बात, पत्नी का जाकर रेलगाड़ी में बैठना, पति द्वारा टिकट और कंबल देते हुए हिदायत देना, पत्नी द्वारा क्रोध दिखाना, पर साथ ही दवा खाने की हिदायत देना, पति का घर आकर रोना, पीछे से स्वप्न की भाँति पत्नी का आ खड़ा होना, फिर दोनों का आलिंगन और रुदन—एक खूबसूरत बुनावटवाली रचना की खूबसूरत परिणति पाठक पर गहरा असर करती है। इस विषय पर अशोक वर्मा की 'यही घर है' केवल संवादों में लिखी सुंदर लघुकथा है। छोटी-छोटी बातों पर पति-पत्नी की खींचतान, फिर एक-दूसरे का खयाल करना मध्यवर्गीय घर की सच्ची दास्तान है। कमल चोपड़ा की 'तोहरा खातिर' में शहर आ चुकी पत्नी एक बार अपने पैसों से कैटरीना जैसी ड्रेस ले आती है। रामबिरिछ उसे रोज 'हाय कैटरीना' कहा करता था। ड्रेस देख पहले उसमें क्रोध और फिर प्यार उमड़ता है, 'देख, ई कपड़ा पहन के बाहर मत जई है। सिर्फ रात के पहन के सिर्फ हमरा के कैटरीना बन के दिखइयो।' दांपत्य में चाहे झगड़ा हो जाए, लेकिन बाहर से किसी के आने पर विनम्रता और साहचर्य का मुखौटा तुरंत लग जाता है, 'मुखौटे' (प्रेम गुप्ता मानी) इस सत्य पर मुहर लगाती है।

दांपत्य संबंधों में लगाव और रीति-रिवाज दोनों का खामियाजा स्त्री को भुगतना पड़ता है। पुरुषप्रधान समाज का ऐसा दुष्प्रभाव दिखानेवाली लघुकथाओं में पहली है युगल की 'औरत'। औरत को सुरक्षा और सहारा ही तो चाहिए। यहाँ स्त्री पहले दरिंदे पति का सिंदूर पोंछकर नए के साथ बैठ जाती है। फिर पहले पति के आने पर दूसरा उसे मार देता है। लेकिन स्त्री का लगाव देखिए, 'हाय! यह तूने क्या कर दिया। यह तो

मेरा ब्याहता था।' मर्द उसे अपने साथ घसीटकर ले जा रहा था, 'औरत रोती जाती थी। उसका एक ब्याहता आगे था और एक पीछे, जिस ओर वह बार-बार देख रही थी।'

दांपत्य संबंधों का एक और आयाम सिमर सदोश की 'चादर' लघुकथा में उजागर हुआ है। पंजाब में जट्ट समाज की प्रथा है कि एक जवान भाई की मृत्यु होने पर दूसरा पहले की पत्नी को चादर डालकर अपनी पत्नी बना लेता है। इस रचना में मृतक भाई गुरदेवा की पत्नी निंजो भी तारे की पत्नी हो जाती है। निंजो के न मानने पर तारा नंगी तलवार लेकर आता है, 'मैंने भाई की इज्जत भी बाहर नहीं जाने देनी और न यह जमीन बँटने देनी है। मुकदमे भी मैंने जरूर लड़ने हैं···अब दो रास्ते बचते हैं, इस घर के लिए भी और तेरे लिए भी···या तो चुपचाप मासी की बात मान ले, या फिर मैं तेरी गरदन काटकर यहीं गाड़ दूँगा।'

'सुपरस्टार' (मार्टिन जॉन) लघुकथा इस सत्य पर आधारित है कि पुरुष के मानदंड स्त्री के संदर्भ में आज भी आदिम हैं। सुपरस्टार रौशन कुमार की फिल्म के प्रीमियर शो में उसका अभिनेत्री के साथ हॉट सीन आता है। इसे उसकी अभिनेत्री पत्नी 'रील लाइफ' मानकर स्वयं को समझा लेती है। पति पर गर्व करती है। लेकिन पत्नी की मूवी का हॉट सीन वह हजम नहीं कर पाता, ''डोंट फोर्गेट डार्लिंग, यू आर मैरिड एंड एक बच्चे की माँ भी हो।' तब उसके मॉडर्न चेहरे पर एक आदिम चेहरा चस्पाँ हो गया।

युगल की 'डूबते लोग' अति निर्धनता में चुप्पी और चीत्कार की अद्‌भुत रचना है। भूख और गरीबी किस तरह आदमी की नैतिकता और संवेदना को निगल जाती है, इसे यह सजगता से रूपायित करती है। पति की सहमति से पत्नी द्वारा शरीर बेचने को विवश होना—मूल्यचेता दंपती द्वारा विवशता में नैतिक मूल्य छोड़ने की त्रासदी है यह रचना। दांपत्य संबंधों का यह भयावह यथार्थ है।

दांपत्य में बेहतर बदलाव को उभारने का काम हिंदी लघुकथा में खूब हुआ है। इनमें स्त्री के सजग-सुदृढ पक्ष को सामने लाया गया है। सतीश दुबे की 'पासा' में पत्नी द्वारा घर-पड़ोस की हर बात कहने-पूछने पर पति 'हाँ-हूँ' कर उसकी बातों को उपेक्षित करता है। तब पत्नी कहती है, 'तुम्हारी क्लासफेलो कुमुद आई थी।' अब पति चहककर उस बारे में कई बातें पूछता है। इस पर पत्नी का 'कांता-सम्मत' उत्तर है, 'मैंने यह सब उससे पूछा था, किंतु वह हाँ-हूँ करती रही।'

बलराम की 'बहू का सवाल' लघुकथा पितृ सत्तात्मक मानसिकता के विद्रूप को उद्‌घाटित करती है। रम्मू काका को चिंता है कि उनके पुत्र को संतान नहीं हो रही। वे अपने बेटे की दूसरी शादी करने का विचार करते हैं। तभी उनकी बहू सच्ची बात उगल देती है, 'कमी मेरी कोख में नहीं, आपके बबुआ के शरीर में है। मैं माँ तो बन सकती हूँ, वे बाप नहीं बन सकते; और अब यह जानने के बाद क्या आप मुझे दूसरी शादी करने की अनुमति दे सकते हैं?' इसी प्रकार अशोक गुजराती की 'अंदाज नया' में साठ पार पति अपनी बीमार पत्नी की सेवा करते हुए एक दिन अपना दूसरा विवाह कर लेने का प्रस्ताव रखते हैं, 'वह हमसे जवान होगी, तुम्हारा पूरा खयाल रखेगी और मेरा भी।' पत्नी पति से यह कहलवाकर कि मर्द अधिक सक्षम होता है, कहती है, 'मैं ही दूसरी शादी कर लेती हूँ, वह मुझे भी अच्छे से सँभाल लेगा, आपको भी···।'

पूरन सिंह की लघुकथा 'मैं जानती हूँ तुम्हारा यथार्थ' में यह सच उभारा गया है कि पुरुष को प्रेमिका तो इक्कीसवीं सदी की चाहिए, पर पत्नी अठारहवीं सदी की। विशाल को शादी से पहले खुले विचारोंवाली लड़की चाहिए थी, पर शादी के बाद पहले सुहासिनी की नौकरी छुड़वाना, फिर तेज न बोलने, मिनी और बैकलेस ब्लाउज न पहनने की बात करना, यानी उसका पुरुष जाग जाता है। सुहासिनी प्रश्न करती है, 'तुम मेरी खुशी के लिए क्या छोड़ सकते हो?' प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है।

सीमा जैन की 'दूसरा रूप' में भी पत्नी की दृढ़ता उसकी वाक्-शक्ति द्वारा सामने आती है। बस में पति द्वारा साथ में लड़की को बिठाने को उपेक्षित कर पत्नी एक दिव्यांग को बिठा लेती है। पति ही सब निर्णय करे, पत्नी बस चुप रहे, यह बात पत्नी को स्वीकार नहीं। पति कुतर्कों को कटता देख हाथ उठाने लगता है, तो वह हाथ रोकते हुए कह उठती है, 'घर और बाहर तुम्हारे दो रूप हैं। जिस दिन मैंने अपना दूसरा रूप दिखा दिया, उस दिन तुमको समझ आ जाएगा कि सहायता की जरूरत किसे ज्यादा है।'

वृद्धावस्था और विवशता-बोध

वृद्धावस्था में दांपत्य की परेशानियाँ और लगाव की जुगलबंदी रहती है। भगीरथ की 'सोते वक्त' में वृद्ध दंपती रजाई, अँगीठी, मौन, सर्दी, दवा, खाँसी आदि के मध्य विचरण करते हैं। खीझ, व्यंग्य और परिहास के मध्य दोनों का बुढ़ापा तैरता रहता है—कभी मौन, तो कभी संवादों के साथ। लेकिन जीवन-साथी के चले जाने पर यह लगाव या स्मृतियों में या वस्तुओं के माध्यम से व्यक्त होता है। बलराम अग्रवाल की 'लगाव' ऐसी ही रचना है। अम्माजी के जाने पर बाबूजी उसकी मसनद को स्टोर से निकालकर अपने पलंग पर दीवार के साथ टिका देते हैं। एक दिन बहू देखती है, 'सिरहाने से पीठ लगाए बाबूजी पलंग पर बैठे हैं। मसनद उनकी गोद में रखी है। उनकी आँखें मुँदी हैं और आँसुओं की अविरल धारा उनसे बह रही है।' बलराम अग्रवाल की ही लघुकथा 'मन अनंत में' भी इसी कथ्य को खूबसूरती से उभारती है। सूर्यकांत नागर की 'फल' वृद्धा की उपेक्षा की व्यथा-कथा है। इसमें यात्रा के दौरान नन्हा पिता से पहले अंगूर माँगता है, फिर संतरे। संतरे भी बेटा अपनी बूढ़ी माँ से छुट्टे माँगकर खरीदता है। पेट भर जाने पर पोता दादी को नहीं, पिता को संतरे देता है। पिता के मना करने पर दादी का यह वाक्य सबके कथनों और कर्मों पर भारी पड़ता है, 'आज दे रहा है तो ले ले बेटा, पता नहीं कल कैसा फल मिले।' 'फल' की व्यंजना वृद्धा के पुत्र का व्यक्तित्व तार-तार कर देती है।

माता-पिता और बच्चे

पति, पत्नी और बच्चों का त्रिकोण पारिवारिक संबंधों के कई कोण बनाता है। रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु' की लघुकथा 'ऊँचाई' और

'कमीज' क्रमशः पिता और पुत्र की बेहतर सोच को उभारती हैं। पुत्र व पुत्रवधू पिताजी के आने को लेकर आशंकित हैं कि कुछ माँगने आ रहे हैं। लेकिन पिता की सोच व चिंता की ऊँचाई का भान उनके दो संवादों से हो जाता है—'तीन महीने से तुम्हारी कोई चिट्ठी तक नहीं मिली। जब तुम परेशान होते हो, तभी ऐसा करते हो।' फिर पुत्र को एक हजार रुपए देते हुए कहते हैं, 'तुम बहुत कमजोर लग रहे हो। ढंग से खाया-पिया करो। बहू का भी ध्यान रखो।' पुत्र की आँखें शर्म से झुक जाती हैं। 'हिमांशु' की ही 'कमीज' लघुकथा में अभावग्रस्त पिता के स्वर की तल्खी तब गायब हो जाती है, जब पता चलता है कि बेटा सेल से उनके लिए एक शर्ट ले आया है। यही आनंद युगल की रचना 'पिता का आनंद' में अनुभव किया जा सकता है।

संतान बड़ों के लिए पुनर्नवा होती है। योगेंद्र दवे की 'दादी फास्ट' लघुकथा में अवि अपनी दादी को अपने पीछे दौड़ा लेता है पकड़ने के लिए। वह भागती हुई भी उसे बचकर भागने की हिदायत देती जाती है। 'यह तय करना मुश्किल था कि दादी अपने पोते की सुरक्षा के लिए दौड़ लगा रही थी या अपनी खुशी के लिए।'

माता-पिता की प्रेरणा बच्चों में सकारात्मक सोच के मूल्य भरती है। शिवनारायण की 'जहर के खिलाफ' रचना अँधेरे में उजाला भरने का काम करती है। परीक्षा में फेल होने पर प्रभात द्वारा आत्महत्या की सोच पिता के तर्क से आत्मविश्वास में बदल जाती है। वे समझाते हैं कि परीक्षाएँ पास कर-करके तुम यदि किसी बड़े ओहदे पर पहुँच जाओ तो तब अपनी जीवनी में यह फेल हो जानेवाली घटना की चर्चा किस रूप में करोगे। सुनकर प्रभात की आँखें अनंत विस्तार पा जाती हैं। इसी प्रकार शील कौशिक की लघुकथा 'कभी भी कुछ भी' में बेटा बेकार कंपनी छोड़कर अपना काम शुरू करने में संकोच करता है। लेकिन पिता द्वारा उसके बचपन की एक उत्साहवर्धक घटना का स्मरण कराने पर पुत्र आत्मविश्वास से भर उठता है।

पिता को कई बार अपने लिए कटु निर्णय भी लेने पड़ते हैं। श्याम सुंदर दीप्ति की लघुकथा 'दिन-रात का पार्क' मजबूत फैसले की ऐसी ही रचना है। कनडा जाकर बस गए बेटे ने कभी पिता की सुध नहीं ली। पिता बुढ़ापे का सहारा खोजना चाहता है तो बेटा फोन पर बदतमीजी से बात करता है। पिता का दृढ उत्तर है, 'मैंने बहुत जी लिया बेटे तेरे लिए। सुन रहा है! अब मैंने तेरे लिए मरना नहीं। समझा! और बाकी ध्यान से सुन कि मैंने तुझे कहा भी नहीं कि मैं तेरे लिए माँ ला रहा हूँ।'

माँ की मौत पर आए छोटे बेटे का फोन वापसी में घर पर रह जाता है। पिता की उँगली 'रेकॉर्डेड वायस बॉक्स स्विच' पर दबने पर एक संवाद सुनिए, 'सुनो बड़े भैया, माँ नहीं रहीं। इंडिया चल रहे हो न?' 'चल छोटू एक एग्रीमेंट करते हैं। माँ की डेथ पर इस बार तू चला जा। पापा की डेथ पर यू नो, वह तो होनी ही है, मैं चला जाऊँगा। प्रोमिज (दबी सी हँसी)।' 'ओ.के. डन।' यह रचना पंजाबी कथाकार वरियाम सिंह की कहानी 'अपना-अपना हिस्सा' की याद करा देती है। इसके ठीक विपरीत 'हिसाब-किताब' (शील कौशिक) में बहू चाहती है कि उसकी बूढ़ी-बीमार सास बनी रहे। सेवा की आड़ में आ रही पेंशन उसके लिए मुख्य आकर्षण है।

संवेदनहीनता का फैलता रेगिस्तान

पूँजीवादी समाज में पारिवारिक संबंधों को धन-संपत्ति का घुन बेतरह खाए जा रहा है। प्रस्तरीकृत होते संबंधों के चलते माता-पिता की भावनाओं का संतान के द्वारा दोहन आश्चर्य का विषय नहीं रहा। इस विषय पर कुछ स्मरणीय लघुकथाएँ मिलती हैं। 'दुःख के दिन' (बलराम अग्रवाल) वास्तव में माँ के अंतहीन दुःख की अंतहीन व्यथा-कथा है। जब भी विधवा माँ के तीनों बेटे बँटवारे के लिए इकट्ठे होते हैं, उसे अपना भयावह भविष्य दीखने लगता है और वह बाहर नहर-किनारे आकर रोने लगती है। रचना का पहला वाक्य ही पाठक को बाँध लेता और बेध देता है, 'बाकी बची माँ, सो चार-चार महीने वह बारी-बारी से सबके साथ रह लेगी।' हर बार की तरह बड़ा बेटा बँटवारे से बचाकर नहर-किनारे से माँ को ले आता है। हर बार माँ बच्चों को गले लगा लेती है, लेकिन प्रश्न है, यह सब कब तक?

'गुठलियाँ' (सुकेश साहनी) में बेटा माँ को गाँव लाकर एक दिन तो उसकी सेवा-टहल करता है, लेकिन अगले दिन एक महीने के लिए पत्नी के साथ एल.टी.सी. यात्रा पर निकल जाता है। माँ को महीने भर के लिए घर सँभालने को छोड़ जाता है। माँ का जीवन पहले लड़की के नाते, फिर माँ के नाते सदा उपेक्षित रहा। 'उसके हिस्से फल नहीं, सदा गुठलियाँ ही आईं' लघुकथा यह संकेत करती है।

अब तो बेटियाँ भी इस काम में पीछे नहीं रहीं। 'आचार-संहिता' (विकेश निझावन) में बेटी ने माँ के इस्तेमाल में स्वार्थ, संवेदनहीनता और व्यवहार-कुशलता के मानो नए आयाम स्थापित कर दिए हैं। इस रचना में बेटी का व्यवहार बताता है कि सभ्यता और संस्कृति, आदर और लगाव बस शब्दों तक सीमित हो गए हैं। पहले बेटी सोचती है, माँ की जिम्मेदारी बनती है पालना और शिक्षित करना। बेटी विदेश जा टिकी, वहीं शादी कर ली। बच्चा तीन महीने का हुआ, तो माँ को बुला लिया, क्योंकि अब दफ्तर जाना है। जब स्कूल में एडमिशन हुआ तो वापसी का रास्ता दिखा दिया। विनम्रता और तर्क की चाशनी में लिपटी इस रचना के दो संवाद देखिए, 'माँ, क्या तुम्हारा अपने नाती से मिलने को मन नहीं करता? तुम चली आओ माँ। टिकट मैं भिजवा दूँगी।' और विदेश पहुँचते ही, 'वही घिसी-पिटी सलवार-कमीज और दोशाला ओढ़कर चली आईं। तुम्हें इन कपड़ों में देख तुम्हारा दामाद क्या सोचेगा?' 'बाबा को थोड़ा ढंग से रखा करो माँ।' और बाबा के प्ले-वे

में एडमीशन हो जाने के बाद, 'मैं तुम्हें बाँधना नहीं चाहती माँ। तुम जब चाहो, इंडिया वापस जा सकती हो। मैंने डेविड से कह दिया है, वे तुम्हारा टिकट बनवा देंगे।'

'पुण्यकर्म' (श्याम सुंदर अग्रवाल) पतनोन्मुख पारिवारिक मूल्यों की हतप्रभ कर देनेवाली लघुकथा है। पिता का अंत निकट देख बेटा उसे घर ले आता है, संपत्ति अपने नाम करा लेता है। बेटा-बहू न दवा पर, न ही मरने पर खर्चना चाहते हैं। वृद्ध द्वारा अंतिम संस्कार के लिए दिए गए दस हजार रुपए बचाकर लाश को भी मेडिकल कॉलेजवालों को देकर कुछ पैसे लेना चाहते हैं। यह रचना पाठक को बेधने में सक्षम है।

'एग्रीमेंट' (मुरलीधर वैष्णव) में पिता को पुत्रों की ओछी मानसिकता का पता चलने पर लगा झटका उसे आई.सी.यू. में पहुँचा देता है। माँ की मौत पर आए छोटे बेटे का फोन वापसी में घर पर रह जाता है। पिता की उँगली 'रेकॉर्डेड वायस बॉक्स स्विच' पर दबने पर एक संवाद सुनिए, 'सुनो बड़े भैया, माँ नहीं रहीं। इंडिया चल रहे हो न?' 'चल छोटू एक एग्रीमेंट करते हैं। माँ की डेथ पर इस बार तू चला जा। पापा की डेथ पर···यू नो, वह तो होनी ही है, मैं चला जाऊँगा। प्रोमिज (दबी सी हँसी)।' 'ओ.के. डन।' यह रचना पंजाबी कथाकार वरियाम सिंह की कहानी 'अपना-अपना हिस्सा' की याद करा देती है। इसके ठीक विपरीत 'हिसाब-किताब' (शील कौशिक) में बहू चाहती है कि उसकी बूढ़ी-बीमार सास बनी रहे। सेवा की आड़ में आ रही पेंशन उसके लिए मुख्य आकर्षण है।

'उपवास' (ललित नारायण उपाध्याय) में दो बेटे मिलकर भी एक माँ को ढंग से नहीं रख सकते। दोनों पंद्रह-पंद्रह दिन माँ को अपने पास रखते हैं। 'जिस माह में इकतीसवाँ दिन होता था, उस दिन माँ उपवास रखती थी।' कहीं अतिशयता की ओर झुकी यह लघुकथा आज का सच रेखांकित करती नजर आती है।

बूढ़ी माँएँ व्यवहार में छिपी भाषा का अर्थ खूब समझती हैं। 'प्रायवेसी' (अशोक जैन) में बेटे का खुरदरे स्वर में माँ को कहना कि पानी गिलास लेकर पिया करो, बोतल से नहीं; जिस पर बहू द्वारा भी ताल से ताल मिलाना, बेटे का माँ को 'बाय' किए बिना दफ्तर चले जाना, ये सब संकेत हैं। विवश माँ दूसरे बेटे के यहाँ निकल जाती है, ताकि छोटे की प्रायवेसी में दखल न हो। पर छोटा कभी प्रतीक्षारत माँ के पास मिलने नहीं आता।

रामकुमार आत्रेय की दो लघुकथाएँ बदलते पारिवारिक संबंधों के दो कोण हमारे सामने लाती हैं। 'दो कोणोंवाली त्रिभुज' में सास और बहू दोनों को लगता है कि दूसरी मुझे जीने नहीं दे रही है। दोनों रोती हैं। बहू की निगाह में पति माँ का हो गया है तो सास की निगाह में बेटा पत्नी का। इसी तरह 'फरसत' लघुकथा में दो बूढ़ों की व्यथा-कथा कही गई है। एक का बेटा विदेश में है, तो दूसरे का घर की दूसरी मंजिल पर। लेकिन बेटे की सूरत देखे दोनों को ही लंबा समय हो गया है।

सास बनाम बहू

समकालीन हिंदी लघुकथा में सास और बहू के विभिन्न रूप मिलते हैं, जिनमें खट्टे-मीठे अनुभव सँजोए गए हैं। कथाकार प्रेमचंद के शब्दों, 'औरतों की गुलामी सासों के बल पर कायम है।' 'आँख का तिल' (रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु') में सास के मूल्य अपने और बहू के लिए अलग-अलग हैं। वह बहू को कहती है, 'दहेज नहीं लाएगी तो तुझे यहाँ एक घड़ी भी नहीं टिकने दूँगी।' जवाब सास का पति देता है, 'तुम भी दहेज नहीं लाई थीं। फिर भी मेरे साथ पच्चीस साल से सम्मानपूर्वक इस घर में रह रही हो। उमा भी बिना दहेज लाए इस घर में पच्चीस बरस तो रह ही सकती है।' इसके ठीक विपरीत 'क्रूर स्वामिनी' (डॉ. मुक्ता) में क्रूर बहू के समक्ष वृद्ध दंपती विवश हैं। वृद्धा कहती है, 'शालिनी बेटी न बनती, बहू ही बन जाती तो हमें दु:ख न होता।'

'आधुनिका' (कमल कपूर) लघुकथा में आधुनिक बहू अपने तर्कों से सासू के कर्मकांडी आदेश को निरस्त करती है। घर में प्रवेश के समय दहलीज पार करनी थी। बहू के तर्क हैं, 'इस कलश पर श्रीगणेशजी की आकृति बनी है, जो हमारे आदिदेव हैं और इसमें धन का सा धान भरा है, वह भी देवता की तरह है। मैं इन्हें कैसे ठोकर मार सकती हूँ? और इस पानी में वही सिंदूर मिला है, जिसे मैंने अपनी माँग में सजाया है···इसमें कैसे पाँव डालूँ?' यह रचना नई तर्क-सरणि गढ़ने के कारण अलग प्रभाव छोड़ती है।

'बुनियाद' (नीरज सुधांशु) एक नई शुरुआत की लघुकथा है। पति के ताऊ की मौत पर उसके परिवार का दायित्व उठाने को पत्नी तैयार हो जाती है। यहाँ सास-बहू में इस निर्णय को लेकर खुला विमर्श होता है। नए पारिवारिक मूल्य की रचना है यह। 'फाँस' (सीमा जैन) में तीन पीढ़ियों की बहुओं के तीन बिंब हैं, जिनके माध्यम से परिवारों में आ रहे सकारात्मक परिवर्तन को वाणी दी गई है। पहले में बहू के माँ-बाप द्वारा इस घर का पानी पीने पर सास के आजीवन ताने, दूसरे में बहू के माता-पिता द्वारा इस घर में खाना खाना। तीसरे बिंब में सास और बहू का विमर्श दिखाया है। सास भी उदारता का परिचय देती है। बहू के माता-पिता के साथ आदर्श व्यवहार होता है। इन दोनों लघुकथाओं में आदर्श पारिवारिक स्थितियों की प्रकल्पना की गई है। किंतु 'भुलक्कड़' (सीमा सिंह) लघुकथा इनके ठीक विपरीत है। सुबह से शाम तक बहू सबके काम के लिए भागती फिरती है—पूजा की थाली के फूल, टिफिन, निरमा, प्याज के परौंठे···लेकिन सास द्वारा मिला प्रमाण-पत्र देखिए, ''कैसी नालायक बहू मिली है मुझे!''

माँ के आसपास

प्रेमचंद ने 'गोदान' में लिखा है, 'मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् फल है।' हरि मृदुल की लघुकथा 'माँ के आँसू' पाठक की संवेदना को जगाती है। बेटा शहर लौटते समय माँ से विदाई ले रहा है। माँ इतना कभी नहीं रोई। बाद में माँ की मृत्यु हो जाती है। पर कथावाचक का

कहना है कि माँ के आँसुओंवाला उस दिन का गीला रुमाल काफी समय बाद भी उतना ही गीला है। माँ का उस दिन सबसे ज्यादा रोना क्या ध्वनित करता है? क्या मातृत्व का कोई तीसरा नेत्र भी होता है? सुदर्शन रत्नाकर की लघुकथा 'मुक्ति' बताती है कि माँ की कीमत उसके जाने के बाद ही मालूम पड़ती है। उसकी ममता की महक घर में आजीवन मौजूद रहती है। श्याम सुंदर अग्रवाल की लघुकथा 'माँ का कमरा' में बेटा वृद्ध माँ को उसकी आशाओं से बड़ा कमरा और सुविधाएँ प्रदान करता है, तो वह फूली नहीं समाती। अग्रवाल की ही 'राह में पड़ता गाँव' लघुकथा में माँ के प्रति पुत्र की संवेदनहीनता, लापरवाही और उपेक्षा को दिखाया गया है। पवन शर्मा की 'अहमियत' पारिवारिक संबंधों का एक नया कोण उभारती है। छोटा भाई जब भी संयुक्त परिवार में मिलने आता है, बड़ा भाई तनाव में रहता है। उसे अपनी उपेक्षा महसूस होती है। पर एक दिन उसकी यह सोच बर्फ बनकर पिघल जाती है। देरी से घर लौटने पर वह देखता है कि पिताजी और भाई खाने पर उसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सुभाष नीरव की 'कमरा' लघुकथा बुजुर्गों के प्रति दरकती जा रही संवेदना का सुंदर रूपायन करती है। पहले बच्चों की पढ़ाई का तर्क देकर बूढ़े पिता को ऊपर की बरसाती में शिफ्ट कर दिया जाता है। लेकिन अब दूसरा तर्क देकर वह कमरा भी किराए पर चढ़ा दिया जाता है।

परिवार के कुछ और पहलू

परिवार का खुशगवार माहौल घर के सदस्यों का 'तापमान' (योगराज प्रभाकर) ठीक रखता है। दफ्तरी जिंदगी से चिढ़े हुए बाबूजी का मूड पोती की आवाज सुनते ही ठीक होने लगता है, 'अब धीरे-धीरे उनके चेहरे के पीलेपन पर पोती की फ्रॉक का लाल रंग चढ़ना प्रारंभ हो चुका था।' वास्तव में परिवार हृदय में धड़कता रहना चाहिए। चैतन्य त्रिवेदी की लघुकथा 'खुलता बंद घर' पारिवारिक अनुभूतियों की सघनता से निर्मित रचना है। घर के बाहर चाबी गिर जाने पर उसे ढूँढ़ते हुए घर की कुछ चीजें मिलती हैं, जो रचना के उपकरण भी हैं। चूड़ी का टुकड़ा, रिबन की चिंदी आदि के माध्यम से वह घर के सदस्यों की बातचीत का स्मरण करता है। अंतिम पंक्ति है, 'चाबी नहीं मिल रही थी, लेकिन घर खुलता जा रहा था।' रिश्ते संवेदना की तरलता से ही जुड़ते हैं। 'बेटी का हिस्सा' (श्याम सुंदर अग्रवाल) में बूढ़े माता-पिता के जीते जी दोनों बेटे जायदाद बाँट लेते हैं। पर पिता, खासकर बीमार माँ को, कौन रखे? संवेदनहीन प्रस्ताव रखे जाते हैं। इस बीच बेटी आकर अपने माँ-बाप को ले जाती है। रचना की अर्थ-ध्वनियाँ अपने आकार का अतिक्रमण कर पाठक की चेतना में फैल जाती हैं।

संवेदनहीनता वृद्धों ही नहीं, बच्चों के प्रति भी होती है। आनंद की लघुकथा 'विचित्र विधान' में दो विपरीत स्थितियों में भुगतना बच्चे को ही पड़ता है। वह पिता से कहता है, कैसा ये दस्तूर है कि बच्चे के लाख समझाने पर बड़ा न समझे, या फिर बड़े के दो-तीन बार समझाने पर बच्चा न समझे, रोना बच्चे को ही पड़े।'

पंजाब की यह भयंकर त्रासदी है कि लड़के वहाँ की लड़कियों से विवाह कर विदेश जा बसते हैं, फिर वहाँ से बस उनका पत्र या फोन ही आता है। रामकुमार घोटड़ की लघुकथा 'उनके आने के बाद' की नायिका भी सपने सँजोकर रह जाती है, पर बिदेसिया कभी नहीं लौटता।

सामाजिक पक्ष

पारिवारिक लघुकथाओं का सामाजिक पक्ष भी है। घर का बाहर और बाहर का घर की स्थितियों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। मधुदीप की 'हिस्से का दूध' एक अभावग्रस्त परिवार की विवशता को सजगता और संवेदनशीलता के साथ उभारनेवाली रचना है। गिलास में थोड़ा-सा दूध है। वह न मुन्ने और न पति के हिस्से आता है। पत्नी दूध पिए, इससे पहले ही बाहर से किसी परिचित की आवाज आती है। पति पत्नी को चाय बनाने को कह देता है। मधुदीप की ही 'शासन' लघुकथा में परंपरागत पुरुषोचित अहं को दिखाया गया है। पुरुष बाहर गरदन झुकाकर मेले में चाय बेचता है, लेकिन बीमार पत्नी के लिए चाय बनाने में उसका अहं आहत होता है। सुकेश साहनी की 'फॉल्ट' लघुकथा इस तथ्य को उभारती है कि घर-परिवार की अशांति व्यक्ति को दफ्तर और समाज में जाकर भी प्रभावित करती है। लेकिन वापिस आने पर वह बदलता है। सोचता है, 'जिस पहल की उम्मीद वह पत्नी से कर रहा है, उस पर खुद अमल क्यों नहीं करता?' यहाँ से रचना में माहौल बदलता है।

टी.वी. के कार्यक्रमों का परिवार की शांति पर दुष्प्रभाव पड़ रहा है, इस तथ्य को भी हिंदी लघुकथा ने वाणी दी है। माधवा नागदा की 'असर' लघुकथा में तीन साल के पिंटू पर तो टी.वी. की हिंसा और अश्लीलता असर डाल ही रहे हैं, घर का मुखिया भी इससे अछूता नहीं रहा। धर्मपाल साहिल की लघुकथा 'फासला' में टी.वी. आदि से पारिवारिक संबंधों पर पड़ रहे दुष्प्रभावों को व्यक्त किया गया है। पिता बाहर से महीने बाद लौटता है, तो हाथ में खिलौना लिए बेटे की ओर बढ़ता है। पर टी.वी. देख रहा बेटा कहता है, 'एक मिनट रुको पापा, यह सीन खत्म होने दो।'

कई लघुकथाओं में परिवार के मुखिया की बात अनुचित लगने पर बच्चों द्वारा सवाल भी खड़े किए गए हैं। एन. उन्नी की 'शेर' और अशोक भाटिया की 'अंतिम कथा' ऐसी ही रचनाएँ हैं।

आठवें दशक में हिंदी लघुकथाएँ नेता, पुलिस, भूख और गरीबी जैसे विषयों को केंद्र में रखकर लिखी जाती थीं। इधर की लघुकथाओं के केंद्र में परिवार है। इनमें दायित्व-बोध और स्वार्थ के द्वंद्व हैं, दरकते संबंध हैं और उन्हें जोड़ने की कवायद भी है। कई लघुकथाएँ वस्तु के कारण ध्यान खींचने के बावजूद अपनी साहित्यिक-कलात्मक मूल्यवत्ता बनाने में असफल भी लगती हैं। लेकिन जो ऐसी रचनाएँ हैं, वे पाठक की स्मृति में अपना स्थान बनाती दिखाई देती हैं।

१८८२, सेक्टर-१३,
करनाल-१३२००१ (हरियाणा)
दूरभाष : ९४१६१-५२१००

चिरसंगिनी

● रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'

पदचाप सुनकर वह उठ बैठा।

उठकर लैंप जलाया तो उसकी घिग्घी बँध गई, ''क···क···कौन हो तुम? अंदर कै···से आ गए?''

''नहीं पहचानते? लो, ठीक से देखो।'' चारों ने उसकी तरफ अपनी-अपनी पीठ घुमाई। चारों की पीठ में छुरे घोंपे हुए थे। दिगंबर ने छुरे पहचान लिये। ये छुरे उसी ने घोंपे थे। चारों को जीवित देखकर उसको पसीना छूटने लगा।

पहला बोला, ''मैंने तुम्हारा पालन-पोषण किया था। तुम्हें उँगली पकड़कर चलना सिखाया था। तुमने मुझे पिता कहकर पुकारना शुरू कर दिया था। फिर एक दिन मचलकर तुमने मेरी पीठ पर छुरे का प्रहार किया था। मुझे मरा समझकर तुम भाग गए थे।''

दूसरा हँसा, ''मैं तुझे गंदी नाली से उठाकर सभ्य लोगों के बीच ले गया। तुम्हारा सम्मान कराया। सम्मान पाना तुमने जन्मसिद्ध अधिकार समझ लिया। इसके बाद तुमने लोगों का अपमान करने की मुहिम चलाई। मैंने ऐसा करने से रोका। तुमने वही किया जो तुम पहले कर चुके थे।''

दिगंबर का चेहरा स्याह पड़ गया।

तीसरे ने उसकी छोटी-सी गरदन कसकर पकड़ ली। वह गिड़गिड़ाया, ''मुझे छोड़ दो। मैं आपको पहचान गया हूँ। आपने बुरे दिनों में मेरी सहायता की थी। सम्मेलनों में बुलाकर मेरा सम्मान बढ़ाया था। मुझे आपकी उन्नति से ईर्ष्या होने लगी थी। मैंने बेखबर सोए हुए आपको छुरा भोंक दिया था।'' तीसरे ने उसकी गरदन छोड़ दी।

चौथे को मुसकराते देखकर वह कुछ आश्वस्त हुआ, ''लाओ, मैं यह छुरा निकाल दूँ।''

''छुरा निकाल दोगे तो तुम्हारी करतूत कैसे याद रहेगी?''

''मैंने सिर्फ अपने शौक की वजह से आपको छुरा मारा था। मैंने सोचा था, आप मर जाएँगे। लेकिन···।''

''हम चारों पीठ में छुरा भोंके जाने पर भी नहीं मरे, यही न?'' चारों एक साथ बोले।

''मुझे माफ कर दीजिए।'' दिगंबर ने अपना नंगापन छुपाते हुए कहा। सिर ऊपर उठाया तो चारों जा चुके थे।

वह सहम गया।

तभी एक आबनूसी रंग की छाया उभरी। दिगंबर ने डरकर पूछा, ''तुम कौन हो?''

वरिष्ठ साहित्यकार। लघुकथा संग्रह 'असभ्य नगर' प्रकाशित। लघुकथा के अनेक संकलनों तथा विशेषांकों का संपादन। लघुकथा की पहली वेब पत्रिका 'लघुकथा डॉट कॉम' का लंबे समय से संपादन-संचालन।

''डरो नहीं, मैं गैर नहीं हूँ। मैं तुम्हारी चिरसंगिनी कुंठा हूँ। हमेशा तुम्हारे साथ रही हूँ।''

''लेकिन तुम्हारा रंग काला कैसे हो गया?''

''लगता है, तुम भूल गए। मैं एक बार तुम्हारे घर के सामने जल रहे अलाव में गिर पड़ी थी। उस समय मेरा रंग कुछ काला पड़ गया था।''

''किंतु इतना काला रंग!''

''तुम्हारे काले दिल में रहते-रहते मेरा रंग एकदम आबनूसी काला हो गया।''

दिगंबर ने आगे बढ़कर कुंठा को अपने गले से लगा लिया। अब उसके चेहरे पर खुशी की एक लहर सी दौड़ गई।

प्रदूषण

मंदिर के प्रांगण में जागरण का कार्यक्रम था। औरत-मर्द बच्चों को मिलाकर दो सौ की भीड़। कस्बे के दूसरे छोर तक लाउडस्पीकर बिजूखे की तरह टँगे थे। गायक की तीखी आवाज से सिर भन्ना गया था।

वह एकदम बाहरी सड़क पर निकल आया। सूखे ठूँठ के पास कोई गुमसुम सा बैठा था।

''कौन?'' उसने पूछा।

''मैं भगवान् हूँ।'' मरियल सी आवाज आई।

''भगवान् का इस ठूँठ के पास क्या काम? उसे तो किसी मंदिर में होना चाहिए।''

''मैं अब तक वहीं था।'' आकृति ने दुखी स्वर में बताया, ''शोर के कारण कुछ तबीयत गड़बड़ हो गई थी, इसीलिए यहाँ भाग आया हूँ।''

जी-९०२, जे.एम. अरोमा, सेक्टर-७५
नोएडा-२०१३०१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९३२१३७२७४९३

फुरसत

● रामकुमार आत्रेय

दो बूढ़े व्यक्तियों का एक स्थान पर मिलना हुआ। शीघ्र ही एक-दूसरे का परिचय लिया, दिया। परिवार की बात चली तो पहले ने भावविह्वल होते हुए कहा, ''भाई साहब, एक ही बेटा है मेरा। पैसा कमाने के लिए जर्मनी गया हुआ है। वह इतना व्यस्त है कि उसे यहाँ आने की फुरसत ही नहीं मिलती। कहता है, जल्दी लौटने से वहाँ की नागरिकता पाने में कठिनाई आएगी। चार महीने पहले उसकी माँ गुजरी, तब भी वह नहीं आ पाया। मैं तो तरस गया हूँ भाई, बेटे की शक्ल देखने के लिए।'' कहते-कहते वह रो पड़ा था।

''दु:खी मत होवो, भाई। स्थिति लगभग मेरे साथ भी ऐसी ही है। बेटा मेरा भी एक ही है। उसे भी मुझसे मिलने की फुरसत ही नहीं मिलती।'' दूसरे बूढ़े ने पहले को ढाँढ़स बँधाते हुए कहा था।

''किस देश में गया है तुम्हारा बेटा?'' अपनी आँखें पोंछते हुए उसने दूसरे बूढ़े से पूछा था।

''वह यहीं रहता है मेरे पास। फर्क इतना है कि वह ऊपर की मंजिल में रहता है और मैं नीचे। ऊपर से उतरकर सीधे दफ्तर चला जाता है और लौटकर सीधे ऊपर। साल से ऊपर हो गया है मुझे उसकी शक्ल देखे हुए।''

इस बार फूट-फूटकर रोने की बारी उसकी थी।

दो कोणोंवाला त्रिभुज

एक शोधार्थी को गाँव की महिलाओं की सामाजिक स्थिति के विषय में शोध करना था। गली के मुहाने पर स्थित जिस घर के सामने वह पहुँचा, उसके दरवाजे पर एक बुढ़िया बैठी थी। हैरानी की बात यह थी कि वह रोए जा रही थी।

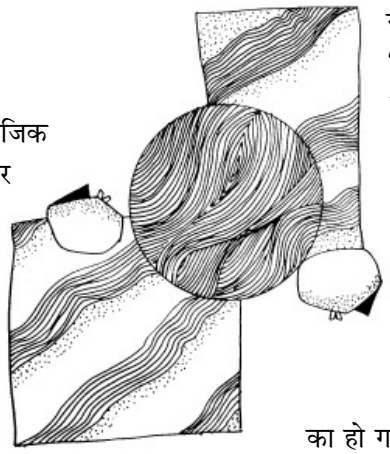

शोधार्थी ने विनम्रतापूर्वक बुढ़िया से पूछा, ''माताजी, क्या बात है? आप रो क्यों रही हैं?''

''बेटा, उधर देख, अंदर जो सांपिन बैठी है न,'' उसने घर के खुले किवाड़ों के भीतर की ओर संकेत करते हुए कहा, ''वह मेरे बेटे की बहू है। वही मुझे जीने नहीं दे रही है!''

बुढ़िया अब भी आँखों से बहते आँसुओं को बार-बार पोंछे जा रही थी।

''आप अपने बेटे से क्यों नहीं कहती? वह अपनी बहू को समझा देगा। इस तरह रोने-झगड़ने से कोई फायदा ही नहीं।'' शोधार्थी ने बुढ़िया को परामर्श दिया।

''बेटा रे, अब तो बेटा भी बहू का ही हो गया है''वह भी मेरा नहीं रहा रे।'' बुढ़िया ने ऐसा कहते हुए फिर से रोना शुरू कर दिया।

शोधार्थी को लगा कि बुढ़िया के साथ सचमुच में ही अन्याय हो रहा है। वह भीतर घुसा। वहाँ एक जवान महिला चूल्हे पर खाना पका रही थी। शोधार्थी ने देखा कि वह भी चुपचाप रोए जा रही है। उसे अपनी ओर देखता पाकर महिला ने अपना पल्लू थोड़ा नीचे खिसका लिया। उसने महिला से भी वही सवाल किया, ''क्या बात है? आप रो क्यों रही हैं?''

''साहबजी, उधर देखिए, वह जो बुढ़िया है न,'' उसने बाहर की ओर संकेत करते हुए कहा, ''वह पक्की डायन है, वही मुझे जीने नहीं दे रही है!''

औरत ने ऐसा कहते हुए ऊँची आवाज में रोना शुरू कर दिया था।

शोधार्थी सकपका गया। उसे लगा कि जवान महिला भी ठीक ही कह रही होगी। उसके मुँह से निकल गया, ''आप अपने पति को क्यों नहीं कहतीं?'' वह बुढ़िया को समझा देगा।

''पति अब मेरा नहीं रहा, वह भी अब तो माँ का हो गया है!'' महिला ने ऐसा कहते-कहते फिर से रोना शुरू कर दिया।

शोधार्थी ने देखा कि उसके सामने एक ऐसी त्रिभुज मौजूद थी, जिसका तीसरा कोण जाने कहाँ खो गया था!

सुपरिचित साहित्यकार। अब तक पाँच कविता-संग्रह, चार लघुकथा-संग्रह प्रकाशित। 'बाबू बाल मुकुंद गुप्त पुरस्कार', 'दैनिक भास्कर' द्वारा आयोजित रचना एवं प्रतियोगिता में पुरस्कृत, 'कमलेश्वर स्मृति कहानी प्रतियोगिता २००७ में द्वितीय पुरस्कार, सृजन सम्मान संस्था द्वारा लघुकथा गौरव सम्मान।

८६४-ए/१२, आजाद नगर,
कुरुक्षेत्र-१३६११९ (हरियाणा)
दूरभाष : ०९४१६२७२५८८

मुझे जिंदगी देने वाले

● माधव नागदा

आज मन फिर उदासियों की अंधी खोह में समा गया। पिछले कुछ दिनों से बार-बार ऐसा हो जाता है। डॉक्टर कहता है कि डिप्रेशन है। मैं उसकी दी हुई दवा कूड़ेदान में डाल देता हूँ। मुझे अच्छी तरह पता है कि मर्ज क्या है और इसका इलाज क्या है।

हमेशा की तरह डायरी खोल लेता हूँ। वे ही पन्ने। वे ही तारीखें, मेरे सीने पर कदमताल करती हुईं—

१८.९.२०११

सन्नाटे में हलचल की तरह नर्स कमरे में दाखिल होती है। चेहरे पर मास्क। मुझे इशारा करती है। बुझे मन से मास्क चढ़ा लेता हूँ। कोई उमंग ही न बची है। नर्स रोबोट की तरह अपना काम निबटाती है, दवा खिलाती है, इंजेक्शन लगाती है, बेडशीट की सलवटें ठीक करती है और ढाड़स बँधाती है। जाते-जाते अपने दस्ताने उतारकर मेज पर रख देती है। मैं देर तक इन उतरे हुए दस्तानों को देखता रहता हूँ। निचुड़े हुए से, मेरे जिस्म की तरह।

२०.९.२०११

भीतर उल्टी गिनती चल रही है। सौ, निन्यानबे, अठानबे··· । दवा कोई भी लग नहीं रही है। सबकुछ अवास्तविक सा लगता है। बीच-बीच में यदा-कदा माँ, भाभी, पिता आते हैं। बुतों की तरह। कहते हैं, चिंता मत करो। जल्दी ठीक हो जाओगे। माँ ने मेरा मोबाइल ले लिया है। बार-बार घंटियाँ आती हैं। तुम्हें चैन से सोने तक नहीं देतीं। आराम करो। सोचो मत। शब्द मानो किसी सूखे बोरवेल से निकलकर आ रहे हैं···मरे-मरे से।

२१.९.२०११

हालत बिगड़ती जा रही है। बावजूद इसके हेतल की यादें पीछा नहीं छोड़तीं। कितना दम भरती थी मरते दम तक साथ निभाने का। मगर एक भी बार आकर हाल-चाल नहीं पूछा। सच है, मरने से सब डरते हैं, मगर फोन करने से तो छूत नहीं लगती।

२३.२०११

आज एक अचंभे की तरह हेतल कमरे में दाखिल हुई। अस्तव्यस्त सी, जैसे किसी भीड़ से पीछा छुड़ाकर आ रही हो। मैंने टेबल पर पड़े मास्क की ओर संकेत किया, किंतु उसने उधर देखा तक नहीं। कुछ देर तक खामोशी तैरती रही। बाद में···

मैं शिकायतों का पुलिंदा लेकर बैठ गया। बीमारी में आदमी निराशावादी और नकारात्मक हो जाता है, खासकर तब, जबकि जीने की तमाम उम्मीदों को ग्रहण लग गया हो।

हेतल ने अपनी तरफ से सफाई पेश करने की कोई कोशिश नहीं की, बस चुपचाप सुनती रही। परंतु जब मैंने कहा कि तुम्हारा प्यार दिखावटी था, एक धोखा, तो वह एकाएक उठी, मेरा मास्क हटाया और मेरे मुरझाए होंठों पर अपने होंठ रख दिए। रखे रही देर तक। मैंने अपने कमजोर हाथों से उसे दूर ढकेलने की कोशिश की। क्यों खतरा मोल लेती हो। स्वाइन फ्लू है यह। मामूली बीमारी नहीं।

'अनिमेष, जो खतरे नहीं उठा सकते, उन्हें प्यार करने का कोई हक नहीं है। प्यार खतरे उठाने का ही तो दूसरा नाम है।' मुझे अच्छी तरह याद है। यही कहा था उसने। उसका चेहरा किसी वीरांगना की तरह दिपदिपा रहा था। जाते-जाते उसने कई बार पीछे मुड़-मुड़कर देखा। हाथ तो हिलाती ही रही थी। मेरी हालत देखकर शायद उसे एहसास हो गया था कि यह हमारी अंतिम मुलाकात है।

३०.९.२०११

इसके बाद चमत्कार हो गया। मेरा स्वास्थ्य उत्तरोत्तर सुधरता गया। जिंदगी में मेरी आस्था पुनः बढ़ गई। पुनः आँखों में रंगीन सपने झिलमिलाने लगे।

क्या प्यार इतना ताकतवर होता है ?

१०.१०.२०११

लिखते हुए कलम काँप रही है। आँखों के आगे अँधेरा-सा छा गया है। क्या लिखूँ, कैसे लिखूँ?

हेतल नहीं रही। मैं अभी-अभी उसकी चिता को अग्नि देकर लौटा हूँ।

मुझे जिंदगी देने वाली स्वयं चली गई। वह मरकर जीत गई। मैं जीकर भी हार गया। अब इस उधार की जिंदगी का क्या करूँ?

न जाने कब डायरी पर एक कतरा बूँद उतर आई, मुझे कुछ पता नहीं। उस बूँद में हेतल का चेहरा मुसकरा रहा था, मानो कह रहा हो, 'अनिमेष, जो खतरे नहीं उठा सकते, उन्हें प्यार करने का कोई हक नहीं।'

कहानी, लघुकथा, डायरी, कविता लेखन। चार कहानी-संग्रह, दो लघुकथा-संग्रह, एक डायरी विधा की पुस्तक, एक कविता-संग्रह। एक लघुकथा-संग्रह (आग) तथा दो कहानी-संग्रह मराठी में अनूदित। 'आग' का अनुवाद अंग्रेजी में भी। संप्रति स्वतंत्र लेखन और समाज-सेवा।

लालमादड़ी, श्रीनाथद्वारा-३१३३०१ (राजस्थान)
दूरभाष : ०९८२९५८८४९४

लघुकथा

छाँव

● विभा रश्मि

स्वर्ण मंदिर में सरोवर किनारे दु:खहरनी बेरी के नीचे पहुँचते ही उसकी आँखें भर आईं। बीजी के साथ वो छुटपन से ही हरमंदर साहब आता रहता था। नेत्र मूँद वह बुदबुदा उठा, 'सच्चे बादशाह! वाहे गुरु! हुण जादा इम्तेहान न लौ। बीजी दे बिछुड़ने दा दु:ख बर्दाश्त करन दी मैन्नु शक्ति दौ।'

उसका अशांत मन आज मंदिर में गुरुवाणी और शब्द-कीर्तन सुनकर शांत हो चला था।

देहरी पर मत्था टेकने के बाद उसने बीजी के स्नेह की गरमास देता उनका पुराना शॉल कसकर अपने चारों तरफ लपेट लिया। अब वो प्यारी बीजी की ममता की बाँहों में लिपटा हुआ था।

बीजी के कमरे में रखी उनसे जुड़ी सभी वस्तुएँ, कपड़े-लत्ते आदि उनके जाने के बाद जरूरतमंदों में बाँट दिए गए।

बीजी की निशानी, इस शॉल को वो किसी को नहीं देगा। शॉल के रेशे-रेशे में बीजी की ममता का स्पर्श पिरोया हुआ था।

वो भीगी पलकों से धुँधलाए मंजर को साफ कर आगे बढ़ा। गरम शॉल बीजी के संग होने का अहसास दे रहा था।

'ठंड नाल मैं ठुरठुर कर रयाँ।'

एक झुर्रीदार बूढ़े ने ठंड से काँपते स्वर में पीछे से पुकारा।

वो पलटा। आँखें चार हुईं तो कुछ क्षण ठिठका-सा खड़ा रह गया। बीजी अपना हाथ उसके सिर पर फिरा रही थीं। उनके मीठे आशीर्वचन कानों में गूँज उठे, 'जिंदा रै पुत्तर।'

फकीर के बूढ़े चेहरे में बीजी का चेहरा उभर आया था। उनकी आखिरी निशानी—उनका शॉल, उसने अपने कंधों से उतारकर, ठंड से काँपते फकीर के कंधों का स्पर्श करते हुए धीरे से लपेट दिया।

सुपरिचित साहित्यकार। अब तक 'अकाल ग्रस्त रिश्ते' तथा मिश्रित कहानी व लघुकथाएँ तथा 'कुहू तू बोल' (हाइकु संग्रह) पुस्तकें प्रकाशित।

पर्याय

'पापा! आज क्या दोगे टिफिन में?' ऋषि की बिटिया ने पूछा।

'आज तो आपके पापा ने आपकी फेवरेट, छोटे-छोटे पेड़ों की, यानी फूलगोभी की सब्जी और एक छोटी सी परौंठी बनाई है। खा लोगी न बिटिया रानी?'

बेटी को जल्दी से स्कूल भेजकर ऋषि ने मोटरसाइकिल स्टार्ट की और ऑफिस पहुँच गया। वह कामचलाऊ कुक था। थोड़ा-बहुत भोजन पकाकर, खा-खिला देता। किचन में नीलू ने उससे कभी खाना बनाने में कोई मदद नहीं ली थी।

ऑफिस में लंच बॉक्स खोलते ही फिर बेटी की 'भोली सूरत' याद आ गई। जो रोज पूछती, 'पापा आज क्या दोगे टिफिन में?'

वह वही घिसा-पिटा सा उत्तर दे देता, 'परौंठी-सब्जी, ब्रेड या मैगी।'

स्कूल में अब कुरकुरे, चिप्स, मैगी व ब्रेड लानेवाले स्टूडेंट्स को पनिशमेंट मिलने लगा था। पेरेंटस की लापरवाही की सजा बच्चों को···। स्कूल-डायरी में कॉम्प्लेंस वाला कॉलम भर गया था। बच्चों की सेहत के प्रति स्कूल बहुत सजग हो गया था।

'पापा! धीरे पकड़ो। आज हमारी रीटा मैम ने फास्ट फूड लाने वाले बच्चों को पूरे एऽक पीरियड, हाथ ऊपर कर खड़े रखा।' वो आँखों में आँसू भरकर बोली।

'बेटा सारी, कल प्रोपर टिफिन बना दूँगा।'

मन-ही-मन टीचर पर बहुत गुस्सा आया।

'सोनल की मम्मा कितना यम्मी फूड बनाती हैं। पापा आप भी बनाओ न। नहीं तो मेरी 'नीलू मम्मी' को बुला दो।'

अब लगा बेटी समझदार हो चली थी। पर अभी उसे पापा की जरूरत थी। इसलिए वह विवाह की नहीं सोच सकता।

रात को बेटी के सोने के बाद ऋषि भिंडी काटते हुए पत्नी नीलू को याद करने लगा। 'पता नहीं कैसे नीलू तुम इतना सारा काम मैनेज कर लेती थीं?

'पापा आज क्या दिया?'

'सब्जी-परौंठा दिया है।' बेटी से वह गर्व से बोला।

तो पापा! आज 'नो पनिशमेंट।' वो खिलखिला पड़ी।

बेटी प्रसन्न होकर 'बाय पापा' कह स्कूली साथियों के झुंड में मिल गई। उसे तो सारे बच्चे अपनी बेटी जैसे ही लग रहे थे, भोले और प्यारे।

अब बेटी की खातिर वो 'नीलू मम्मी' बनके दिखाएगा। नीलू को दोबारा नए तरीके से, खुद में जीवित कर नई ऊर्जा से भर गया था। घर लौटते हुए बुक-स्टोर में जाकर एक उम्दा कुकिंग की किताब खरीद लाया। अब बेटी को टिफिन में 'जंक फूड' ले जाने पर पनिशमेंट तो नहीं मिलेगा। नीलू से किया वादा वह पूरा कर सकेगा। क्योंकि उसे जीने का मकसद मिल गया था।

एस-१-३०३, वाटिका लाइफ स्टाइल होम्स, होम्स एवेन्यू
सेक्टर-८३, गुरुग्राम-१२२००४ (हरियाणा)

नई पीढ़ी की लघुकथा में सामाजिक सरोकारों के प्रतिबिंब

● उमेश महादोषी

एक स्थापित और परिपक्व विधा तक आते-आते लघुकथा का सामाजिक दायित्वनिष्ठ रूप स्पष्ट हो चुका है। उसके केंद्र में स्थित मानवीय अनुभूतियाँ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक चिंतन और चेतना के वातावरण से आती हैं और अभिव्यक्ति को उन सरोकारों तक ले जाती हैं, जो मानवीय जीवन की तमाम आवश्यकताओं, प्रतिकूलताओं और विसंगतियों के साथ-साथ मनुष्य-से-मनुष्य के रिश्ते की सूक्ष्मताओं को व्यापक रूप में समझने के प्रयासों-प्रेरणाओं से जुड़े होकर मनुष्यता के संरक्षण का सोपान प्रस्तुत करते हैं। ये सरोकार मनुष्यता को उसकी संपूर्णता में जीने का रास्ता दिखाते हैं, स्वीकार्य अनुशासन के साथ सामान्य जीवन-मूल्यों की प्रतिबद्धता जगाते हैं। मनुष्य की समस्याओं का नोटिस लेते हैं और उनके समाधान के पक्ष में आवेग पैदा करते हैं। यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि सामाजिक चिंतन और चेतना के संदर्भ से मानवीय जीवन की विभिन्न अवस्थाओं से जुड़े दु:ख-दर्दों को विलग नहीं रखा जा सकता। इसलिए सामाजिक चिंतन और चेतना के संदर्भ में विभिन्न मानव समूहों, यथा—महिलाओं, दलितों आदि की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों आदि से जुड़ी समस्याओं की तरह ही वृद्धावस्था एवं मानवीय जीवन की सहजता को बाधित करनेवाली अन्य स्थितियों, यथा एकाकी जीवन, शारीरिक अक्षमताओं एवं असामान्यताओं आदि से जनित समस्याओं पर चिंतन भी सामाजिक दायरे में शामिल होता है।

मूलतः कवि। 'अविराम साहित्यिकी' के संपादक।

प्रश्न यह उठता है कि लघुकथा का रूप दायित्वनिष्ठ क्यों है? इस संदर्भ में विभिन्न कालखंडों में मानवीय जीवन की स्थिति के सापेक्ष साहित्य की प्रकृति के आधार को समझना आवश्यक है। कालखंड चाहे कोई भी हो, सामान्यत: अनुभूति को प्रभावित करनेवाले तत्त्वों की उपस्थिति, जीवन से जुड़ी व्यवस्था की नियंत्रक शक्तियों की प्रकृति और प्रभाव सहित विभिन्न अनुकूलताओं (जो अभिव्यक्ति के वातावरण का निर्माण करती हैं) के साथ मनुष्य का भावनात्मक साहस अभिव्यक्ति की प्रकृति, दिशा और उसके केंद्रीय विषय को तय करता है। यदि जीवन सामान्यत: सहज और निर्बाध रूप से चल रहा है या/और जीवन के समक्ष बाधाओं के निवारण के लिए चमत्कारिक संवेदनशील शक्तियाँ उपस्थित हैं अथवा उन पर जनविश्वास और जननिर्भरता है, तो साहित्य के केंद्रीय विषय ऐसी चमत्कारिक संवेदनशील शक्तियों/व्यवस्था को नियंत्रित करनेवालों के प्रति श्रद्धा और आत्मीयता से जुड़े अर्थात् आध्यात्मिक एवं भक्ति भावना से पूर्ण होंगे। प्राकृतिक सौंदर्य एवं ऐसी ही अन्य चीजों की उपस्थिति अपने प्रभाव के अनुरूप साहित्य को प्रभावित करेगी। मानवीय जीवन के विपरीत और दुरूह स्थितियों में, समाज में जीवन की सहजता को बाधित करनेवाली चीजों के विरुद्ध अकुलाहट और विद्रोह की भावना व्याप्त होगी। ऐसी स्थिति में, अभिव्यक्ति का वातावरण और साहस, अकुलाहट और विद्रोह की भावना को आवाज प्रदान करते हैं। इसलिए जीवन की सहजता को बाधित करनेवाली चीजों की उपस्थिति व उनकी अनुभूति की प्रकृति और अभिव्यक्ति के लिए वातावरण की बुनावट व साहस की मात्रा के अनुरूप विभिन्न कालखंडों में अकुलाहट और विद्रोह की भावना अलग-अलग रूपों में अभिव्यक्त होती है। आलोचना, समीक्षा एवं जीवन-मूल्यों में विचलनों की चर्चा साहित्य के केंद्रीय तत्त्वों को अपने प्रभाव में ले लेती है।

लघुकथा के संदर्भ में क्रमिक परिस्थितियों को लेकर बात की जाए तो १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध (भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय) से ही जीवन की सहजता को बाधित करनेवाले तत्त्वों की क्रियाशीलता साहित्य को प्रभावित करने लगी थी, जो लगातार बढ़ती चली गई। १९वीं शताब्दी के आरंभ के साथ लोकतांत्रिक शक्तियों की कुलबुलाहट, उदय एवं व्यापकता से अभिव्यक्ति की अनुकूलताएँ वृहद फलक में विकसित होती गईं। इन दोनों तत्त्वों ने साहित्य में व्यापक परिवर्तनों को प्रेरित किया। सामान्य व्यक्ति साहित्य के केंद्र में आता चला गया। समकालीन कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक सभी इसके गवाह हैं। अपेक्षाओं के सापेक्ष मानवीय जीवन की कठिनाइयों और वैचारिक भिन्नताओं की सघनता के कारण भारत में आजादी के बाद साधारण मनुष्य के साथ उसकी समस्याएँ भी विचार और चिंतन के केंद्र में आती चली गईं। इसके प्रभाव में भारतीय साहित्य में ऐसे रूप अँगड़ाइयाँ लेने लगे, जिनमें मनुष्य से अधिक मनुष्य की परिस्थितियों एवं समस्याओं पर फोकस करना निहित था। कविता में समकालीन क्षणिका, कथा साहित्य में समकालीन लघुकथा का अवतरण इसी रास्ते से प्रेरित है। यह समग्र चिंतन प्रक्रिया के परिवर्द्धन का परिदृश्य है, जो अपनी परिधि में सृजित

समग्र साहित्य को सामाजिक सरोकारों की ओर ले जाता है। चूँकि लघुकथा इसी परिदृश्य से निकलती है, अत: स्वाभाविक रूप से वह समस्याओं को केंद्र में रखकर दायित्वनिष्ठता की जमीन पर खड़ी होती है। मनुष्य की परिस्थितियों की भयावहता व जटिलता ने समस्या केंद्रित एवं विद्रोहपूर्ण अनुभूतियों की सघनता को बढ़ाया, व्यवस्थागत लोकतंत्र ने अभिव्यक्ति की आजादी और मुखरता को शाब्दिक शक्ति दी। इन चीजों के संविलयन से जो कथा रचना सामने आई, उसके केंद्र में समस्याओं से जूझता आदमी थोड़ी देर के लिए दिखाई भले दे जाए, लेकिन विशुद्धत: उस आदमी की समस्या और संघर्ष ही वहाँ पर उपस्थित है। सूक्ष्मता को ग्रहण करने और उसका तीव्रतम फोकस बनाने में सक्षम होने के कारण लघुकथा अपनी सहोदर कथा विधाओं से सामाजिक सरोकारों के पक्ष में कहीं आगे खड़ी है। केवल खड़ी ही नहीं है, उनका नेतृत्व कर रही है।

समाज में कोई व्यक्ति अकेला न हो, पीड़ित और दु:खी न हो, जीवन को सहज एवं निर्बाध रूप से जीने योग्य स्थितियों को प्राप्त कर सके, ऐसे उद्देश्यों के लिए समर्पित आचार-व्यवहार प्रत्यक्षत: सामाजिक सरोकारों की श्रेणी में आते हैं। इनके विरुद्ध होने वाली क्रियाओं, गतिविधियों, आचरण आदि विसंगतियों पर फोकस करना (ताकि लोग 'क्या होना चाहिए' के समक्ष 'क्या हो रहा है' के मध्य का अंतर समझकर स्थितियों की समीक्षा के लिए प्रेरित हो सकें) भी साहित्य में सामाजिक सरोकारों के रूप में चिह्नित किया जाता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो भारतेंदु हरिश्चंद्र की रचना 'अंगहीन धनी' (जिसे डॉ. बलराम अग्रवाल ने हिंदी की प्रथम लघुकथा सिद्ध किया है) से लेकर प्रेमचंद की 'राष्ट्र का सेवक' एवं 'बाबाजी का भोग' तक और समकालीन लघुकथा आंदोलन के उषाकाल (१९६५) में रचित/प्रकाशित डॉ. सतीश दुबे की 'भ्रष्टाचार का बाप' एवं 'डबल डाका' तक लघुकथा का आरंभ ही सामाजिक सरोकारों के बीजारोपण के साथ हुआ है। लघुकथाओं के पहले माने जानेवाले संकलन 'गुफाओं से मैदान की ओर' (संपादन : रमेश जैन एवं भगीरथ/१९७४) की भी लगभग सभी लघुकथाएँ सामाजिक सरोकारों की भूमि में ही अंकुरित हुई हैं। इसके बाद आंदोलन काल के दौरान लगभग सभी नए-पुराने लघुकथाकारों ने सामाजिक सरोकारों की परिधि में आने वाले बिंदुओं को स्पर्श करते हुए लघुकथा सृजन किया है। सामाजिक सरोकारों के विभिन्न पक्षों को स्पर्श करती कुछ प्रमुख लघुकथाओं के उदाहरणस्वरूप सतीश दुबे की 'अतिथि' व 'थके पाँवों का सफर', बलराम अग्रवाल की 'बीती सदी के चोंचले', 'गोभोजन कथा' व 'अकेला कब तक लड़ेगा जटायु', चित्रा मुद्गल की 'बयान' व 'दूध', बलराम की 'बहू का सवाल', भगीरथ की 'सुपारी' व 'सपने नहीं दे सकता', सुकेश साहनी की 'गोश्त की गंध' व 'स्वीकारोक्ति', अशोक भाटिया की 'बेपर्दा' व 'प्रतिक्रिया', विक्रम सोनी की 'जूते की जात' व 'अंतहीन सिलसिला', रमेश बतरा की 'लड़ाई' व 'नागरिक', जगदीश कश्यप की 'उपकृत' व 'साँपों के बीच', युगल की 'पेट का कछुआ' व 'जब द्रौपदी नंगी नहीं हुई', सूर्यकांत नागर की 'राजा की बारात' व 'माँ', रामेश्वर कांबोज हिमांशु की 'सपने और सपने', माधव नागदा की 'शहर में रामलीला', श्यामसुंदर अग्रवाल की 'मरुथल के वासी', पृथ्वीराज अरोड़ा की 'दया' व 'कील', मधुदीप की 'अवाक्' व 'उजबक की कदमताल', प्रतापसिंह सोढ़ी की 'वक्त का तकाजा', कमलेश भारतीय की 'मेरे अपने' आदि अनेक लघुकथाओं को याद किया जा सकता है। पारस दासोत जैसे रचनाकार ने तो सामाजिक सरोकारों से जुड़े कई अलग-अलग विषयों, यथा किन्नरों, महिलाओं की समस्याओं, मनोवैज्ञानिक विषयों आदि से जुड़े सरोकारों आदि पर पूरे के पूरे संग्रह दिए हैं। कमल चोपड़ा ने सांप्रदायिक पृष्ठभूमि पर, तारिक असलम तस्नीम, मुइनुद्दीन अतहरव फजल इमाम मलिक ने भारतीय मुसलिम समाज के जीवन से जुड़ी विभिन्न परेशानियों, विसंगतियों व प्रचलित अंध-विश्वासों पर चोट करती अनेकानेक लघुकथाएँ सृजित की हैं। मेरे अध्ययन के अनुसार बलराम अग्रवाल, युगल, मधुदीप सरीखे अधिकतर वरिष्ठ लघुकथाकारों का अधिकांश लघुकथा सृजन सामाजिक सरोकारों से जुड़े विभिन्न विषयों पर ही केंद्रित है, जिसमें व्यापक विविधता देखने को मिलती है। नि:संदेह यह तथ्य लघुकथा की दायित्वनिष्ठा को ही स्पष्ट करता है।

लघुकथा में सामाजिक सरोकारों के प्रति यह रुझान दूसरी व तीसरी पीढ़ी के सृजन में भी पूरी शिद्दत से देखने को मिलता है। हाँ, एक बात अवश्य है कि नई पीढ़ी के रचनाकार सामान्यत: अपने पूर्ववर्तियों का अनुसरण कर रहे हैं। नई पीढ़ी की अपनी आवश्यकताओं और उसके अपने चरित्र-चिंतन में आनेवाले बदलाव सरोकारों को कैसे प्रभावित करते हैं, इसकी बानगी प्राय: अपेक्षित रूप में देखने को नहीं मिलती है। दरअसल मनुष्य के जीवन में समस्याओं और जीवन-मूल्यों से जुड़ी स्थितियाँ दो तरह की होती हैं, एक वे जो कई पीढ़ियों तक (यानी लंबे कालखंड तक) सामान्य रूप में विद्यमान रहती हैं और दूसरी वे, जो पीढ़ियों (यानी छोटे-छोटे कालखंडों में आवश्यकताओं एवं विभिन्न परिवर्तनों के अनुरूप) के साथ प्रस्फुटित होती हैं या बदलती रहती हैं। लेखन में इन स्थितियों का प्रतिबिंबन रचनात्मकता की कसौटी बनता है। नई पीढ़ी के आम रचनाकार का लेखन प्राय: सामान्य विषयों पर नजर आता है, प्रतिभाषाली और जागरूक रचनाकार अपने समय की विशिष्ट चीजों को लेकर सतर्क रहते हैं और उनसे अपने सृजन को समृद्ध बनाते हैं। लघुकथा की नई पीढ़ी अपने समय की विशिष्ट चीजों को प्रतिबिंबित करने पर प्राय: ध्यान नहीं दे पा रही है। पुरानी कहावत है, 'खग ही जाने खग की भाषा'।

नई पीढ़ी के कथाकार अपने समय और उससे जुड़े जीवन केविभिन्न पहलुओं को जितनी कुशलता और गहनता के साथ स्वयं लेखनीबद्ध कर सकते हैं, उतना उनके वरिष्ठ नहीं। वरिष्ठों ने अपने समय को देखा और चित्रित किया होता है। हालाँकि दोनों के बीच एक अदृश्य-सी सीमा-रेखा ही रहती है, लेकिन रहती जरूर है। अपनी आवश्यकताओं और संदर्भों को नवलेखक स्वयं ही बेहतर समझ सकते हैं। स्वाभाविक है कि उनके समय की बेहतर चीजें उन्हीं के लेखन में बेहतर तरीके से आ

सकती हैं। चूँकि ये चीजें सृजन के सामाजिक सरोकार को अद्यतन करने के लिए जरूरी हैं, इसलिए लेखन में नई पीढ़ी को उन चीजों को खुलकर अभिव्यक्त करना चाहिए। लघुकथा में ऐसा नहीं हो पा रहा है तो इसके पीछे के वास्तविक कारणों की पड़ताल होनी चाहिए। इस संदर्भ में मुझे लगता है कि एक तो सामान्य स्थितियों एवं समस्याओं पर लिखना नए कालखंड और नई पीढ़ी के चाल-चरित्र-चिंतन से जुड़ी विशिष्ट स्थितियों के सापेक्ष आसान होता है और दूसरे, कहीं न कहीं लघुकथा पर अधिकार-भाव की भावना का सार्वजनीकरण नहीं हो पाया है। जब तक नई पीढ़ी के (और वरिष्ठ पीढ़ी के भी लघुकथा से इतर विधाओं में सृजनरत) रचनाकार यह समझते रहेंगे कि लघुकथा अमुक, अमुक, अमुक रचनाकारों की विधा है, तब तक वे उन्हीं के पद-चिह्नों पर चलने का प्रयास करते रहेंगे। यदि यह सच है तो इस धारणा से मुक्ति की पहल होनी चाहिए। इस यथार्थ के बावजूद नई पीढ़ी के कई रचनाकारों की कुछ लघुकथाएँ पारंपरिक दृष्टि से सामाजिक सरोकारों के परिप्रेक्ष्य में प्रभावित करती हैं। मैं नई पीढ़ी के रचनाकारों के बीच से कुछ ऐसी लघुकथाओं के उदाहरण यहाँ रखना चाहूँगा, जो वरिष्ठ पीढ़ी के अनुसरणगत प्रभाव के बावजूद लघुकथा में बदलते समय की आहट और जीवन में आनेवाले नवीन परिवर्तनों की पक्षधरता का कुछ संकेत देती हैं।

डॉ. शिल्पा का बेटा शिशिर एक ऐसी लड़की को पसंद करता है, जिसे सात साल पहले किसी संबंधी की जबरदस्ती के परिणामी गर्भ से डॉ. शिल्पा ने ही छुटकारा दिलवाया था। डॉ. शिल्पा के कसैले मन की बड़बड़ाहट को वह लड़की सुन लेती है और शिल्पा से वादा करती है कि वह कोई बहाना करके शिशिर को शादी से मना कर देगी। कुछ पल संशय में रहकर डॉ. शिल्पा की प्रतिक्रिया सामयिक परिवर्तन को अद्यतन करती है, ''नहीं, कुछ मत कहना शिशिर से···माँ हूँ न, इसलिए भूल गई थी कि तुम कोई कागज का टुकड़ा नहीं, जिस पर एक बार कोई इबारत लिख दी गई, तो वह बेदाग न रहा। किसी आदमी की दुष्टता की सजा बेकसूर नारी क्यों भुगते?''

समय ने हमें बहुत कुछ दिया है, हजारों मील की दूरियों को मिनटों, सेकंडों और पलों में बदल दिया है; लेकिन नजदीकी रिश्तों में अपनापन लगातार तिरोहित सा होता गया है। नित नई सुविधाओं के इस दौर ने हमें अपनों से किस कदर दूर कर दिया है, इसका एक प्रतिबिंब युवा लघुकथाकार खेमकरण सोमन की लघुकथा 'चौरानबे मिस्ड कॉल' में देखने को मिलता है। नि:संदेह यह प्रतिबिंब सृजन की सामयिकता को अद्यतन करता है। लघुकथा का प्रमुख पात्र घनश्याम बहुराष्ट्रीय कंपनी में अपने कार्य में इतना व्यस्त है कि मोबाइल पर अपनी पत्नी की पूरी बात तक ठीक से नहीं सुन पाता। घर आने के पत्नी के आग्रह और माँ द्वारा बार-बार पुकारने की सूचना पर वह खीज उठता है और मोबाइल को दराज में बंद कर काम में इतना व्यस्त हो जाता है कि बार-बार आ रही कॉल पर ध्यान ही नहीं देता। रात आठ बजे रूम पर पहुँचकर मोबाइल में पत्नी की ८४ मिस्ड कॉल देखकर और भी खीझ उठता है। तभी उसकी कॉल फिर आ जाती है। खीझ में मोबाइल अटैंड करते ही वह झल्ला पड़ता है, ''माँ मर गई है क्या, जो जीने नहीं दे रही है!'' दूसरी ओर दु:खी पत्नी माँ की वास्तव में हो चुकी मृत्यु की सूचना को शब्द नहीं दे पाती। मल्टीनेशनल कंपनियाँ भरपूर पैसा देती हैं, लेकिन काम का बोझ इतना डाल देती हैं कि व्यक्ति जीवन जीने की समझ और विवेक भी खो बैठने को विवश हो उठता है। उसके लिए 'चौरासी मिस्ड कॉल' का अर्थ उसकी अपनी व्यस्तता जनित परेशानी में दखल से अधिक कुछ नहीं रह गया है। वह इस योग्य भी नहीं रह गया है कि माँ के बार-बार पुकारने की सूचना और पत्नी के आग्रह के बाद इतनी सारी मिस्ड कॉल्स का अर्थ और उसकी गंभीरता को समझ सके। समाज में ऐसी चीजें प्रवेश कर चुकी हैं, यद्यपि जहाँ संभव है, ऐसी चीजों के (वर्क एट होम आदि के रूप में) समाधान भी खोजे जा रहे हैं; लेकिन है तो यह आज के हताशा भरे जीवन का हिस्सा ही।

सामयिक परिवर्तनों में महिला और पुरुष के पारस्परिक संबंधों और सापेक्षिक स्थिति में परिवर्तन भी शामिल हैं। महिलाओं ने परिवार और समाज में अपनी स्थिति को तेजी से मजबूत किया है। उनमें स्वविवेक के उपयोग की भावना और साहस का संचार हुआ है। अपराध की दुनिया से बाहर बात करें तो महिलाओं के प्रति पुरुष की दृष्टि में भी यथेष्ट परिवर्तन आ रहा है। महिला शोषण और अपमान की प्रक्रिया में स्वयं महिलाओं की जो भूमिका पारंपरिक रूप से नकारात्मक रही है, वह भी बदलाव पर है। एक ओर बाजारीकरण के चलते आपराधिक और नकारात्मक प्रवृत्तियों में वृद्धि हो रही है तो दूसरी ओर उन पर प्रभावी नियंत्रण वाली मानसिकता भी जन्म ले रही है। ये ऐसी चीजे हैं, जिनका प्रतिबिंबन साहित्य में अपेक्षित है। लघुकथा की संरचना और उसका रूप इसके अनुकूल है, इसलिए उसमें इन प्रतिबिंबों की अपेक्षा कुछ अधिक की जाती है। नई पीढ़ी की कुछ लघुकथाओं में ऐसी सार्थक पहल देखने को मिलती भी है। मनोज सेवलकर की लघुकथा 'अकेले' की सुंदर, सक्षम और सोसाइटी में स्वयं की सशक्त पहचान रखनेवाली अनुषा का अपने मंगेतर हर्ष को मोबाइल पर यह कहना, ''···अभी तो हम केवल मुलाकातें कर 'रिंग सेरेमनी' तक ही पहुँच रहे थे और तुम्हारा सेल्फ ईगो मुझे कैद करने को लालायित हो गया। जबकि मेरा सेल्फ कॉन्शस इस बात को कतई गवारा नहीं करता कि मैं किसी के नियंत्रण में रहूँ।···'' एक ऐसी ही पहल है। देखना यह है कि भावी पुरुष इस पर क्या रेस्पोंस देता है। कुछ यही पहल एक अलग अंदाज में देखने को मिलती है शोभा रस्तोगी की लघकुथा 'उन दिनों का रक्त' में। मासिक-धर्म से गुजरती एक महिला बस में दो घंटे के मुश्किल सफर के बाद ऑफिस पहुँचती है। पहुँचते ही फाइलों में दब जाती है। तीन घंटे लगातार बैठकर फाइलें निपटाती है। अचानक उसे उठने की आवश्यकता महसूस होती है। तभी बॉस एक फाइल लेकर बुला लेता है। बॉस के कैबिन से निकलते ही वह देखती है कि 'उन दिनों' की ब्लीडिंग का स्पॉट आ ही गया। चपरासी दबी मुसकान से तो बॉस आनंदमग्न होकर

देखने लग जाता है। ऐसे में उस महिला की स्थिति कैसी होगी, समझा जा सकता है। लेकिन लघुकथा को यहीं अपना चरम मिलता है। वह मन में हिम्मत उतारकर बॉस और पियोन, दोनों के आनंदमग्न गरूर को अपने साहसिक शब्दों से जमींदोज कर देती है। यहाँ उस महिला की पीड़ा को उसकी लज्जा के आँसुओं से भिगोकर भी लघुकथा को पूर्ण बनाया जा सकता था। तब शायद बदलते वक्त की धमक सुनाई नहीं देती।

उषा अग्रवाल 'पारस' की 'मूँगफली टाइमपास' में नीना भी परोक्ष रूप से ब्यॉय फ्रेंड के सापेक्ष अपनी भावुकतापूर्ण स्थिति की समीक्षा करके परिवर्तन की ही पहल करती है। यह बात अलग है कि इस हेतु आवलंबन उसका बड़ा भाई बनता है। इस प्रसंग में एक साहसिक पहल ज्योत्स्ना कपिल की लघुकथा 'लिखी हुई इबारत' में भी देखने को मिलती है। डॉ. शिल्पा का बेटा शिशिर एक ऐसी लड़की को पसंद करता है, जिसे सात साल पहले किसी संबंधी की जबरदस्ती के परिणामी गर्भ से डॉ. शिल्पा ने ही छुटकारा दिलवाया था। डॉ. शिल्पा के कसैले मन की बड़बड़ाहट को वह लड़की सुन लेती है और शिल्पा से वादा करती है कि वह कोई बहाना करके शिशिर को शादी से मना कर देगी। कुछ पल संशय में रहकर डॉ. शिल्पा की प्रतिक्रिया सामयिक परिवर्तन को अद्यतन करती है, ''नहीं, कुछ मत कहना शिशिर से···माँ हूँ न, इसलिए भूल गई थी कि तुम कोई कागज का टुकड़ा नहीं, जिस पर एक बार कोई इबारत लिख दी गई, तो वह बेदाग न रहा। किसी आदमी की दुष्टता की सजा बेकसूर नारी क्यों भुगते?'' यह कथ्य मुन्नूलाल की लघुकथा 'उलूक न्याय' में रहमान के बलात्कार की शिकार सकीना द्वारा जमात से पूछे गए सवाल, ''बोलो पंचो, क्या मैं वाकई हर किसी के लिए अछूत हो गई? आखिर गुनाह क्या है मेरा?'' का जवाब भी है।

हमारी शिक्षा प्रणाली में कुछ थोपे गए निर्णय एक परंपरा बनते जा रहे हैं। इनमें शिक्षा से जुड़े तथाकथित शिक्षाविदों की मानसिकता में आया परिवर्तन साफ झलकता है। तथाकथित अच्छे स्कूलों में बच्चों के एडमिशन से पूर्व उनके माता-पिता का साक्षात्कार लेने की परंपरा का बनना ऐसे परिवर्तनों का एक उदाहरण है। माता-पिता के साथ बच्चे के भविष्य को लेकर विमर्श की प्रक्रिया, जिसमें बच्चे की बेहतरी के लिए शिक्षाविद् उन्हें कुछ टिप्स दे सकते हैं, और साक्षात्कार (जिसमें तथाकथित रूप से निर्धारित मापदंडों पर माता-पिता के खरे न उतरने पर बच्चों को एडमिशन नहीं दिया जाता) में अंतर समझा जाना चाहिए। लेकिन धन-पिपाशु व्यापारियों के जाल में फँसे ये तथाकथित शिक्षाविद् अपने थोपे गए मापदंडों से आगे सोचना ही नहीं जानते। इन्हें नहीं पता कि इनके ऊपर जिम्मेवारी बच्चों के उज्ज्वल भविष्य की है; उनके माता-पिता के भविष्य की नहीं। इन्हें नहीं पता कि ये अपनी व्यापारिक जिद से कितने होनहार बच्चों का भविष्य बिगाड़ रहे हैं/बिगाड़ चुके हैं, कितने बच्चों के मन में अपनी क्षमताओं के प्रति हीनता और नकारात्मकता की गाँठों को रोप रहे होते हैं। संतोष सुपेकर की लघुकथा 'सिस्टम फेल' अपने छोटे से कलेवर में इसी ओर संकेत करती है। शिक्षाविदों की आत्माएँ रिश्वतखोर बिगड़ैल दरोगाओं में बदलती जा रही हैं और देश की अधिकांश आबादी के बच्चे माता-पिता की कथित योग्यता-अयोग्यता की पिच पर 'एडमिशन-एडमिशन' खेल रहे हैं।

सामाजिक परिवर्तनों में ग्लैमर की चकाचौंध भरी संस्कृति का परिणामी परिवर्तन भी शामिल है, जो भावनाओं को प्राय: स्थान नहीं देता। लेकिन यथार्थ में भावनाएँ सदैव जीवित रहती हैं। कोई संस्कृति, कोई परंपरा, कोई परिदृश्य उन्हें स्थान दे न दे, भावनाएँ अपने लिए जगह स्वयं तलाश लेती हैं। सुधीर द्विवेदी की लघुकथा 'काश' में बच्ची की खिलखिलाहट के आगे घुटने टेककर एक अभिनेत्री का बैठना इसकी गवाही देता है। बच्ची उसके अपने ड्राइवर की है, यह जानकर वह भौंचक रह जाती है। पत्रकार के पूछने पर अपनी सफलता का श्रेय अपने पापा को देती है। यहाँ काम के प्रति पिता की व्यापारिक कठोरता उसके मन के किसी कोने में कौंधती है, जहाँ शायद भावनाओं की कोई जगह नहीं है। पत्रकार द्वारा अगले प्रश्न में उसकी अधूरी ख्वाहिश के बारे में पूछने पर वह बच्ची को कंधे पर लादे ममत्व भरे स्नेह की गरमाहट देते ड्राइवर की ओर देखती है और ठंडी साँस भरते हुए मात्र एक शब्द 'काश···!' में अपनी दबी हुई भावनाओं को लहराकर तेज कदमों से कैमरे के सामने जाकर ग्लैमर में खो जाती है। भावनाओं से जुड़ा यह वो सरोकार है, जो ग्लैमर के झूठ को तार-तार कर देता है। यह बात अलग है कि ग्लैमर के जाल में एक बार फँसा व्यक्ति उससे बाहर नहीं आ पाता और बाहर का हर व्यक्ति उस जाल में फँसने को सदैव तैयार बैठा दिखता है। निरंतर ऊँचाइयों पर अग्रसर ऐसी युवतियों के मार्मिक अंत को वरिष्ठ लघुकथाकार पारस दासोत ने अपनी लघुकथा 'वह फौलादी लड़की' में चित्रित किया है।

इस अध्ययन के दौरान एक बिल्कुल अलग तरह की लघुकथा पढ़ने को मिली, और बिल्कुल साधारण कलेवर में। 'अहमियत' जैसे सामान्य से शीर्षक पर वाणी दवे के हस्ताक्षर से इस लघुकथा में एक १८ वर्ष का देवर ४२ वर्षीया भाभी, जिसे वह माँ के रूप में देखता है, को उसके लाख समझाने के बावजूद भगा ले जाता है। कारण, परिवार के लोगों द्वारा भाभी को प्रताड़ित करने को वह सहन नहीं कर पाता। एक दिन भाभी उसे घरवापसी के लिए फिर समझाती है। लेकिन देवर यथार्थ से भलीभाँति परिचित है, ''भाभी, जब आपने घर की दहलीज लाँघी थी, आप तो तभी उनके लिए अपवित्र हो गई थीं। अब आप उनके लिए अखबार की वह मसालेदार खबर हो, जिसको लोग मजे लेकर पढ़ेंगे और हम जैसे लोगों के पवित्र रिश्तों को कलंकित करने से भी नहीं चूकेंगे।'' इस यथार्थ से निकालकर वह एक दर्शन सामने रखता है, ''ऐसी खबरों की उम्र ज्यादा नहीं होती, इसलिए हम अपना नया जीवन बिना यह सोचे जिएँगे कि हमने पीछे क्या छोड़ दिया। हो सकता है, तब उन्हें भी अपनों की अहमियत समझ आए!'' इस लघुकथा में भाभी को प्रताड़ना से बचाने के लिए देवर का उसे भगा ले जाना भले अप्रत्याशित लगता हो, लेकिन यदि लेखिका को ऐसे सोद्देश्य परिवर्तन के संकेत नई पीढ़ी और नए समय में कहीं दिखते हैं, तो इसे जीवन के सामाजिक

मूल्यों में एक योगदान ही माना जाना चाहिए।

हमारे समाज में एक रात के लिए भी कोई महिला या लड़की घर से बाहर रह जाए तो बिना कारण या उद्देश्य जाने उसके चरित्र को लांछित करने की परंपरा गहरे तक जड़ें जमाए है। इन जड़ों को उखाड़ने का प्रयास सुवेश यादव की लघुकथा 'भरोसा' में देखा जा सकता है। प्रतिष्ठित, आधुनिक विचारों वाले सुशिक्षित परिवार की एक लड़की एक रात घर नहीं आती है, तो उसे 'भाग गई' घोषित कर दिया जाता है। जबकि सचाई यह निकलकर सामने आती है कि वह अपने ही मोहल्ले के एक बुजुर्ग को रास्ते में पड़े हृदयाघात के कारण अस्पताल में भरती कराती है और उनके परिवार के किसी व्यक्ति से संपर्क न हो पाने की वजह से रातभर अस्पताल में उनकी देखभाल के लिए रुकने को विवश हो जाती है। मोबाइल की बैटरी डिस्चार्ज हो जाने, अस्पताल का फोन खराब होने एवं तीमारदारी की व्यस्तता आदि कारणों से अपने घर सूचित नहीं कर पाती है। समाज की कुंठित सोच को धत्ता बताकर उसका पिता अपनी बेटी पर विश्वास ही कायम नहीं रखता, गर्व भी महसूस करता है। सुवेश का कथ्य समाज की, धीमी ही सही, बदलती सोच के अनुरूप है, इसलिए वाणी दवे का कथ्य भी अप्रत्याशित होने के बावजूद यथार्थ परिवर्तन की दिशा में स्वीकार योग्य कदम है।

आजकल हमारे समाज में समलैंगिक जीवन साहचर्य का प्रवेश हो रहा है। यह कितना नैतिक है, कितना अनैतिक, इस पर विचार तभी संभव है, जब यह व्यापक प्रश्न बनकर हमारे समक्ष आए। इसलिए मेरा मानना है कि इस और इस जैसे तमाम मुद्दों पर सृजन होना चाहिए और उनके तमाम पक्षों की तर्कसंगतता को खोलते हुए होना चाहिए। सृजन के बहाने विमर्श के बाद जो कुछ सकारात्मक निकलकर सामने आए, उसके आधार पर फैसले हों। डॉ. संध्या तिवारी की लघुकथा 'सिलवट' इस संदर्भ में एक साहसिक रचना है। एक ट्यूटर लड़की अपनी सहेली के साथ जीवन बिताना चाहती है, लेकिन उन दोनों के घरवालों को यह बात स्वीकार नहीं है। यह बात पारस्परिक बातचीत में, जिस बच्ची को वह पढ़ाती है, उसकी माँ को बता देती है। बच्ची की माँ उसकी इस बात पर उसे प्रताड़ना के भाव में कहती है, ''शर्म नहीं आती तुम्हें?'' निस्संदेह बच्ची की माँ की यह प्रतिक्रिया हमारे समाज की विद्यमान स्थिति को दरशाती है और विमर्श की प्रक्रिया को रोकने का प्रयास करती है। लेखिका इस बात को अच्छी तरह जानती है, इसलिए लघुकथा में वह लड़की के बेहिचक जवाब से विमर्श की राह को खोले रखती है, ''आप और आपका समाज छिपाकर कितनी ही कुत्सित भावनाएँ पाल ले, लेकिन बता दिया तो समाज से बहिष्कृत।'' यद्यपि इस रचना का कथ्य समलैंगिकता की बजाय भावनाभिव्यक्ति के अधिकार पर केंद्रित हो गया है, तदपि इसमें एक संकेत तो है ही। हमें स्वीकारना होगा, आनेवाली पीढ़ियाँ अपना जीवन जिएँगी तो अपनी ही तरह से। इसलिए उचित यही होगा कि हम उनकी भावनाओं में उठनेवाली उमंगों और प्रश्नों को कम-से-कम विचार-बिंदु तक अवश्य आने दें। विचार होगा तो गलत-सही के तर्क-वितर्क सामने आएँगे और भावनाओं में बहनेवालों को भी निर्णय लेने से पूर्व सोच-विचार का अवसर मिलेगा।

एक बात सोशल मीडिया, विशेषत: फेसबुक से बन रही परंपराओं के संदर्भ में भी कहना आवश्यक लग रहा है। इस माध्यम ने कुछ नकारात्मक चीजें भी व्यापक स्तर पर दी हैं, जिनके कारण इस पर दिखावा-प्रदर्शनों का प्रचलन बढ़ा है। यहाँ फैशन और दिखावे के नए-नए तौर-तरीके नित्य देखने को मिलते हैं। इस यथार्थ को प्रतिबिंबित करती है कपिल शास्त्री की लघुकथा 'ढोंग'। फेसबुक पर कई अधेड़ जोड़ों के प्रेमपूर्वक खिंचवाए फोटोज देखकर प्रदीपजी भी अपनी पत्नी को वेस्टर्न ड्रेसेज पहनने के लिए प्रेरित करते हैं। उनका सोचना है कि तमाम जिम्मेवारियों से मुक्त होने के बाद अब वे दोनों पति-पत्नी भी एन्जॉय कर सकते हैं। लेकिन जिम्मेवारियों से मुक्त हो जानेवाली बात पत्नी को अतीत में धकेल देती है। उसे जीवन के कड़वे अतीत की तमाम घटनाएँ याद आती चली जाती हैं। मन में बसी कड़वाहट इन शब्दों में अभिव्यक्ति पाती है, ''...तुम्हें अब मेरी खुशियों का खयाल आया। सिर्फ वेस्टर्न ड्रेसेज पहनाकर और फेसबुक पर फोटो डालकर तुम मुझे सुखी नहीं दिखा सकते।'' पत्नी के उत्तर में बरसों की खामोशी टूटी तो पतिदेव को लगा, जैसे वे निर्वस्त्र होते जा रहे हैं। फेसबुक जैसे माध्यम निस्संदेह सामाजिक जीवन में बदलाव ला रहे हैं, लेकिन वे आईना भी दिखा रहे हैं। इन क्रियाकलापों में हो सकता है, भविष्य के जीवन की कुछ बेहतरी के सूत्र छिपे हों।

उपर्युक्त कुछ मात्र वे उदाहरण हैं, जो उपलब्ध सोद्देश्य समय-सीमा में मुझे दृष्टिगत हुए हैं। ऐसे और भी अनगिनत होंगे। दूसरे, सामाजिक सरोकारों से जुड़े पारंपरिक विषयों पर सृजित लघुकथाओं की भी लंबी सूची है, जिसे यहाँ देने का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता। इस सूची में लघुकथा की दूसरी-तीसरी पीढ़ियों की अनेक बेहतरीन लघुकथाएँ शामिल हैं, जिन पर अवसर और प्रसंगानुसार कभी अलग से चर्चा हो सकती है।

नई पीढ़ियों के चाल-चरित्र के साथ उनकी सोच भी अपने पूर्ववर्ती पीढ़ियों से अलग होती है, होनी चाहिए। नए रचनाकारों को इसे पहचानना और रेखांकित करना सीखना होगा। समाज में वास्तविक सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए नई पीढ़ी को अपने विवेक और साहस का खुलकर प्रयोग करते हुए अपनी सोच को अपने समय के सरोकारों से जोड़ना होगा। इससे समय को समय से जोड़ना भी संभव हो पाएगा। लघुकथा इसी के लिए पैदा हुई है। नए रचनाकार इस बात को जितना बेहतर तरीके से समझ सकेंगे, लघुकथा उतनी ही अधिक समृद्ध होगी। उनके बड़ों ने इस विधा को उन्हीं के उत्कर्ष के लिए तैयार किया है, यह उन्हीं की विधा है, वे इस बात को समझें और आगे बढ़ें। लघुकथा भी उन्हीं के साथ आगे बढ़ेगी।

१२१, इंद्रापुरम, निकट बी.डी.ए. कॉलोनी,
बदायूँ रोड, बरेली-२४३००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९४५८९२९००४

लघुकथा

मैरिज एनिवर्सरी

● भगीरथ

'आज हमारे विवाह को सत्रह साल हो गए हैं,' पत्नी ने कहा। 'वो तो होने ही थे', पति ने बहुत ही ठंडा रिस्पोंस दिया।

'क्या तुम्हें कोई खुशी नहीं है?' पत्नी का सारा उत्साह बुझ गया।

'इसमें खुशी की क्या बात है? वर्ष तो पूरे होंगे ही, समय-चक्र जो चलता रहता है।' स्वर काफी निराशाजनक था।

'यानी सत्रह वर्ष के सफल वैवाहिक जीवन पर तुम मुझे बधाई नहीं दोगे!'

'बधाई देनी ही है तो तुम मुझे दो, मेरी वजह से वैवाहिक जीवन के सत्रह साल पूरे हुए हैं।'

'वो कैसे! जरा मैं भी तो जानूँ?'

'जानकर क्या करोगी? यह सफल विवाह असफल हो जाएगा।'

'कैसे हो जाएगा! मैं इसे हर सूरत में सफल बनाकर रहूँगी।'

'तो फिर ठीक है, कल से मैं अपनी ओर से एडजस्टमेंट करना बंद कर दूँगा।'

'तुम्हारा मतलब तुम्हारे एडजस्टमेंट की वजह से ये सत्रह साल पूरे हुए हैं।'

'हाँ, इसमें क्या शक है!'

'मैं जो कुर्बानी-दर-कुर्बानी दे रही हूँ, उसका क्या?'

पति चुप।

फिर पत्नी चुप।

आगे कुछ कहने का मतलब युद्ध के लिए तैयार रहना।

दोनों दो द्वीप एक-दूसरे से कटे-कटे।

पत्नी सोच रही थी, 'कितना केयर करती हूँ इनका बच्चों का, परिवार वालों का, फिर भी··· ? पूरा मूड खराब कर दिया। कंजूस केवल पार्टी का पैसा बचाना चाहता है।'

पति सोच रहा था, 'सफल विवाह क्या साल-दर-साल पूरा होने को कहते हैं। कोई जीवंत साहचर्य तो है नहीं। परिवार के आगे भी जहाँ है, इसे यह कब समझ में आएगा?'

बंदी जीवन

विवाह पश्चात् पत्नी ने पति से कहा, ''अब हम पति-पत्नी हैं। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम अविवाहित प्रेमी-प्रेमिका बन जाएँ।''

''हम प्रेमी-प्रेमिका तो बन सकते हैं, लेकिन अविवाहित नहीं; क्योंकि हमारा विवाह हो चुका है।''

''भूल जाओ कि हमारा विवाह हुआ है। ऐसे रहो जैसे प्रेमी-प्रेमिका रहते हैं—वो छुप-छुपकर मिलना, वो चौकन्ना होकर घर से निकलना, कोई देख न ले—इसका हर वक्त डर। रात भर आहें भरना, तारे गिनना, एक दिन न मिलो तो विरह वेदना भोगना।''

''विवाह के बाद ये सब कैसे संभव है? फिर रहना भी तो तुम्हारे घर-परिवार के साथ है।''

''कोशिश करके तो देख सकते हैं।''

''यह तब संभव होगा जब हम डेटिंग यानी हनीमून पर दो-तीन महीने के लिए चल दें।''

''क्या खूब आइडिया है। इसकी तो परमिशन मिल ही जाएगी। हो सकता है, उस उन्मुक्त माहौल में प्रेम-अंकुर फूट ही जाएँ।''

''युवक-युवतियों में देह का आकर्षण तो रहता है, क्योंकि देह की अपनी जरूरतें हैं। यह आकर्षण स्वाभाविक है, पर यह प्रेम नहीं है।''

''जब हम दिल से एक-दूसरे को चाहेंगे तो प्रेम तो होना ही है। प्रेम जीवन को निर्भार कर देता है, उसमें पंख लग जाते हैं, समय की उड़ान आसान हो जाती है।''

''बात तो तुम्हारी ठीक है। विवाह ने हमें लॉक कर दिया है। बंधन तो यह है ही। अब तो बंदी जीवन को जितना खुशहाल रख सकते हों, दोनों मिलकर रखें।''

''विवाह में भी प्रेम संभव है। साथ-साथ रहते तो जानवरों से भी प्रेम हो जाता है।''

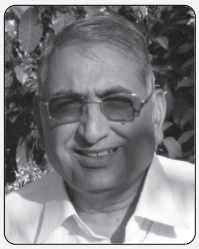

लघुकथा-केंद्रित अनियतकालीन पत्रिका 'अतिरिक्त' का १९७२ से १९७४ तक तथा कविता-केंद्रित अनियतकालीन पत्रिका 'मोर्चा' व 'अलाव' का १९७५ से १९७१ तक संपादन-प्रकाशन। 'पेट सबके हैं' लघुकथा-संग्रह तथा कई संपादित कृतियाँ प्रकाशित।

२२८, न्यू मार्केट, मॉडर्न पब्लिक स्कूल,
रावतभाटा-३२३३०७
वाया कोटा (राजस्थान)

लरजते पेड़

● रामकुमार घोटड़

''ओ गोलू के पापा!'' वो अर्द्धमूर्च्छा में बड़बड़ा रही थी, ''मुझे अपने घर ले चलो, मैं यहाँ नहीं रहूँगी, यहाँ मेरा दम सा घुटता है''।''

''अब अपना यही घर है''और कहाँ चलें।'' बूढ़ा उसके नजदीक आकर बैठ गया।

''नहीं! यह तो वृद्धाश्रम है, अपना घर नहीं। अपना घर तो शहर के बीचोबीच बड़ा-सा है, जिसकी जमीन के लिए तुमने अपनी नौकरी की जमा-पूँजी लगा दी थी। और उसे बनाने के लिए तुमने अपनी तनख्वाह पर बैंक से कर्ज लिया था। मुझे उस घर में ले चलो'' गोलू के पापा! मैं वहीं बेटे, बहू के साथ रहूँगी।''

''होश में आने की कोशिश करो गोलू की मम्मी, अपने आपको सँभालो। अब अपना यही घर है और अंतिम साँस तक यही घर रहेगा। उस घर से लाकर बेटा-बहू ही तो यहाँ छोड़कर गए हैं।''

बुढ़िया को धीरज बँधाते-बँधाते बूढ़े को यों लगा कि वो भी अंदर से कुछ टूटने लगा है। अपना दर्द छुपाने की कोशिश में वह बुढ़िया के चेहरे पर आए आँसुओं को हाथ से पोंछने लगा।

अभयदान

''आज अस्पताल में क्यों आई हो मम्मी।'' उसके गर्भ से आवाज आई, ''मैं भी स्वस्थ हूँ और आप भी स्वस्थ हैं।''

''साधारण चैक-अप के लिए।'' उसके मुँह से स्वत: ही निकल गया।

''लेकिन मुझे कुछ शंका हुई है, क्या मेरी मम्मी, मुझे भी अपनी तरह माँ बनने का मौका देगी?''

''मम्मी, मैं भी रंग-बिरंगी थातियों से सजी इस रंगीन दुनिया को देखना चाहती हूँ। मुझे भी आनेवाले भैया को राखी बाँधने के सुखद पलों से दो-चार होने'' मैं तो आपसे अपना जीवन दान माँगती हूँ। जिंदगी में और कुछ नहीं माँगूँगी। सूखी-बासी रोटी खाकर और उतरे हुए पुराने कपड़ों से तन ढँककर जिंदगी जी लूँगी। मैं आपका अंश हूँ, अलग न करो,''जीवन की यह नन्ही सी लौ आपकी सोच पर टिकी है, मम्मी।''

''टप-टप आँसू पेट पर गिर पड़े। उसकी साड़ी भीगने सी लगी और आँखों को पल्लू से पोंछती हुई वह अस्पताल से बाहर आकर घर की ओर चल पड़ी।

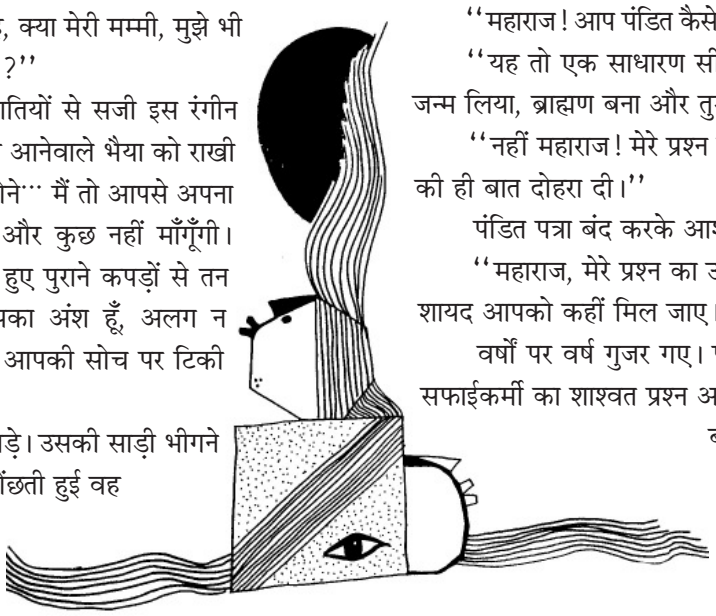

तिनके-तिनके, प्रेरणा, क्रमशः, रूबरू, आधी दुनिया की लघुकथाएँ, मेरी श्रेष्ठ लघुकथाएँ, संसारनामा (लघुकथा-संग्रह), थारी-महारी बाताँ (राजस्थानी लघुकथा-संग्रह), अँधेरों की झलक, लीक से हटकर (कहानी-संग्रह), एक व्यंग्य-संग्रह, कुछ बाल साहित्य की पुस्तकें भी प्रकाशित। लघुकथाओं पर चार एम.फिल. तथा एक पी-एच.डी. के लिए शोधकार्य। अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत।

शाश्वत प्रश्न

अपने आपको प्रखर विद्वान एवं महान् ज्योतिषी समझनेवाले पंडित ने एक दिन एक नगर में आकर पीपल गट्टे पर अपना आसन लगाया और पत्रा खोलकर पन्ने पलटने लगा।

एक सफाईकर्मी औरत हाथ में झाड़ू लिये उधर से गुजर रही थी। पंडितजी को पत्रा पढ़ते देखकर वहाँ खड़ी हो गई। पंडित ने उसकी तरफ देखकर कहा, ''यहाँ क्यों खड़ी है, अपने रस्ते जा।''

''महाराज,'' वह बोली, ''आपके हाव-भाव और व्यक्तित्व से लगता है कि आप एक ज्ञानी पुरुष हो।''

''हाँ, तुम्हारा सोचना सत्य है।'' पंडितजी बोले।

''मैं भी एक प्रश्न पूछना चाहूँगी, महाराज।''

''हाँ-हाँ''। क्यों नहीं, पूछिए।''

''महाराज! आप पंडित कैसे बने और मैं सफाईकर्मी कैसे हुई?।''

''यह तो एक साधारण सी बात है, मैंने ब्राह्मणी की कोख से जन्म लिया, ब्राह्मण बना और तुम''।''

''नहीं महाराज! मेरे प्रश्न का यह उत्तर नहीं। आपने तो पुरखों की ही बात दोहरा दी।''

पंडित पत्रा बंद करके आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगा।

''महाराज, मेरे प्रश्न का उत्तर इससे भी आगे है। पत्रा में ढूँढ़ो, शायद आपको कहीं मिल जाए।''

वर्षों पर वर्ष गुजर गए। पत्र पर पत्र बदलते रहे, लेकिन उस सफाईकर्मी का शाश्वत प्रश्न आज भी सभ्य मानवता के सामने मुँह बाये खड़ा है।

सा अ

सादुलपुर, चूरू-३३१०२३
(राजस्थान)

लघुकथा

रावण-दहन

● सतीश राठी

मंत्रीजी के मुख्य आतिथ्य में रावण-दहन का कार्यक्रम आयोजित था।

राम बने युवा कलाकार ने एक नजर मंच पर विराजे विशालकाय मंत्रीजी को निरखा और फिर छोटी सी टेकरी पर खड़े किए रावण के ऊँचे पूरे पुतले पर अपनी निगाह डाली। पिछले साल से पुतले की ऊँचाई आयोजकों ने और बढ़ा दी थी। मंत्रीजी का वजन भी तो पिछले वर्ष की तुलना में और अधिक बढ़ गया है। राम बना कलाकार सोचते हुए मुसकराया।

आतिशबाजी का दौर चल रहा था और नियत समय पर राम बने कलाकार को वह तीर छोड़ना था, जो एक रस्सी के सहारे पुतले की नाभी में जाकर लगना था। तभी एक आयोजक ने आकर राम बने कलाकार को वह तीर छोड़ने के लिए कहा। 'लेकिन अभी तो समय बाकी है।'

कलाकार बोला, 'मंत्रीजी को जाना है, इसलिए इस बार रावण-दहन समय से पूर्व करना है।' आयोजक ने कहा। बेमन से कलाकार ने तीर छोड़ दिया। उपस्थित जन-समुदाय की उत्तेजना चरम सीमा पर थी। लेकिन तीर नाभी के पास जाकर रुक गया। आयोजकों में से एक ने जाकर

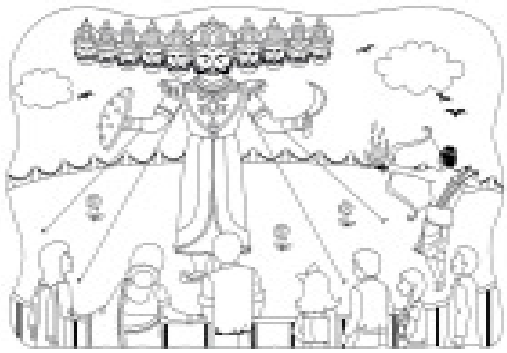

मशाल से पुतले के पैर में आग लगाई। थोड़ा सुलग कर आग बुझ गई। परेशान मंत्रीजी बार-बार घड़ी देख रहे थे। आयोजकों ने दूसरे पैर को मशाल दिखाई। एक बम विस्फोट के बाद आग फिर बुझ गई। रस्सियों से बँधा रावण का पुतला अपने दशों सिरों के साथ साबुत खड़ा था।

राम बने पात्र ने मुसकराकर लक्ष्मण से कहा, 'बड़ा बेशर्म है यह पुतला तो।'

मजाकिया लक्ष्मण बोला, 'मुझे तो मंत्रीजी का प्रतिरूप लग रहा है।'

परेशान आयोजक पुतले पर अब पेट्रोल छिड़ककर आग लगा रहे थे, और बेचैन मंत्रीजी कुरसी पर करवटें बदल रहे थे।

लघुकथा, कविता, व्यंग्य, निबंध, कहानी, हाइकू सभी विधाओं में समान लेखन। पंजाबी, मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी व गुजराती भाषाओं में अनुवाद। संपादित चार पुस्तकें एवं दो निजी पुस्तकें, छह लघुकथा तथा आठ कविता-संग्रह प्रकाशित।

साइकिल

' सर! मेरा साइकिल का लोन आज स्वीकृत हो जाता तो मेहरबानी हो जाती।' कमर से पूरा झुककर और वाणी में सारी विनम्रता समेटकर रघु चपरासी ने सक्सेना साहब से कहा। 'अरे, तेरी साइकिल से पहले तो मेरी साइकिल का ऋण स्वीकृत करवाना है। 'मसखरी के स्वर में सक्सेना ने कहा। 'साहब! आप तो कार से आते-जाते हैं। आपको साइकिल की क्या जरूरत? साइकिल तो हम जैसे गरीबों के लिए है।' रोज पाँच किलोमीटर पैदल चलकर आने का दर्द रघु के बोलने के पीछे दबा हुआ था।

'अरे! तेरी जैसी साइकिल नहीं पागल। मुझे तो व्यायाम वाली साइकिल खरीदना है। देखता नहीं यह··।' अपनी बढ़ती हुई तोंद की ओर उन्होंने इशारा किया।

'हमारा पेट तो परिवार का पेट पालने की चिंता में ही अंदर हो जाता है, साब।' मुँहलगे रघु का चिंता भरा स्वर सुनकर सक्सेनाजी खिसियाहट से भर गए।

मनौती

नौकरी नहीं मिलने को लेकर वह बड़ा परेशान था। जिसने जो बताया, उसने वह सब किया।

किसी के बताने पर ऐसा ही उसने रोज शाम को हनुमान मंदिर जाना शुरू किया। वह बड़ी श्रद्धा के साथ रोज मंदिर जाता, अगरबत्ती लगता, पुष्पमाला-प्रसाद चढ़ाता और हनुमान-चालीसा का पाठ भी करता। नौकरी लग जाने पर उसने चोला चढ़ाने की मनौती भी की थी।

कुछ भाग्य की मेहरबानी और कुछ हनुमानजी की कृपा। उसकी नौकरी लग गई। अब वह प्रसन्न हो गया। नौकरी लगने के बाद कुछ दिन तो वह मंदिर गया, फिर धीरे-धीरे बंद कर दिया। चोला चढ़ाने की कोई इच्छा उसके मन में नहीं बची थी। अब धीरे-धीरे वह मंदिर का रास्ता भी भूलने लगा था।

आर-४५१, महालक्ष्मी नगर, इंदौर-४५२०१० (म.प्र.)
दूरभाष : ०७३१४९५९४५१

पिताजी

● हीरालाल नागर

ज्यों–ज्यों बच्चे बड़े हो रहे हैं, मैं छोटा होता जा रहा हूँ। घर से दफ्तर और दफ्तर से घर। दिनचर्या इतने में ही सिमटती जा रही है। जीने का दायरा छोटा, और छोटा होता जा रहा है। जब पिताजी रिटायरमेंट के करीब थे तो अपने में सिमटकर रह गए थे। उनकी ज्यादातर आदतें मुझ पर ट्रांसफर हो गई हैं। मैं वही करता हूँ, जिसे पिताजी किया करते थे। मसलन, नौकरी से जब पिताजी छुट्टी पर घर पहुँचते थे, रात गहरा चुकी होती। नौकरी से मेरा घर पहुँचना भी लगभग आधी रात को ही होता था। पिताजी के आने की आहट हम बच्चों को बातों की खुसुर–पुसुर से होती थी। हम बच्चे कुनमुनाते तो चुप्पी पसर जाती। ऐसा ही शायद मेरे घर पहुँचने पर मेरे बच्चे भी महसूस करते रहे होंगे।

सुबह माँ हमें खाने को खजूर देती। गुड़ और पेठा भी होता। मैं जब भी बाहर से घर आता, ये चीजें अनिवार्य रूप से मेरे साथ जुड़ गई थीं और मुझे पिताजी की याद आती।

पिताजी की कुछ आदतें बरबस भी मुझ में चली गईं। जैसे कि जमीन पर सोना, पैदल चलना। वे पैदल बहुत तेज–तेज चला करते थे। कसरती और मेहनती तो थे ही। मैं उनकी किसी आदत को सायास ग्रहण नहीं करता। चेतना में कुछ रहता हो, पता नहीं। मगर जब उनकी कुछ आदतें दोहराने लगता हूँ तो लगता है, जैसे पिताजी मुझ में अब भी जी रहे हैं।

रास्ता

मुझे झमेला बिल्कुल पसंद नहीं। सीधी पगडंडी आश्वस्त करती है। पर जैसे ही चौरस्ते पर पहुँचता हूँ—भूलभुलैया शुरू हो जाती है। मेरे मित्र कहते हैं—''इस रास्ते पर चलो।''

''इस रास्ते पर क्यों भला?'' मैं पूछता हूँ।

''इस रास्ते पर पैसा है, शोहरत है।''

''और इस रास्ते पर?'' मेरा सवाल बना रहता है।

''मान–सम्मान है, इज्जत है।''

''और इस तीसरे रास्ते पर?'' मेरी जिज्ञासा कम नहीं होती।

''भीड़, है, प्रतियोगिता है। घृणा है, ईर्ष्या और द्वेष है।''

चौथा रास्ता बचा था। ''और इस रास्ते पर?''

''इस पर कोई नहीं चलना चाहता। ईमानदारी है, मगर अकेला हो जाने का डर है। सच्चाई है, मगर अवांछित हो जाने का खतरा है। कदम–कदम पर संघर्ष और चुनौती है। मुश्किलें ही मुश्किलें हैं।''

मुझे यह रास्ता पसंद आया और मैं चल पड़ा। अभी चल ही रहा हूँ। मंजिल का कोई पता नहीं। शायद इसकी कोई मंजिल ही नहीं।

सुपरिचित लेखक। 'जंगल के खिलाफ' (कविता-संग्रह); 'अधूरी हसरतों का अंत' (कहानी-संग्रह) प्रकाशित। 'आर्य स्मृति सम्मान' तथा 'शैलेश मटियानी कथा सम्मान', राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल से सम्मानित। संप्रति भारतीय ज्ञानपीठ में वरिष्ठ प्रकाशन अधिकारी और 'नया ज्ञानोदय' के सहयोगी संपादक।

अँधेरा

इधर बहुत अँधेरा है। कॉलोनी खाँचों में बँट चुकी है। यहाँ चार तरह के लोग रहते हैं। पहले वे लोग, जो यहाँ के स्थायी निवासी हैं। उनके पास हजार से लेकर पाँच सौ गज में मकान हो सकते हैं। दूसरे वे लोग, जिन्होंने शहर के दूसरे इलाकों से आकर २०० से ३०० गज जमीन खरीद ली और मकान बनवाकर ऐशो–आराम से रहते हैं। ये व्यापारी और दुकानदार हैं। तीसरे वे लोग, जो १०० से १५० गज जमीनवाले मकानों में करते हैं। ये नौकरीवाले लोग हैं। चौथे वे लोग, जो ४० से लेकर ५० गज जमीनवाले मकानों में गुजर–बसर करते हैं। कॉलोनी के जो पुश्तैनी निवासी हैं, उन्हें किसी से कोई मतलब नहीं। जो उनके पास आ जाए तो ठीक, न भी आए तो भी ठीक। ये छोटी–मोटी राजनीति में सक्रिय रहते हैं और सामाजिक रसूखवाली कैटगरी में रखे जाते हैं। २०० गजवाले १०० गजवालों से बात करते हैं। ५० गजवालों से बात नहीं करते हैं। १०० गजवाले २०० गजवालों से संबंध रखते हैं, ५० गजवालों से तो बिल्कुल नहीं। २०० गजवालों में पार्टीबद्धता कुछ ज्यादा ही है। १०० गजवाले पार्टी परखकर निर्णय लेते हैं, जो पार्टी उनका फायदा कर दे, ५० गजवाले उसी के साथ दौड़े चले आते हैं।

बिजली आती–जाती रहती है, इसका किसी को मलाल नहीं। संकट तब खड़ा होता है, जब ५०० गजवाले से लेकर १०० गजवालों के भारी–भरकम मकानों में रात–दिन उजाला रहता है; लेकिन ५० गजवाले मकानों में बिजली न भी हो तो भी चलता है, लेकिन कॉलोनी में अँधेरा तब घना हो जाता है, जब २०० और १०० गजवाले मकानों में ब्लैक आउट का अभ्यास शुरू हो जाता है, और कॉलोनी में जंग जैसा माहौल पैदा किया जाता है।

बी १७४/४१ सी, सादतपुर विस्तार,
नई दिल्ली–११००९०
दूरभाष : ९९६८५५१४१४

समकालीन हिंदी लघुकथा : भाषा पर कुछ भद्र विचार

● जितेंद्र 'जीतू'

समकालीन हिंदी लघुकथा की समकालीनता को सन् १९७१ के बाद की लघुकथा के परिप्रेक्ष्य में अवलोकित किया जाता है और भाषिक संदर्भों में तो विषय की उपयोगिता अपने आप बढ़ जाती है। किसी भी रचना की भाषा उस युग की पहचान का दावा करती दिखाई देती है। रचना के पात्र पृथ्वी के जिस भू-भाग अथवा मंडल में रहते हैं, वे उसकी भाषा का प्रयोग करते दिखाई देते हैं। प्रत्येक स्थान का भौगोलिक और सांस्कृतिक परिवेश एक-दूसरे से भिन्न होता है। उसको व्यक्त करनेवाली शब्दावली और मुहावरे भी भिन्न-भिन्न होते हैं। प्रत्येक अंचल अपनी भाषा की विशिष्टता के कारण ही एक-दूसरे से भिन्न हुआ करता है। भाषा बहुत कुछ भौगोलिकता, सांस्कृतिक संस्कार और युग का दबाव, इन तीन बातों से निर्मित होती है, क्योंकि जो कुछ रचनाकार मन में अनुभव करता है, वह भी भाषा में स्वरूप पाता है। संवेदना, ज्ञान, अनुभूति और चिंतन सभी कुछ भाषा में होते हैं। भाषा रहित ये निराकार हैं। इन्हें अभिव्यक्ति से पूर्व और अभिव्यक्ति के बाद दोनों ही रूपाकार भाषा देती है। भाषा में उस अंचल विशेष के रूप, रस, गंध—सभी रचे-पचे होते हैं। ये आधार भी प्रत्येक अंचल की भाषा को एक-दूसरे से बिलगाते हैं।

मूलतः व्यंग्यकार। अनेक व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित। लघुकथा का समाजशास्त्रीय सौंदर्यबोध विषय पर पी-एच.डी.। संप्रति बैंककर्मी।

वस्तुतः लघुकथा का भाषा पक्ष समृद्ध और विशाल है। आडंबर, कृत्रिमता और प्रदर्शन की यहाँ कोई गुंजाइश नहीं है। लघुकथाकार फूँक-फूँककर भाषा का प्रयोग करते हैं। कथ्य की अभिव्यक्ति सशक्त शब्दों के द्वारा सशक्त भाषा का कभी-कभी निर्माण भी करते हैं। यों भाषा लघुकथा के कथ्य को रुचिर व आकर्षक रूप में प्रकट करती है—व्यक्ति, समाज और वातावरण से इसको पोषण मिलता है। लोकजीवन से इसे स्वीकृति प्राप्त होती है और संस्कृति इसे दीर्घायु करती है।

लघुकथा की भाषा कैसी हो, इस संबंध में विभिन्न मत हैं। भगीरथ भाषा को विचारों और संवेदनाओं का वाहक बताते हैं, ''हम लघुकथा के संदर्भ में शिल्प की बात करते हैं तो हमारे समक्ष मुख्यतः तीन मुद्दे होते हैं—भाषा, शैली और गठन। भाषा ही यथार्थ को प्रतिबिंबित करती है, अनुभवों को दूसरों तक पहुँचाती है, विचारों एवं संवेदनाओं की वाहक भी भाषा ही होती है। साहित्य के माध्यम से भाषा ही व्यक्ति के सौंदर्यबोध और संवेदना को घनीभूत करती है। अतः भाषा का महत्त्व साहित्य में स्वयंसिद्ध है। लेकिन प्रश्न उठता है, लघुकथा की भाषा कैसी हो, इसके लिए कोई प्रिस्क्रिप्शन तो नहीं दिया जा सकता। हाँ, कुछ सामान्य सिद्धांत निर्धारित किए जा सकते हैं। भाषा के विभिन्न उपादानों पर चर्चा की जा सकती है।''

समकालीन हिंदी लघुकथा की भाषा साधारणजनों की भाषा है। प्रायः लघुकथाकारों द्वारा यह प्रयत्न किया गया है कि उनके पात्र अपनी ही भाषा बोलें। कतिपय लघुकथाकारों द्वारा ही इस नियम का उल्लंघन किया गया है। लघुकथा का जन्म क्योंकि जनसाधारण के वास्तविक जीवन से होता है, अतः लघुकथा की भाषा जनसामान्य की भाषा से जुड़ी होती है। इसमें जनसामान्य का आक्रोश बोलचाल की भाषा के माध्यम से उभरता है। इसमें आंचलिक शब्दों, मुहावरों, उर्दू-अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से होता है। इस बिंदु को स्पष्ट करते हुए बलराम अग्रवाल कहते हैं, ''अनेक कथाकारों को शिकायत करते सुना जाता है कि एकदम नया विषय प्रस्तुत करने के बावजूद न तो पाठक और न ही आलोचक उनकी लघुकथाओं का नोटिस ले रहे हैं। उन्हें समझाना पड़ता है कि कुछ वाक्यों अथवा शब्दों के समूह मात्र को भाषा नहीं कहा जा सकता। कथा साहित्य की जितनी भी विधाएँ हैं, उन सभी की भाषा समान नहीं हो सकती। परिपक्व लेखन वही कहलाएगा, जिसमें उपन्यास को उपन्यास की, कहानी को कहानी की और लघुकथा को लघुकथा की भाषा में लिखा गया हो। उपन्यास, कहानी और लघुकथा···आकार की दृष्टि से इनका यह उतरता क्रम है। इस उतरते क्रम में भाषा पाठक को ग्राह्य नहीं होगी; मतलब, उपन्यास की भाषा में कहानी और कहानी की भाषा में लघुकथा पाठक पर यथेष्ट प्रभाव नहीं डाल सकते। हाँ, चढ़ते क्रम में भाषा का प्रयोग पाठक और आलोचक दोनों का ध्यान कदाचित् अपनी ओर आकर्षित करने में भी सफल सिद्ध हो सकता है और प्रभावित करने में भी।''

अपनी भाषा बोलते समय लघुकथा के पात्र संकोच नहीं करते। चित्रा मुद्गल, सुकेश साहनी, बलराम अग्रवाल, मधुदीप, महेश दर्पण, अशोक भाटिया, भोलानाथ त्यागी हों या नए लघुकथाकारों में डॉ. नीरज या नीलिमा, सभी की लघुकथाओं के पात्र अपनी वही भाषा का प्रयोग करते दिखाई देते हैं, जिस परिवेश में वे रहते हैं। अंचल की भाषा हो या गाँव की भाषा या फिर शहर की भाषा, पात्रों की भाषा सहज ही बन

जाती है। भगीरथ की लघुकथा 'आग' में भाषा की सहजता और उसके सौंदर्य को देखिए—

'हम गरीब सही, भिखमंगे तो नहीं।' बुधिया ने हिम्मत बटोरी।

'नहीं-नहीं बुधिया, ये हमें खरीदने आए हैं, ताकि कल हम दिहाड़ी बढ़ाने की, झोंपड़ी बनवाने की, स्नान-शौचालय, दवा-दारू की माँग न करें। यह दया नहीं, हमारे हक को छीनने का षड्यंत्र है। अपनी लूट को इनसानियत का जामा पहना रहे हैं।' वे सब अपना सा मुँह लिये लौटने लगे।

'गुंडा कहीं का, बेचारों को तबाह करने पर तुला हुआ है।' ठेकेदार फुसफुसाया। बच्चे टुकुर-टुकुर कंबलों को देख रहे थे।

'सर्दी बढ़ गई है। आओ, आग के पास बैठेंगे।' वह बच्चों से बोला।

यही भाषा लघुकथाकार के सौंदर्य-बोध से उपजती है।

भगीरथ लिखते भी हैं, लघुकथा की भाषा निर्विवाद जनभाषा ही रही है। पात्र एवं परिवेश के अनुरूप भाषा रचना में सौंदर्य सृष्टि करती है। अत: भाषा में आंचलिकता आना स्वाभाविक है। अंचल के मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ जनता के अनुभवों का निचोड़ होती है और लघुकथा के लिए बहुत उपयोगी है, क्योंकि शब्दों की मिश्रव्ययता से रचना में कसाव भी आ जाता है। इस संदर्भ में विभा रश्मि की लघुकथा 'साचा सपणा' भी उल्लेखनीय रचना है। एक अंश देखें—

चायवाला काका डस्पोजेबल कप में चा छान रहा था। 'दो घूँट पिला नहीं सकता, मक्खीचूस।' वो मन में बतियाई। तभी काका ने रोली को पुकारा, ''ले, चा गुटक ले तू बी, भीजकर धूज री है छोरी।''

कप की गरम चा वो दो घूँट में झट से गुटक गई। चा पीते ही उठ खड़ी हुई थी ।

लघुकथाकार को भाषा के प्रति पूर्ण सजग रहना पड़ता है। पहली भूमिका, जहाँ लेखक पात्रों के लिए वाणी विधान करता है, वहाँ यह ध्यान रखता है कि पात्रों के अनुकूल भाषा का स्वरूप बने। कहीं अपढ़ और गँवई पात्र पंडितों की भाषा न बोल जाए, और पंडित पात्र कहीं गँवई भाषा में बात न कर पड़ें। तात्पर्य यह है कि विभिन्न वर्गों को प्रतिनिधित्व देनेवाले विभिन्न प्रकार के पात्रों की भाषा उनकी संवेदनाओं के अनुकूल हो, यह काम लेखकों को बड़ी सावधानी से करना पड़ता है।

समकालीन हिंदी लघुकथा में अनेक स्थान पर भाषा में अलंकारों का प्रयोग दृष्टव्य है किंतु रमेश कुमार भाषा में आलंकारिता के विरुद्ध हैं। वे लिखते हैं कि लघुकथा की भाषा सामान्य बोलचाल की भाषा होती है। इसमें आलंकारिकता को स्थान नहीं दिया जाता। इसमें बिंबों से अधिक प्रतीकों को महत्त्व दिया जाता है। लघुकथा के पात्र बहुधा प्रतीकों के रूप में उभरते हैं। लघुकथा की भाषा मुहावरेदार तथा जनसामान्य के अधिक निकट होती है। इस भाषा में एक-एक शब्द महत्त्वपूर्ण होता है। एक भी शब्द हटने से लघुकथा का सौंदर्य नष्ट होने की शंका रहती है। प्रत्येक शब्द अर्थगर्भित एवं प्रभावशाली होता है। इसमें एक-एक अर्द्धविराम और विरामचिह्न का भी महत्त्व होता है।

डॉ. शकुंतला किरण भी 'आलंकारिता से रहित' भाषा का प्रयोग करने की सलाह देती हैं—

''किसी भी साहित्यिक विधा के लिए भाषा एक पुल है, जिसके माध्यम से रचनाकार अपना कथ्य पाठक व श्रोता तक संप्रेषित करता है। भाषा जितनी सादगीपूर्ण, अनगढ़, सहज, स्वाभाविक, आडंबरहीन होती है, कथ्य जनसाधारण के लिए उतना ही ग्राह्य व प्रभावोत्पादक होता है। लघुकथा की भाषा किसी एक धरातल पर विद्यमान न होकर एक रस नहीं अपितु विविधोन्मुखी है। उसमें विविध भंगिमाएँ हैं। व्याकरण-सम्मत या आभिजात्य वर्ग की सुसभ्य अथवा टकसाली भाषा न होकर जनसामान्य के दैनिक जीवन की बोलचाल की सहज व स्वाभाविक सीधी-सादी भाषा है, जो किसी भी आडंबर, चमत्कार, पांडित्य-प्रदर्शन, अलंकार से रहित एवं अपने कथ्य-परिवेश के अंतर्गत आए पात्रों के अनुरूप है।'' विभा रश्मि की लघुकथा 'छाँव' का यह अंश देखिए—

स्वर्ण मंदिर में सरोवर किनारे दु:खहरनी बेरी के नीचे पहुँचते ही उसकी आँखें भर आईं। बीजी के साथ वो छुटपन से ही हरमंदर साहब आता रहता था। नेत्र मूँद वो बुदबुदा उठा, ''सच्चे बादशाह! वाहे गुरु! हुण जादा इम्तेहान न लौ। बीजी दे बिछुड़ने दा दुख बर्दाश्त करन दी मैन्नु शक्ति दौ।''

महेश दर्पण की 'रोजी' (समग्र: लघुकथा विषेशांक) सहज भाषा-प्रयोग की दृष्टि से एक प्रभावपूर्ण रचना है; देखिए—

तड़ाक···तड़ाक···तड़ाक···उसने पूरी ताकत से सोबती के गाल पर तीन चार तमाचे जड़ दिए। वह अभी और मारता, पर पीछे से सत्ते ने हाथ रोक लिया, ''पागल हुआ क्या···डेढ़ हड्डी की औरत है, मर गई तो··· ?''

उसके हाथ रुके तो जबान चल पड़ी, ''हरामजादी, आँखें फाड़-फाड़ के क्या देख रही है···रात भर में तुझे दो ही रुपे मिले बस्स? निकाल कहाँ छिपा रखे हैं···रोटी तोड़ते समय तो ऐसे···''

सोबती की लाल आँखें, जो अब तक झुकी हुई चुपचाप सुने जा रही थीं, उसकी ओर उठ गईं, ''चुप भी कर हिजड़े···रातभर बीड़ी के पत्ते मोड़े हैं और तू···तन बेचना होता तो तुझे खसम ही क्यों करती!''

भगीरथ का मत इस संबंध में कुछ और ही है। वे लिखते हैं कि भाषा में जनता के मुहावरों की पकड़ रखनेवाला रचनाकार पाठक पर जबरदस्त होल्ड रखता है। जिन रचनाओं में व्यंग्योक्ति या रिमार्क जनता के मुहावरों में होता है, वह पाठक के सौंदर्यबोध को खूब अपील करता है। लेकिन जनता के मुहावरे तो आलंकारिक भी होते हैं। तो क्या आलंकारिकता पूर्ण भाषा का प्रयोग वर्जित होना चाहिए, जैसाकि रमेश कुमार कहते हैं। इनसे भी एक कदम आगे बढ़कर ईश्वर चंद्र लघुकथा की भाषा को कविता की भाषा होने देने को सिरे से ही नकार देते हैं। वे लिखते हैं कि लघुकथाकार की भाषा निश्चय ही कविता की भाषा नहीं है, यह बोलचाल की भाषा है। इसके ग्रहण में किसी तरह की माथापच्ची की जरूरत नहीं पड़ सकती। लघुकथा की भाषा सरल, सुबोध और सहज ग्राह्य भाषा है। इसके माध्यम से लघुकथा की ओर हम सहज रूप से आकृष्ट होते हैं। महावीर प्रसाद जैन इस संबंध में स्थिति

स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जहाँ तक लघुकथा की भाषा का प्रश्न है, इसमें दो राय नहीं हो सकती कि लघुकथा की भाषा किसी विशेष धरातल पर विद्यमान नहीं है। जब कोई विधा सामाजिक सार्थकता या निस्सारता या जीवन की विसंगतियाँ प्रकट करने में उपकरण के रूप में प्रयुक्त की जाती हैं, तब उसकी अभिव्यक्ति ऐसी होनी चाहिए कि वह सुपाठ्य बन सके। अर्थात् भाषा सरल किंतु औदात्यविहीन न हो, अन्यथा ऐसी अभिव्यक्ति को गंभीर आलोचक रोचक समाचार या विवरण के समक्ष रख देंगे।

लगभग सभी विद्वान् आलोचक भाषा को 'कथ्य का अनुचर' बतलाते हैं। उनके अनुसार, लघुकथा का कथानक ही उसकी भाषा का निर्धारण करता है। लघुकथा की भाषा वस्तुत: एक शोध का विषय है। लघुकथाकार अपने जीवन की अनुभूति को सशक्त रूप में व्यक्त करते हैं। कभी एक क्षण (जानवर : सुभाष नीरव) का कथानक रहता है, कभी अनेक क्षण (कपों की कहानी : अशोक भाटिया) का और कभी लंबी समयावधि (खाते बोलते हैं : अशोक वर्मा; सूरज की डायरी : दामोदर खड़से; समय का पहिया घूम रहा है : मधुदीप) का भी। लघुकथाकार की मानसिकता कथानक को अपने ढंग से रखती है, अत: भाषा में विविधता का आना स्वाभाविक है। कहीं भाषा में लघुकथाकार का 'इंग्लिश कॉम्प्लेक्स' (खेल: रेनड्रॉप के चैटरूम में : सुकेश साहनी) हावी होता है, कभी आंचलिक शब्द की ओर झुकाव (बोल भी इब : नीलिमा शर्मा), कभी विदेशी शब्दों का प्रयोग। मात्र भाषा प्रयोग के उदाहरण के रूप में लघुकथाएँ नहीं लिखी जातीं, अपितु जीवन को एक प्रकाश देने के लिए अथवा जीवन को परिष्कृत करने के लिए लिखी जाती हैं। सांस्कृतिक परिवेश, लोकजीवन, अर्थव्यवस्था आदि अनेक तत्त्वभाषा के नियंत्रक हैं और एक सचेत सामाजिक होने के नाते लघुकथाकारों द्वारा इनके अनुकूल भाषा का प्रयोग करना स्वाभाविक है। लघुकथाकार अपने को स्वाभाविक रूप में लघुकथाओं के माध्यम से व्यक्त करने के प्रति जागरूक रहते हैं। उनका लक्ष्य अपने कथ्य को पाठक तक सहज, सामान्य रूप से संप्रेषित करना होता है। सो बनावटी भाषा-प्रयोग कर ये पाठकों या श्रोताओं को उलझाना नहीं चाहते। कहने का मतलब यह है कि समकालीन लघुकथा की भाषा अपने यथार्थ तेवर में हमारे सामने प्रकट होती है। लघुकथाकार 'भाषा', भाषा के लिए' सिद्धांत को मानकर नहीं चलते अपितु 'भाषा, जीवन के लिए', 'जीवन परिष्कार के लिए' या 'जीवन उन्नयन के लिए' सिद्धांत को मानकर चलते हैं। स्पष्ट है कि भाषा का उपयोगितावादी रूप लघुकथाकारों को अधिक प्रिय है।

भगीरथ भी कथानक को ही भाषा का अंग बताते हैं और भाषा के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं। वे लिखते हैं, कि 'जिन रचनाओं के कथ्य मारक होते हैं, उनकी भाषा भी तेज-तर्रार और चुटीली होती है। जहाँ भ्रष्ट व्यवस्था, दोगले चरित्र और पाखंडों के खोल उतारने हों, जहाँ उनकी असलियत को नंगा करना हो, लघुकथा की भाषा दो टूक होती है, होनी चाहिए। लघुकथा में कथा और भाषा दोनों प्रवाहमय होने चाहिए। प्रवाहमयी भाषा पाठक को कथा की अन्विति तक पहुँचाती है।'

भाषा के मामले में कथानक पर निर्भरता की वकालत मूलचंद गौतम भी करते नजर आते हैं। उनके अनुसार कथा-भाषा की परीक्षा भी इन्हीं बिंदुओं पर होती है। यानी देखना होता है कि भाषा वर्णनात्मक है कि काव्यात्मक है कि नाटकीय है। उसके वाक्य विन्यास कैसे हैं, किन-किन स्रोतों के शब्द हैं और उनका कितना सर्जनात्मक उपयोग किया गया है। भाषा अपने आप में सुंदर नहीं होती, कथ्य की प्रासंगिकता में ही उसके सौंदर्य-असौंदर्य, शक्ति-अशक्ति की पहचान की जा सकती है। एक प्रकार की भाषा एक प्रकार के कथ्य के संदर्भ में सुंदर कही जा सकती है, किंतु दूसरे प्रकार के कथ्य के संदर्भ में असुंदर। इस संदर्भ में बलराम अग्रवाल के इस विचार की पुष्टि होती है कि 'लघुकथा को कहानी की भाषा में लिखकर यथेष्ट प्रभावशाली नहीं बनाया जा सकता, उसकी अपनी भाषा है।'

डॉ. रेणु शाह के शब्दों में समझना भी आवश्यक है—अच्छी भाषा की एक अनिवार्य शर्त है कि पहाड़ी झरने की तरह, ऊबड़-खाबड़, चट्टान और समतल, सीधी-सपाट और वक्रता, इन तमाम असम-विषम स्थितियों से गुजरने के बाद भी उससे एक अविरल प्रवाह बना रहे। ये विशमताएँ अगर भाषा के प्रवाह को खंडित करती हैं तो भाषा सौष्ठव में दुर्बलता आ जाती है। उसका सौंदर्य खंडित हो जाता है।

डॉ. रेणु शाह के शब्दों में समझना भी आवश्यक है—अच्छी भाषा की एक अनिवार्य शर्त है कि पहाड़ी झरने की तरह, ऊबड़-खाबड़, चट्टान और समतल, सीधी-सपाट और वक्रता, इन तमाम असम-विषम स्थितियों से गुजरने के बाद भी उससे एक अविरल प्रवाह बना रहे। ये विषमताएँ अगर भाषा के प्रवाह को खंडित करती हैं तो भाषा सौष्ठव में दुर्बलता आ जाती है। उसका सौंदर्य खंडित हो जाता है।

शमीम शर्मा भाषा की बात तो करती हैं, किंतु वे यह भी कहती हैं कि लघुकथाकार के पास भावनाओं में बहने का समय नहीं होता है। उसके लिए बात को संक्षेप में कहना और अपनी बात को धारदार बनाए रखना जरूरी होता है। लघुकथा की भाषा अति सुगठित, परिमार्जित, मापी-तौली, सजीव एवं प्रभावोत्पादक होती है। इने-गिने शब्दों में ही लघुकथाकार पूरा चित्र खींच देता है और जिस क्षण या मन:स्थिति का वह निरूपण कर रहा होता है। लगने लगता है, उसे हम जी रहे है, भोग रहे हैं। विष्णु प्रभाकर का मत है, ''उसकी अपनी भाषा होती है, न भावुकता, न ऊहापोह, न आसक्ति, पर अर्थवहन की क्षमता में अपूर्व।'' लघुकथाकार का सबसे बड़ा दायित्व यह होता है कि वह अपनी बात संक्षेप में कहते हुए भी उसे जानदार और धारदार बनाए रखे। भावनाओं मे बहने अथवा प्रसंगवश कुछ भी कह उठने का अवसर वह नहीं पाता। उसे तो सीधे लक्ष्य पर पहुँचना होता है, जैसे शिकारी की गोली बंदूक से छूटकर सीधे निशाने पर ही लगती है। जरा सा भी इधर-उधर झाँका

कि निशाना चूका। न ही लघुकथा के कैनवास में स्थूलत: इतना स्थान होता है कि पाठक को संतुष्टि प्रदान कर सके, बल्कि वह पाठक के मन की राख को कुरेदकर स्वयं तो शांत हो जाती है, परंतु उसके भीतर सोई हुई चिंगारियों को जगा देती है, आग-सी लगा देती है, भड़का देती है, तड़पा देती है, झकझोर देती है। पाठक चिंतन के लिए विवश हो जाता है।''

लघुकथाकार यदि किसी अन्य भाषा का प्रयोग भी करता दिखाई देता है तो वह आवश्यकतानुसार ही करता है। पात्रों के चित्रण हेतु कई बार लघुकथाकार अन्य भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग करता है। एकाध अंग्रेजी शब्द का प्रयोग तो अधिकतर लघुकथाओं में होने ही लगा है, परंतु कई बार तो पूरे के पूरे वाक्य भी प्रयुक्त किए जाते हैं। उदाहरण के लिए डॉ. राजेंद्र कुमार वर्मा की लघुकथा 'ट्रेडिशन' और सुकेश साहनी की लघुकथा 'खेल : रेनड्रॉप के चैटरूम में' का अवलोकन किया जा सकता है। कई बार लघुकथाओं के शीर्षक भी अंग्रेजी में ही मिलते हैं। जैसे शकुंतला किरण की 'कैरियर', हरनाम शर्मा की 'ट्यूशन' और डॉ. सतीश दुबे की 'क्रॉसिंग' आदि। अधूरे वाक्यों और कई बार तो मात्र चिह्नों तक का प्रयोग लघुकथाकार करता है। संक्षेप में, इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि समकालीन लघुकथा की भाषा अत्यंत सरल और सजीव है। उसका भाषा पक्ष इतना समृद्ध और विशाल है कि एक पंडित भी, एक पागल भी, मंत्री महोदय भी, जज साहब भी, बड़े-से-बड़ा अफसर भी, क्लर्क भी, टिकट चैकर भी, रिक्शा चालक भी, भिखारी और मजदूर भी उसमें अपने अनुरूप भाषा पा जाता है। आडंबर कृत्रिमता व प्रदर्शन का यहाँ तनिक भी अवकाश नहीं।

लघुकथाकार को भाषाओं के अधिक चक्कर से बचकर रहने की सलाह भी शमीम शर्मा ने दी है। वे कहती हैं—''लघुकथाकार को शब्द भंडार तथा चमत्कारिता से बचना चाहिए।'' जैनेंद्रजी के शब्दों में—'असल में प्रभाव शब्द के पीछे शक्ति में से आ जाता है। शब्द के पास अपनी क्या पूँजी है। कोशों को अकसर कबाड़ी के यहाँ ले जाते ही तौल से बिकते देखा है। शब्द कूड़ा है, आदमी को चाहिए, उन्हीं को हीरा बना दे।''

भगीरथ संकेतिकता का महत्त्व हमें बताते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में वे प्रतीकों, बिंबों व रूपक, अलंकारों के महत्त्व को भी समझाते हैं। लघुकथा में, विशेष तौर पर, लघु होने की वजह से, भाषा की सांकेतिकता का अतिरिक्त महत्त्व है। सांकेतिकता रचनाकार को अनावश्यक विवरणों से बचाती है, रचना में खूबसूरती लाती है। सांकेतिक भाषा के उपादानों में प्रतीक, बिंब, रूपक, अलंकार का अपना महत्त्व है। भाषा का महत्त्व यही तो है न कि लघुकथाकार जिस वेदना को, जिस संदेश को पाठकों तक पहुँचाना चाहता है, वह पाठकों तक पहुँच जाए। यानी संप्रेषणीयता। जब लेखक रचना करने बैठता है तो एक विशाल पाठक वर्ग उसके मानस में होता है, जिनकी मानसिकता का उसे ध्यान रखना पड़ता है, क्योंकि अपनी रचनाओं से अपने पाठकों की मानसिक आवश्यकताओं को तो पूरा करता ही है, उनके मानसिक संस्कार को भी वह बदलना चाहता है। इसीलिए लेखक को बहुत अधिक सावधानी रखनी पड़ती है कि उसकी भाषा में संप्रेषण की क्षमता भरपूर आ जाए। उसे ध्यान में रखना होता है कि वह अपनी रचना में जिस वस्तु का विधान कर रहा है, भाषा उसे ग्रहण किए जाने में बाधा न बने। लेकिन भाषा के संदर्भ में हमें डॉ. रेणु शाह का यह कथन कहीं अधिक अपील करता है कि 'किसी भी रचनाकार की भाषा को दो तरह से देखा जा सकता है—पहला, सौष्ठव और दूसरा, स्वरूप। सौष्ठव के अंतर्गत उन शक्तियों का विवेचन होता है, जिसके कारण भाषा प्राणवंत होती है, सुंदर होती है और स्वरूप के अंतर्गत व्याकरण निष्ठा आती है।

उपरोक्त के आधार पर हमें यह निर्णय लेने में सहायता मिलती है कि लघुकथा की भाषा का अच्छा होना या न होना सिर्फ इसी बात पर निर्भर नहीं करता है कि उसके पात्रों ने अपने परिवेश और अपने वातावरण के अनुसार उद्‌गार कहे हैं; बल्कि यह देखना भी कहीं अधिक जरूरी है कि लघुकथाकार ने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह सौष्ठव, संप्रेषणीयता और प्रवाहमयता के बिंदुओं पर कहाँ ठहरती है। चूँकि भाषा की संप्रेषणीयता के लिए यह आवश्यक होता है कि शब्दावली, मुहावरे, कहावतें, टोन···सभी लोक प्रचलित हों। प्रतीक, बिंब, अलंकरण भी परिचित हों और लोक व्यवहार का अंग बनकर आए हों।

प्रखर आलोचकीय दृष्टि से देखें तो हिंदी लघुकथा के पात्र उस तरह व्यवहृत नहीं होते, जिस तरह हिंदी कहानी अथवा उपन्यास में होते हैं। कहानी में पात्रों के अलावा उसके नैरेटर के पास भी सोचने व कहने के लिए पर्याप्त समय व स्पेस होता है; जबकि लघुकथा के नैरेटर और पात्र, दोनों ही शाब्दिक मितव्ययिता के अनुशासन में बँधे होते हैं, उनके पास 'समय की सीमा' होती है (हालाँकि वे जल्दी में नहीं होते)। वे साँस भी लेते हैं तो आवाज होती है। उनकी आवाज में यदि पाठकों तक पहुँचने की क्षमता नहीं होती है तो लघुकथा निष्प्रभ रह जाती है। लघुकथाकार स्वयं बेशक कुछ न बोले, उसका पात्र और बुनी हुई परिस्थितियाँ बोलती नजर आनी चाहिए। दूसरी बात यह कि बेशक पात्र भी न बोलें, उनका मौन पाठक को उद्वेलित करनेवाला होना चाहिए, उस मौन का स्फोट-स्वर दूर तक पहुँचना चाहिए। कहानी का पात्र आराम के मूड में हो सकता है; पर लघुकथा के पात्र के लिए आराम हमेशा हराम है।

इसका सबका अर्थ यह न लगाया जाए कि लघुकथा लिखना मुश्किल काम है। हाँ, प्रभावशाली लघुकथा लिखना वाकई मुश्किल काम है। लघुकथा लिखने के लिए कोई मापदंड नहीं है; लेकिन अच्छी लघुकथा लिखने के मापदंड अवश्य हैं। जिस तरह जीने के लिए कोई मात्र श्वास का अंदर जाना-आना ही पर्याप्त है; लेकिन संयमित जीवन जीने के लिए कुछ अनुशासन-विशेष और कुछ मापदंड-विशेष होते हैं, उसी तरह···।

कविकुल, खरबंदा निवास, स्टेशन रोड, बिजनौर-२४६७०१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ८६५०५६७८५४

माँ

● अशोक शर्मा 'भारती'

बच्चे बहुत देर से आपस में खेल रहे थे। एकाएक उनको न जाने क्या सूझा कि खेलना छोड़कर माँ के पास आकर झगड़ने लगे।

छुटका घमंड से इतराते हुए बोला, 'माँ मेरी है। वह मुझे बहुत प्यार करती है।'

'अबे, जा-जा। कभी अपनी सूरत देखी है आईने में। माँ, तुझ कालिए को नहीं, मुझे प्यार करती है।' मँझले ने अपना गुबार निकाला।

बड़की ने दोनों को दुत्कारा, 'अरे, तुम दोनों किस खेत की मूली हो। मैं माँ का सब काम करती हूँ। माँ मुझे प्यार करती है। क्यों माँ, है न, जवाब दो?'

माँ बहुत देर से उनकी बातें सुन रही थी। उसने एक बार तीनों को देखा और कहा, 'माँ बस माँ होती है। उसके लिए कोई भी बेटा छोटा या बड़ा नहीं होता। सब बराबर और एक से होते हैं। चाहे कोई काला हो या गोरा, अच्छा हो या बुरा। मैं किसी एक की नहीं, तुम सबकी माँ हूँ।'

कहकर उसने सभी बच्चों को अपनी गोद में समेट लिया।

सुपरिचित साहित्यकार। लघुकथा, कहानी, वयंग्य-लेखन। पंजाबी एवं गुजराती भाषा में लघुकथाओं का अनुवाद। कुछ लघुकथाओं का नाट्य रूपांतर एवं मंचन। 'तलाश जारी है' (लघुकथा-संकलन), 'तुम्हारे लिए' (कविता-संकलन) एवं एक कविता-संग्रह 'नागफनी के फूल' प्रकाशित।

संवेदनहीन

वह ब्राह्मण था, पंडित करुणाशंकर चतुर्वेदी। जब कभी वह अपने सिर पर हाथ फेरता, बालों में लगी चोटी उसकी उँगलियों में आ फँसती। पिता के कहे हुए शब्द एकाएक मस्तिष्क में कौंध जाते, 'यही हमारी पहचान है बेटा। हमारे ब्राह्मण होने की निशानी।'

'बाबूजी, ओ बाबूजी! जल्दी कीजिए न। क्या सोचने लगे?' वह दूर खड़ी बार-बार करुण पुकार कर रही थी।

उसकी सोच-प्रक्रिया भंग हो चुकी थी। वह उस औरत की ओर देखने लगा। पास ही उसकी तगारी, झाड़ू और कचरा उठाने की गाड़ी खड़ी हुई थी।

वह अपनी कार की ओर देखने लगा, जिसमें पिताजी ने अपने हाथों से भगवान् की मूर्ति स्थापित की थी।

'नहीं-नहीं, मैं नहीं चल सकता!' एकाएक उसके चेहरे पर कठोर भाव आ गए।

'बाबूजी, ओ बाबूजी! देखिए न, मेरा बच्चा किस तरह तड़प रहा है, कितना खून बह रहा है। चलिए न बाबूजी, अभी आप ही इसके भगवान् हैं। बचा लीजिए।'

'नहीं-नहीं, मैं नहीं चलूँगा।' उसने कठोरता से उसे दुत्कारा और अपनी गाड़ी की ओर बढ़ने लगा।

'बाबूजी···!' वह एक बार फिर जोर से चीखी। लेकिन अब उसकी पुकार में वह करुणा नहीं थी।

उसने पलटकर देखा। बच्चा हिचकी लेकर दम तोड़ रहा था। कुछ कदम वह बच्चे की ओर दौड़ा, फिर रुक गया। लगा उसके पाँव किसी ने पकड़ लिये।

'बाबूजी मर गया। मर गया बाबूजी!' वह पागलों की तरह चीखने लगी, 'मर गया बाबूजी। बाबूजी मर गया!'

अंतहीन

अंदर लॉन में ठहाकों के साथ विदेशी शराब की महक हवा में चारों तरफ फैल रही थी। वह बहुत देर से बाहर खड़ा आने-जानेवालों से 'दे दो बाबूजी। दे दो बाबूजी! भगवान् आपका भला करेगा।'' बोल रहा था। लेकिन किसी ने कुछ भी नहीं दिया।

भूख से उसकी आँतें खिंचने लगी थीं। अंदर से अब शराब की महक के साथ-साथ खाने की खुशबू भी आ रही थी। वह कुछ आश्वस्त हुआ। देर रात तक पार्टी का दौर चलता रहा। कुछ ड्राइवर के सहारे और कुछ नशे में झूमते लोग वापस अपनी कार में जाने लगे थे।

वह पेट दबाए कुछ पाने की आशा में आगे बढ़ आया। नौकरों ने बचा हुआ जूठा खाना बाहर लाकर डाल दिया। कुत्तों का झुंड खाने पर टूट पड़ा। और वह भी।

स्मृतिका कुटीर,
ई. के-४३५, स्कीम नं. ५४,
विजय नगर, इंदौर-४५२०१० (म.प्र.)
दूरभाष : ०७३१२५५८५०९

तेरा नाम क्या है?

● घनश्याम अग्रवाल

हर बस्ती की तरह यह बस्ती भी दो हिस्सों में बँटी थी। एक ओर हिंदुओं का मोहल्ला था, दूसरी ओर मुसलमानों का। हिंदू मोहल्ले के आसपास सात-आठ घर उसी तरह मुसलमानों के थे, जिस तरह मुसलिम मोहल्ले के आस-पास सात-आठ घर हिंदुओं के थे।

दंगा शुरू हुआ। दंगा भड़का और भड़कता ही गया। चारों ओर मार-काट, चीख-चीत्कार मची थी। 'अल्लाह-हो-अकबर', 'हर-हर महादेव' की सुकून देनेवाली आवाजें दहशत बढ़ा रही थीं। ऐसे में जो होना था, वो हुआ। यानी मुसलमानों ने अपने आस-पास के हिंदू घरों में आग लगा दी। कुछ जल मरे। जो बाहर निकले, वे मारे गए। कुछ इधर-उधर भाग भी खड़े हुए, जिन्हें छुरे, भाले, बल्लम, तलवारों और नारों के साथ तलाशा जा रहा था।

हिंदू भला किस बात में कम थे? ऐसा ही हूबहू उधर भी हुआ।

इस भगदड़ में मुसलमान का एक चार-पाँच साल का बच्चा बचते-बचाते, भगते-भगाते तेजी से एक घर में घुस गया।

'चचा, मुझे बचा लो, चचा मुझे बचा लो' कह बुरी तरह पंडितजी से लिपट गया। पंडितजी ने सोचा, अगर दंगाई इधर आए तो यह बच्चा तो मारा ही जाएगा, इसे शरण देने के अपराध में मुझे भी नहीं छोड़ेंगे। वे उसे हटाना चाहते थे, पर बच्चे की पकड़ और मासूमियत इतनी गहरी थी, कि वे उसे हटा न सके। झट बच्चे से पूछा, 'तेरा नाम क्या है?'

'रहमान!'

'रहमान नहीं। अब कोई पूछे तो अपना नाम 'राम' बतलाना। क्या कहेगा अपना नाम?'

'रा···राम !' बच्चे ने कहा।

'हाँ, राम ही बतलाना।'

तभी कुछ दंगाई 'हर-हर महादेव' कहते हुए घर में घुस आए। एक दंगाई को शक हुआ। लाल-लाल आँखों से लपलपाता छुरा सामने रख उसने बच्चे से पूछा, 'तेरा नाम क्या है?'

'र···र···राम!'

दंगाई नारे लगाते चले गए। पंडितजी ने गहरी साँस ली और कहा, 'जब तक शांति नहीं हो जाती, कोई पूछे तो अपना नाम 'राम' ही बताना। बाद में तुझे तेरे घर पहुँचा देंगे। ले केला खा। मैं सोता हूँ, तू भी सो जा।'

अपने-अपने सपने (लघुकथा-संग्रह), तीन हास्य-व्यंग्य एवं हास्य कविता-संग्रह, आवाज आतला बाहेर चाही (लघुकथाओं का मराठी में अनुवाद संग्रह)। 'काका हाथरसी हास्य-व्यंग्य पुरस्कार', महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई द्वारा लघुकथा-संग्रह 'अपने-अपने सपने' पर मुंशी प्रेमचंद पुरस्कार, अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत।

पर बच्चे को नींद नहीं आ रही थी। सारा मंजर फिर से दिखाई देने लगा। लाल-लाल आँखें, लपलपाता छुरा। मारे डर के उसे अब्बा याद आए, आपा याद आई, घर याद आया। वह बाहर निकल गया। सन्नाटे में दूर से जले घरों की लपटें और धुआँ दिखाई दे रहा था। बच्चा अपने घर को याद करता हुआ आगे बढ़ता गया।

जले हुए घरों की शक्लें एक-सी होती हैं। बच्चा घर भूल गया। भटकता हुआ वहाँ पहुँच गया, जहाँ से मुसलिम मोहल्ला शुरू होता था। वहाँ भी वैसे ही दंगाई नारे लगाते घूम रहे थे।

'वो जा रहा है सँपोला! मारो···मारो···मारो!'

बच्चा दंगाइयों के बीच फिर घिर गया। वैसी ही लाल-लाल आँखें। वैसे ही लपलपाते छुरे के साथ एक दंगाई ने घूरते हुए पूछा, 'तेरा नाम क्या है?'

'र···र···राम!'

और एक चीख निकल गई।

फैसला

'यह नेता है, इसने दंगे बोये। इसे दस कोड़ों की सजा दी जाती है।'

'यह धर्मगुरु है, इसने दंगे फैलाए। इसे बीस कोड़ों की सजा दी जाती है।'

'यह लेखक है, इसके होते दंगों का माहौल बना। इसे सौ कोड़ों की सजा दी जाती है।'

अलसी प्लाट्स, अकोला-४४४००१
दूरभाष : ०९४२२८६०१९९

लघुकथा

बैल की जून

● आशा शैली

नाकारा बेटे के कर्जे चुकाते-चुकाते मास्टरजी की पेंशन कब चुक जाती पता ही नहीं चलता था। रोज किसी-न-किसी दुकानदार का परचा आ ही जाता था। उनके नम्र स्वभाव का लाभ बेटा तो उठा ही रहा था, गली-मोहल्ले के दुकानदार भी पीछे नहीं रहते थे।

बेटा था कि कोई काम करने को तैयार ही नहीं होता। मास्टरजी उसे कहीं भी काम पर लगवाते, वह थोड़े ही दिनों बाद काम छोड़कर फिर से गलियों में आवारागर्दी करता दिखाई देने लगता।

इस समय वह आँगन में बँधी गाय को घास डालकर खाट पर बैठे ही थे कि बेटा सीटी बजाता हुआ दरवाजे में दिखाई दिया।

''आओ बेटा! कहाँ से आ रहे हो? बैठो।''

''मुझे तो भूख लगी है। खाना खा लूँ?''

''खा लेना। कभी तो बाप के पास भी बैठ लिया करो।''

''हैं! आज आपको मेरी क्या आवश्यकता पड़ गई?'' बेटा खाट की पाटी पर ही बैठ गया, ''कहिए।''

''वो बेटा! मैं सोचता था, तुम कुछ काम करते तो तुम्हारी शादी कर देते।''

''तो कर दीजिए न। वो क्या मेरे काम करने पर ही हो सकती है?''

''हो तो सकती है, पर खर्चा तो होगा ही न।''

''तो··· ?''

''मैं कर्ज लेकर नहीं मरना चाहता। दूसरे जन्म में बैल की जून भुगतना नहीं चाहता। शास्त्र कहता है, जिसका कर्ज रह जाए, उसके घर में बैल बनकर जनम लेना पड़ता है।''

''पिताजी! आजकल न तो खेत हैं और न ही लोग गाय-बैल पालते हैं। सो, आप चिंता न करें। आपको बैल नहीं बनना पड़ेगा। एक बात और कहूँ?''

मास्टरजी ने जिज्ञासापूर्वक पुत्र की ओर देखा, ''हो सकता है आपने पिछले जनम का मेरा कर्ज देना हो। अब मैं अपना कर्जा वसूलने के लिए बैल तो खरीदने से रहा, सो आराम से बेटे का कर्जा उतारिए।''

कहकर वह उठा और घर के अंदर चला गया।

तीर

दो ही दिन हुए थे पारुल को मकान बदले। नया माहौल। नए पड़ोसी। नया परिचय। सो काम-धाम किनारे रखकर अभी तो बतियाना ही था।

सुपरिचित लेखिका। विभिन्न विधाओं की १७ पुस्तकें प्रकाशित। अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित। उत्तराखंड सरकार द्वारा 'तीलू रौतेली' पुरस्कार २०१६ प्रदत्त। संप्रति आरती प्रकाशन की गतिविधियों में संलग्न। प्रधान संपादक, त्रैमासिक हिंदी पत्रिका 'शैल सूत्र'।

झुलसाती गरमी से राहत देने के लिए खेतों की शाम से बढ़िया क्या होता। सो, बाहर खुली छत पर कुरसी डाल ली। तभी, बगल के सैटवाली पड़ोसन बाहर निकल आई। बातों-ही-बातों में उसने पारुल को बता दिया कि उसके दो बेटियाँ और एक बेटा है। पारुल अकेली क्यों है? यह जानना उसके लिए बहुत आवश्यक था। पर पारुल ने झट बात बदलकर पूछा, ''दूध कहाँ से लाते हो?''

''यहीं, पास ही है। गाय का दूध अच्छा मिल जाता है। जरा पतला तो होता है, पर सस्ता भी तो है।'' वह एक साँस में बोल गई, ''आपको भी चाहिए क्या?''

''नहीं। मैं कभी घर में हूँ, कभी नहीं। कौन देगा मुझे? डेरी से जब चाहिए, जितना चाहिए ले लेती हूँ।''

''कितना लेती हैं?''

''आधा किलो। मेरा काम चल जाता है। मलाई से मक्खन बन जाता है और मेरे नाश्ते का काम हो जाता है।'' पारुल को पता था कि वह दूध का हिसाब पूछेगी, इसलिए पूछने से पहले ही सब बता दिया।

''मैं एक किलो लेती हूँ, पर मेरा तो दूध-मलाई, सब बेटे के लिए होता है।'' वह बड़ी शेखी से इठलाई। उसका बेटा कॉलेज में पढ़ रहा था और बेटियाँ नौवीं और ग्यारहवीं में थीं।

''लड़कियों को दूध नहीं देतीं आप? वे भी तो पढ़नेवाली हैं।'' पारुल ने सीधा-सा सवाल किया।

''अरे! उनके लिए तो छाछ ही काफी···'' उसके मुँह से निकला; लेकिन तुरंत ही उसे लगा कि सामने से सवाल नहीं, तीर आया है। सँभलकर बोली, ''वे तो पसंद ही नहीं करतीं। कढ़ी-भात में खुश हैं।'' और अगला तीर आने से पहले ही भीतर को भाग गई।

इंद्रा नगर-२, निकट वन विभाग, पो. लालकुआँ
नैनीताल-२६२४०२
दूरभाष : ९४५६७१७१५०

अंतर

● प्रभात दुबे

सुबह-सुबह एक सड़क छाप से गंदे, मरियल और बीमार कुत्ते ने एक स्वच्छ, मोटे ताजे, खुश किस्मत, अच्छे घरवाले कुत्ते को ध्यान से देखते हुए कहा, ''कहो टॉमी! बहुत दिन बाद दिख रहे हो! मुझे पहचानते हो?''

''हाँ-हाँ, क्यों नहीं, तुम बरसों पहले मेरे दोस्त हुआ करते थे। यह तो तकदीर की बात है कि मैं एक बहुत बड़े सेठ के यहाँ पहुँच गया और तुम अभी भी यहीं सड़क पर हो।''

''यह सब छोड़ो टॉमी, तुम यह बताओ कि हमारे जीवन-स्तर में जो अंतर है, क्या इसका असर तुम्हारी सोच पर भी पड़ा है?''

''मेरी-तुम्हारी सोच में भी वही अंतर है, जो मेरे-तुम्हारे रहन-सहन में है।''

''वो कैसे?''

''एक घटना सुनाता हूँ, एक दिन मेरे मालिक ने मुझे किसी बात पर बहुत मारा?''

''तो तुम दर्द से चीखे-चिल्लाए होगे?'' मरियल कुत्ते ने उत्सुकता से पूछा।

''नहीं, हमारे यहाँ चीखना-चिल्लाना अशिष्टता माना जाता है।'' टॉमी ने गर्व से बताया।

''फिर तुमने क्या किया?''

''मैंने कुछ नहीं किया, केवल वक्त का इंतजार करता रहा?''

''उसके बाद?'' मरियल कुत्ते ने पूछा।

''पिछले रविवार रात को मालिक के घर में चोर घुसे। मैंने उन्हें देख लिया, आँखें बंद कर मैं चुपचाप लेटा रहा और ईश्वर से मनाता रहा कि चोर सारा माल ले जाए, कुछ भी न बचे।''

''फिर?'' सड़क छाप कुत्ता रोमांचित होकर पूछ रहा था।

''ईश्वर ने मेरी प्रार्थना सुन ली और चोर सारा सामान ले गए।''

''अब मैं सब समझ गया।'' मरियल कुत्ते ने बड़े विश्वास से कहा।

''क्या?'' टॉमी गुर्राया।

''यही कि तुम कुत्ते से आदमी में तब्दील हो चुके हो।''

गरम हवा

महानगर की एक शाम। सूरज डूब रहा था। रोज की तरह कॉलोनी के इस पार्क में गुमसुम से दो बूढ़े आदमी सीमेंट की एक बेंच पर आकर बैठे ही थे कि तभी एक बूढ़े ने आँखों से चश्मे को उतारकर उसके काँच पहनी हुई कमीज के निचले हिस्से से साफ करते हुए कहा, ''यार वर्माजी, पिछले तीन दिनों से शर्माजी दिखाई नहीं दे रहे, क्या बीमार हैं?''

सुपरिचित रचनाकार। अब तक विभिन्न पत्रिकाओं में रचनाएँ तथा 'नंदिता तुम कहाँ हो' (कहानी-संग्रह) प्रकाशित। गायत्री साहित्य सम्मान से सम्मानित। संप्रति स्वतंत्र लेखन।

वर्माजी ने बड़ी धीमी और दु:खी आवाज में बतलाया, ''खन्ना साहब, आज दोपहर मेरी बहू को घर की नौकरानी बतला रही थी कि शर्माजी को उनकी बहू और बेटा वृद्धाश्रम छोड़ आए हैं। अब वे शायद ही कभी वापस आएँ।''

गहरी खामोशी के बाद एक लंबी साँस लेकर वर्माजी ने फिर कहा, ''खन्नाजी, मैं चलता हूँ।''

''अरे यार, ऐसी भी क्या जल्दी है? इतनी जल्दी तो आप कभी नहीं जाते। आज कुछ विशेष बात है क्या?'' खन्नाजी ने बड़ी आत्मीयता से पूछा।

सहमते व बुझे स्वर में वर्माजी ने बतलाया, ''खन्ना साहब, नौकरानी के जाते ही बहू ने मुझे धमकाते हुए कहा था कि सुन लिया न बाबूजी, मुझे और उनको आपका ज्यादा घूमना-फिरना पसंद नहीं है। घर में रहकर घर के कामों में हाथ बँटाया कीजिए। वरना आप स्वयं समझदार हैं।''

''सच कहते हो मेरे दोस्त।'' वे एक गहरी साँस लेकर बोले, ''अच्छा चलिए, मैं भी आपके साथ ही चलता हूँ।'' यह कहते हुए धीरे से खन्नाजी उठे। ''अरे, आप क्यों चल रहे हैं। आप कुछ देर अभी बैठ सकते हैं।''

''नहीं यार'', काँपती आवाज में सिर झुकाकर खन्नाजी बोले।

''क्यों क्या हुआ?'' बेहद चिंतित स्वर में वर्माजी ने पूछा।

''कुछ नहीं, बस आप इतना समझ लीजिए कि हमारे खिलाफ भी अब हवाएँ गरम होना शुरू हो गई हैं। कभी किसी भी दिन मुझे भी शर्माजी की तरह...'' और उनकी आँखों से बहते हुए आँसुओं ने बिना कहे ही सबकुछ कह दिया। वर्माजी ने खन्नाजी का काँपता हुआ बाँया हाथ बड़े प्यार से अपने दाहिने हाथ में पकड़ा और दोनों पार्क के गेट से होते हुए सड़क के किनारे, धीरे-धीरे बोझिल कदमों से चुपचाप अपने मकानों की ओर चल दिए। अब सूरज डूब चुका था।

पुष्पांजली स्कूल के सामने,
भक्तिनगर, जबलपुर-४८२००१ (म.प्र.)

मौत

● **बलराम**

''आज मैं जल्दी नहीं आऊँगी?''

''क्यों?''

''तुम टी-ट्वेंटी देखोगे।''

''शायद हाँ, शायद नहीं, पर तुम देर से क्यों आओगी?''

''तुम्हारा मैच देखना मुझे बरदाश्त नहीं।''

''तुम आ जाना, मैं कहीं और देख लूँगा।''

''मैच के सिवा कुछ नहीं बचा?''

''बचा है, शराब पीते हुए मजे लूटना, जुआ खेलते हुए जीतना-हारना, लड़की पटाकर मौज-मस्ती करना, चौराहे पर खड़े होकर खूबसूरत चेहरे देखना।''

''मुझसे तुम्हें कोई मतलब नहीं?''

''है क्यों नहीं। तुम जो कहती हो, कर देता हूँ। वॉशरूम साफ करने से लेकर तुम्हारा सिर दबाने तक। कुछ और हो तो वह भी बता दिया करो!''

''तुम्हें मुझसे कुछ कहना नहीं है!''

''कहा, बहुत कहा। जितना तुम सुन सकती थीं, तुमने सुना भी, लेकिन अब मेरा कहा तुम सुनती कहाँ हो।''

''कहकर देखो तो सही।''

''अब कुछ कहने का मन नहीं। मेरा तो मन ही मर गया।''

''ऐसा मैंने क्या किया कि सारा दोष मेरे मत्थे मढ़ रहे हो?''

''मैं तुम्हें दोषी नहीं समझता। हालात में फँसी तुम कुछ कर नहीं पातीं!''

''क्या नहीं कर पाती मैं?''

''वही, जो एक स्त्री को करना चाहिए।''

''मैंने तो कभी मना नहीं किया!''

''तो फिर आओ!''

''आज नहीं, कल!''

''कल कुछ नहीं होता!''

''उफ···'' पत्नी ने गहरी साँस छोड़ी और किचन की ओर लपकी।

''तुम कुकर की आवाज तो सुन लेती हो, पर मेरी आवाज नहीं सुन पातीं। इसलिए मैंने तुमसे कुछ चाहना ही छोड़ दिया।''

''और टी.वी. को चाहने लगे!''

''तुम सही समझ रही हो!''

''मैं भी किसी को चाहने लगूँ तो···''

''चाहती नहीं हो?''

''किसको?''

''अब मेरा मुँह न खुलवाओ।''

''तो अब मुझ पर यह इल्जाम भी लगाओगे?''

''इल्जाम नहीं, सच है।''

''किसको चाहने लगी हूँ, बताओ तो जरा?''

''छोड़ो यार, उस लफड़े में फँसने से क्या फायदा?''

''नहीं, तुम्हें गुड्डू की कसम! बताओ।''

''नहीं यार···''

''मेरे प्यार की कसम! बताओ, मैं किसे चाहने लगी हूँ?''

''मौत को, तुम मौत को चाहने लगी हो। प्रिय के बुलाने पर जब प्रिया नहीं आती तो मौत आने लगती है। हमारे बीच अब वही है।''

सुनकर स्त्री गमगीन हो उठी। सोते गुड्डू और जागते पति को वैसा ही छोड़ दफ्तर की तैयारी में जुट गई।

सी-६९, उपकार अपार्टमेंट,
मयूर विहार, फेज-१, दिल्ली-११००९९
दूरभाष : ९८१०३३३९३३

'कलम हुए हाथ', 'गोआ में तुम', 'अनचाहे सफर', 'रुकी हुई हंसिनी' (कथा-संग्रह), 'मंजरी की वापसी' और 'कारा' (उपन्यास), 'माफ करना यार', 'वो घड़ी न आती काश' (संस्मरण), 'मेरा कथा समय' तथा 'लोक और इतिहास का मिलन' (समीक्षा) विशेष चर्चित। 'विश्व लघुकथा कोश' के संपादक बलराम को 'साहित्य भूषण सम्मान', 'गणेशशंकर विद्यार्थी सम्मान', 'साहित्यकार सम्मान' प्राप्त। संप्रति समाचार पत्रिका 'लोकायत' के संपादक।

दर्द

● सुभाष नीरव

सुपरिचित कथाकार, कवि एवं अनुवादक। पाँच कहानी संग्रह हिंदी में तथा एक पंजाबी में प्रकाशित। दो लघुकथा संग्रह, दो कविता-संग्रह, दो बाल कहानी-संग्रह। 'माता शरबती देवी स्मृति पुरस्कार', 'श्री बलदेव कौशिक स्मृति सम्मान' से सम्मानित।

कई बरसों से मेरा-उसका साथ रहा है। पहले जब भी मैं उसके सामने होता था, वह मेरी तारीफ किया करता था। जैसे-जैसे उम्र का शिकंजा मुझ पर बढ़ता चला गया, वह मुझसे मानो असंतुष्ट-सा रहने लगा। घर से निकलने से पहले अथवा घर लौटने पर जब मैं उसको 'हैलो' कहकर मुखातिब होता तो वह मुझमें मीनमेख निकालना शुरू कर देता। प्रारंभ में वह जो कमियाँ निकालता था, मैं उन कमियों को दूर करने की कोशिश करता था। कोशिश करने पर कुछ कमियाँ दूर हो जाती थीं, पर ज्यादातर दूर नहीं होती थीं। अलबत्ता उन्हें उसके सामने छिपा लेने में मैं कामयाब हो जाता था। इसपर वह थोड़ा मुसकराता तो था, लेकिन जल्द ही फिर से मुझे मेरे वो वो दोष दिखाने-बताने लग पड़ता था, जिन्हें मैं देखना-सुनना कतई पसंद नहीं करता।

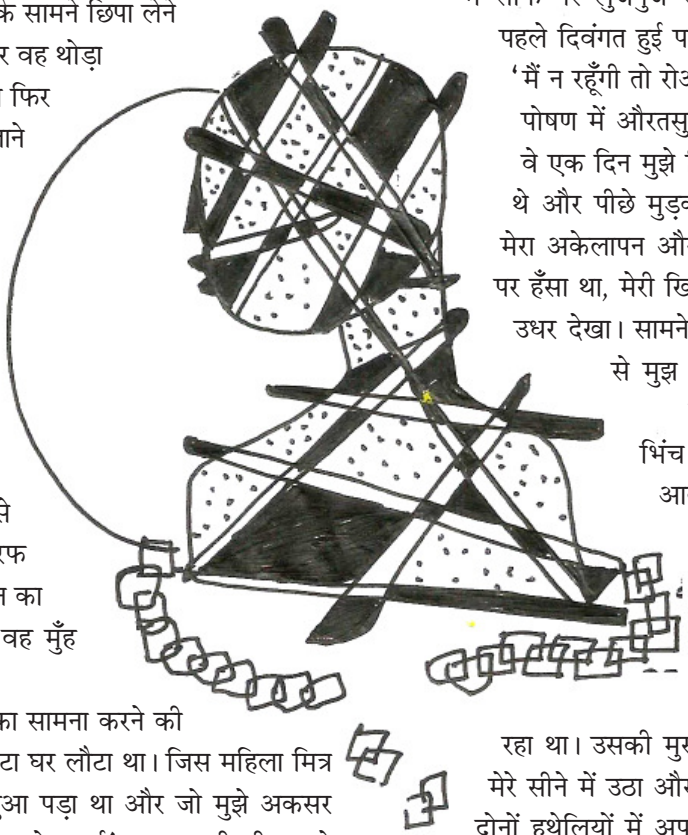

उस दिन मैं बेहद खुश था। मैंने उसके सामने ही मूँछों और कनपटी के बालों को डाई किया। वह सारे समय मुझे घूरता रहा। बन-ठनकर जब मैं घर से बाहर निकलने लगा तो मुझे जैसे कुछ याद आया। मैंने उससे 'बाय-बाय' कहते हुए उसकी तरफ एक मुसकान फेंकी। मेरी मुसकान का उस पर कोई असर नहीं हुआ। वह मुँह बनाए मुझे घूरता रहा।

शाम को घर लौटा तो उसका सामना करने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। मैं लुटा-पिटा घर लौटा था। जिस महिला मित्र से मिलने को मैं सुबह बेसब्रा हुआ पड़ा था और जो मुझे अकसर 'हाय हैंडसम' या 'यू आर लुकिंग सो स्मार्ट' कहा करती थी, उसने मुझे पहली बार 'हाय ओल्डमैन' कहा था और जब मैं शाम को उससे विदा हुआ तो मेरी हालत ऐसी थी, मानो गुब्बारे में से हवा निकल गई हो। जेब में पड़ा ए.टी.एम. कार्ड कराह रहा था। मेरी जेब मातम मना रही थी।

मैं सोफे पर लुंजपुंज-सा होकर बैठ गया। एकाएक कई बरस पहले दिवंगत हुई पत्नी का कहा वाक्य कानों में गूँजने लगा, 'मैं न रहूँगी तो रोओगे, देखना।' जिन दोनों बेटों के पालन-पोषण में औरतसुख को मैंने बरसों अपने से दूर रखा था, वे एक दिन मुझे नितांत अकेला छोड़कर विदेश में जा बसे थे और पीछे मुड़कर नहीं देखा था। पीछे रह गया था मैं, मेरा अकेलापन और एक वह। सहसा मुझे लगा, कोई मुझ पर हँसा था, मेरी खिल्ली-सी उड़ाता हुआ। मैंने घर में इधर-उधर देखा। सामने दीवार से पीठ टिकाए वह बड़ी बेहयाई से मुझ पर हँस रहा था।

एकाएक मेरी मुट्ठियाँ कसने लगीं और दाँत भिंच गए। मैं अपना आपा खो बैठा। क्रोध में आकर मैंने मेज पर से पेपरवेट उठाया और जोर से उसके मुँह पर दे मारा।

वह किरच-किरच हो गया। अब वहाँ एक नहीं, अनेक चेहरे मेरा मुँह चिढ़ा रहे थे। कमाल यह था कि वह क्षत-विक्षत होकर भी बेहया-सा मुसकरा रहा था। उसकी मुसकराहट मुझे चीरती चली गई। एक दर्द मेरे सीने में उठा और मेरी गरदन उसके सामने झुक गई। मैंने दोनों हथेलियों में अपना चेहरा छिपा लिया और फफक पड़ा।

आर जैड एफ-३० ए, दूसरी मंजिल,
प्राचीन काली मंदिर के पीछे (नाला पार),
वेस्ट सागरपुर दिल्ली-११००४६
दूरभाष : ९८१०५३४३७३

आलेख

लघुकथा के कुछ चमकते सितारे

● बलराम

हिंदी लघुकथा के प्रारंभिक इतिहास में जिन लघुकथाओं का नाम मोटे अक्षरों में दर्ज है, वे हैं—एक टोकरी भर मिट्टी (माधवराव सप्रे), विमाता (छबीलेलाल गोस्वामी), घास वाली (रामवृक्ष बेनीपुरी), सेठजी (कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर), कश्मीरी सेब (प्रेमचंद), पाठशाला (चंद्रधर शर्मा गुलेरी), कलावती की शिक्षा (जयशंकर प्रसाद), झलमला (पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी), बिल्ली और बुखार (माखनलाल चतुर्वेदी), पहले बाहर फिर भीतर (रावी), फर्क (विष्णु प्रभाकर), बंधनों की रक्षा (आनंदमोहन अवस्थी), पंडितजी (जानकीवल्लभ शास्त्री), हनीमून (राजेंद्र यादव) और दानी (हरिशंकर परसाई)। इन पंद्रह कथाकारों में व्यंग्य लघुकथा लेखक के रूप में सिर्फ हरिशंकर परसाई को ही जगह मिल सकी, क्योंकि वे एक बड़े रचनाकार हैं और बड़ा रचनाकार जब भी किसी विधा को पकड़ता है तो कुछ नायाब रचने की कोशिश करता है। हरिशंकर परसाई वैसे ही बड़े रचनाकार हैं।

हिंदी लघुकथा में एक समय ऐसा भी आया था, जब 'सारिका' जैसी पत्रिका में व्यंग्य लघुकथाओं का बोलबाला हो गया था, लेकिन धीरे-धीरे लघुकथा ने दूसरी राह पकड़ ली। हरिशंकर परसाई और नरेंद्र कोहली जैसे सिद्ध व्यंग्यकारों को छोड़ दें तो उस समय औसत कथाकारों और व्यंग्यकारों ने लघुकथा के नाम पर अस्तरीय व्यंग्य लघुकथाओं से मैदान पाट दिया, जिसके चलते लघुकथा की विधा के रूप में स्वीकृति और स्थापना का मार्ग कुछ और लंबा हो गया। यशपाल की 'संतोष का क्षण' या शरद जोशी की 'कुत्ता' जैसी पौराणिक दृष्टांतों पर आधारित लघुकथाएँ समसामयिक जीवन से खुद को जोड़ने का प्रयास करती जरूर हैं और क्षणिक प्रभाव भी डालती हैं, लेकिन कुछ ऐसा भाव निर्मित नहीं कर पातीं, जिनसे पाठक कहीं भीतर तक प्रभावित हो सकें। मिथक आधारित सफल लघुकथाएँ देखनी हों तो पृथ्वीराज अरोड़ा की 'दु:ख' अथवा बलराम अग्रवाल की लघुकथा 'शंबूक वध' पढ़नी चाहिए। हिंदी की ये लघुकथाएँ पौराणिक आख्यान के उपयोग से सफल लघुकथा लिखने का आदर्श उदाहरण मानी जा सकती हैं।

लघुकथा को अगर व्यंग्य की दरकार है तो वह पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' और हरिशंकर परसाई की लघुकथाओं जैसा ही होना चाहिए, क्योंकि तेजस्वी व्यंग्य की बजाय भोथरे व्यंग्य से अच्छी लघुकथा का सृजन संभव नहीं। उग्र की 'भक्ति' और 'भगवान्' जैसी लघुकथाओं में उस तेज की झलक देखी जा सकती है। उनकी लघुकथा 'शैतान' में भी वह मौजूद है, लेकिन यशपाल की लघुकथा 'संतोष का क्षण' उस स्तर को

'कलम हुए हाथ', 'गोआ में तुम', 'अनचाहे सफर', 'रुकी हुई हंसिनी' (कथा-संग्रह), 'मंजरी की वापसी' और 'कारा' (उपन्यास), 'माफ करना यार', 'वो घड़ी न आती काश' (संस्मरण), 'मेरा कथा समय' तथा 'लोक और इतिहास का मिलन' (समीक्षा) विशेष चर्चित 'विश्व लघुकथा कोश' के संपादक बलराम को 'साहित्य भूषण सम्मान', 'गणेशशंकर विद्यार्थी सम्मान', 'साहित्यकार सम्मान' प्राप्त। संप्रति समाचार पत्रिका 'लोकायत' के संपादक।

छू नहीं पाती और हमें नहीं लगता कि इस तरह से बहुत अच्छी लघुकथाएँ लिखी जा सकती हैं। उग्र की लघुकथाओं में विचार और व्यंग्य इतना पैना है कि पाठक के मन का कूड़ा-कचरा साफ हो जाता है। परसाई की लघुकथाओं का पैनापन उग्र की व्यंग्य परंपरा का विस्तार है। 'विश्व लघुकथा कोश' में छापने के लिए हमने हरिशंकर परसाई की नौ लघुकथाएँ चुनीं और उनकी अनुमति माँगी, जो हमें सहज ही मिल गई, लेकिन उन पर निकलने वाले विशेषांक के संपादक ने फोन पर बताया था कि परसाईजी ने कहा है कि बलराम से पूछो कि उन्होंने 'विश्व लघुकथा कोश' में मेरी यही नौ लघुकथाएँ क्यों चुनीं? नहीं जानता कि परसाई पर वह अंक निकला या नहीं, लेकिन जिंदगी की जद्दोजहद में परसाई की इच्छा उस समय तो क्या, अब तक पूरी नहीं कर पाया। परसाई पर केंद्रित अंक के लिए वही सवाल प्रेम जनमेजय ने भी पूछा। परसाईजी ने तो कोई धमकी नहीं दी थी, लेकिन प्रेम जनमेजय ने लेख लिखने की अंतिम तारीख ही नहीं बता दी, न लिखने पर सोंटा लेकर घर आ धमकने की धमकी भी दे दी। सोंटे से हम डर गए और रविवार का दिन धर्मपत्नी को देने के बजाय प्रेम जनमेजय के सवाल का उत्तर लिखने में लगा आध्यात्मिक जीवन को समझने की कोशिश की।

नींव के नायक

हिंदी के मूर्धन्य लेखक विष्णु प्रभाकर को अपने जीवन-काल में नए लेखकों से यह शिकायत थी कि वे पुराने लेखकों को पढ़ते नहीं हैं। फलत: उन्हें अपनी परंपरा का ज्ञान नहीं हो पाता। इसी वजह से उनकी रचनाएँ अपनी जड़ों से रस न प्राप्त कर करने के कारण न तो प्रभावी होती हैं, न ही अपने काल को पार कर किसी अगले काल तक पहुँच पाती हैं। देश से बाहर जाना तो दूर, वे अपने देश के पाठकों तक को प्रभावित नहीं कर पातीं। विष्णु प्रभाकर ने यह शिकायत हिंदी लघुकथा

लेखक और संपादक अशोक भाटिया से अपनी लघुकथाओं को लेकर की थी, जिसे उनकी मृत्यु के बाद भी अशोक भाटिया भूल नहीं पाए और सन् १९०१ से लेकर १९७० तक की १७७ लघुकथाएँ इकट्ठी कर उन्हें 'नींव के नायक' के रूप में प्रकाशित किया। अशोक भाटिया द्वारा संपादित पुस्तक 'नींव के नायक' में अगर हिंदी की पहली लघुकथा 'एक टोकरी भर मिट्टी' पाठक को पढ़ने को मिलती है तो प्रेमचंद की राष्ट्र का सेवक, कश्मीरी सेब और बाबाजी का भोग जैसी दस लघुकथाएँ भी। इस पुस्तक में अगर माखनलाल चतुर्वेदी की 'बिल्ली और बुखार' जैसी हिंदी की प्रारंभिक लघुककथा है तो पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की 'भक्ति', 'भगवान' और 'शैतान' जैसी प्रारंभिक व्यंग्य लघुकथाएँ भी। यहाँ जयशंकर प्रसाद की 'चक्रवर्ती का स्तंभ' और 'गूदड़ साईं' जैसी ग्यारह रचनाएँ पाठक को मिलेंगी तो पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की 'झलमला' और छबीलेलाल गोस्वामी की 'विमाता' भी। रामवृक्ष बेनीपुरी की 'घासवाली' और यशपाल की 'संतोष का क्षण' तथा रावी की 'प्रेम की जीत' जैसी नौ लघुकथाएँ इस संकलन में अशोक भाटिया ने चुनी हैं और चुनी हैं विष्णु प्रभाकर की 'पश्चात्ताप' जैसी तेरह लघुकथाएँ।

इस संकलन में सबसे ज्यादा रचनाएँ स्व. विष्णु प्रभाकर की चुनकर अशोक भाटिया ने उनकी आत्मा को सुख देने की कोशिश की और कोशिश की पाठकों को यह बताने की कि अपनी परंपरा और अपनी जड़ों को जाने बिना हमारा काम चल नहीं सकता। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की प्रभावशाली लघुकथा 'पंडितजी' तथा पूरन मुद्गल की 'कुल्हाड़ा और क्लर्क' इस किताब में संकलित हैं तो यहाँ युगल, सतीश दुबे, श्यामनंदन शास्त्री, सुरेंद्र मंथन के अलावा प्रख्यात व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की भी एक दर्जन से अधिक लघुकथाएँ संकलित कर अशोक ने गागर में सागर भरने का प्रयास किया है, लेकिन इस संग्रह की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि हिंदी लघुकथा के प्रारंभिक सितारे आनंदमोहन अवस्थी की आठ लघुकथाएँ इसमें उपलब्ध हैं, जिनका लघुकथा संग्रह 'बंधनों की रक्षा' सन् १९५० में प्रकाशित हो गया था, लेकिन पिछले कई दशक से उसका कहीं कुछ अता-पता नहीं है। अशोक भाटिया ने उस दुर्लभ संग्रह को ढूँढ़ निकाला और उससे चुनकर आठ लघुकथाएँ पाठकों को सौंप दीं। अवस्थी का यह संग्रह सन् १९७० के आस-पास आचार्य कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने हमें सहारनपुर जाने पर भेंट किया था। हमसे रमेश बतरा ने पढ़ने के लिए लिया और फिर उनसे कोई और ले गया। फलत: आनंदमोहन अवस्थी की एकमात्र लघुकथा 'बंधनों की रक्षा' ही पाठकों के सामने आती-जाती रही। बाकी लघुकथाएँ देखने को भी नहीं मिलतीं। अब जब भाटिया को अवस्थी का वह लघुकथा संग्रह मिल ही गया है तो उसका नया संस्करण प्रकाशित कर उसे सर्वसुलभ कराना चाहिए।

अपने इस संकलन में अशोक ने जो चौदह प्रमुख नाम चुने, वे हैं—प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, हरिशंकर परसाई, विष्णु प्रभाकर, रवींद्र वर्मा, सतीश दुबे, भगीरथ, रमेश बतरा, चित्रा मुद्गल, पृथ्वीराज अरोड़ा, बलराम तथा सुकेश साहनी आदि। गंभीर कथा अध्येता और प्रमुख लघुकथा प्रस्तोता बनकर अशोक भाटिया हिंदी कथा के आकाश में सारस की तरह उन्मुक्त भाव से कुछ ऐसे उड़ रहे हैं, जैसे सरहदें उनके लिए कोई मायने ही नहीं रखतीं। सज्जे और अच्छे सर्जक-भावक सचमुच कोई सरहद मंजूर नहीं करते।

कुल मिलाकर 'नींव के नायक' संकलन से हिंदी लघुकथा का क्रमिक विकास और इतिहास पाठक के सामने मूर्त हो उठता है। इसके पहले भी अशोक भाटिया ने कुछ इसी तरह की कोशिश 'पैंसठ लघुकथाएँ' निकालकर की थी। अपने इस संकलन में अशोक ने जो चौदह प्रमुख नाम चुने, वे हैं—प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, हरिशंकर परसाई, विष्णु प्रभाकर, रवींद्र वर्मा, सतीश दुबे, भगीरथ, रमेश बतरा, चित्रा मुद्गल, पृथ्वीराज अरोड़ा, बलराम तथा सुकेश साहनी आदि। गंभीर कथा अध्येता और प्रमुख लघुकथा प्रस्तोता बनकर अशोक भाटिया हिंदी कथा के आकाश में सारस की तरह उन्मुक्त भाव से कुछ ऐसे उड़ रहे हैं, जैसे सरहदें उनके लिए कोई मायने ही नहीं रखतीं। सज्जे और अच्छे सर्जक-भावक सचमुच कोई सरहद मंजूर नहीं करते।

मुश्किल काम को आसान करती सर्जना

कहते हैं कि शब्दों का बंधन न हो तो कोई भी व्यक्ति किसी को भी अपनी कोई भी बात देर-सबेर समझा ही देगा, लेकिन अगर सीमित शब्दों में अपनी बात कहने की शर्त लगा दी जाए तो शायद बड़े-से-बड़े कहानीकार के लिए भी वह काम मुश्किल हो जाएगा; लेकिन अपने लघुकथा संग्रह 'मुश्किल काम' में असगर वजाहत ने इस काम को बहुत आसान करके दिखा दिया है। विश्वास न हो तो उनकी कुछ लघुकथाएँ पढ़कर देख लें।

क्रांति

क्रांतिवीर को इंग्लिश आती थी, जर्मन आती थी, फ्रेंच आती थी, रूसी आती थी, इतालवी आती थी, स्पेनिश आती थी, लेकिन हिंदी नहीं आती थी। किसी ने क्रांतिवीर से पूछा, ''तुम हिंदी नहीं जानते तो हिंदुस्तान में क्रांति कैसे करोगे?''

क्रांतिवीर ने जवाब दिया, ''मैं पहले इंग्लैंड में क्रांति करूँगा, फिर जर्मनी में क्रांति करूँगा, फिर रूस में, फिर इटली में और फिर स्पेन में···और जब इतने सारे देशों में क्रांति हो चुकी होगी तो भारत में बिना हिंदी के क्रांति हो जाएगी।''

शहनाई

क्रांतिवीर जीवन भर इस भ्रम में रहे कि उनका केवल बायाँ हाथ ही काम करता है। इसीलिए जीवन भर उन्होंने दाहिने हाथ से काम न लिया, जबकि दाहिना हाथ बाएँ से ज्यादा काम कर सकता था। अब पचहत्तर साल का हो जाने के बाद दाहिना हाथ बाएँ से बदतर हो चुका है। यही कारण है कि क्रांतिवीर सबकुछ कर सकते हैं, लेकिन शहनाई नहीं बजा पाते।

वीरता

जैसा कि अकसर होता है, यानी राजा जालिम था। वह जनता पर बड़ा अन्याय करता था और जनता अन्याय सहती थी, क्योंकि जनता को न्याय के बारे में कुछ नहीं मालूम था। राजा को ऐसे ही सिपाही रखने का शौक था, जो बेहद वफादार हों। बेहद वफादार सिपाही रखने का शौक उन्हीं को होता है, जो बुनियादी तौर पर जालिम और कमीने होते हैं। राजा को हमेशा यह डर लगा रहता था कि उसके सिपाही उसके वफादार नहीं हैं और वह अपने सिपाहियों की वफादारी का लगातार इम्तहान लेता रहता था। एक दिन उसने अपने एक सिपाही से कहा कि अपना एक हाथ काट डालो। सिपाही ने हाथ काट डाला। राजा बड़ा खुश हुआ और उसे वीरता का बहुत बड़ा इनाम दिया। फिर एक दिन उसने एक दूसरे सिपाही से कहा कि अपनी टाँग काट डालो। सिपाही ने ऐसा ही किया और वीरता दिखाने का इनाम पाया। इसी तरह राजा अपने सिपाहियों के अंग कटवा-कटवाकर उन्हें वीरता के इनाम देता रहा। एक दिन राजा ने देश के सबसे वीर सैनिक से कहा कि तुम वास्तव में कोई ऐसा बहादुरी का काम करो, जिसे और कोई न कर सकता हो। वीर सैनिक ने तलवार निकाली, आगे बढ़ा और राजा का सिर उड़ा दिया। यह है असगर वजाहत की लघुकथाओं की असगरीयत, जिसका असर यहां-वहाँ सब जगह सार्वभौमिक स्तर पर देखा-महसूस किया जा सकता है। ऐसी ही रचनाएँ कालजयी रचनाओं में शुमार हो जाती हैं। मिस्र, सीरिया, जॉर्डन, सूडान, बहरीन तथा ओमान आदि देशों के ऐसे ही तानाशाह शासकों के खिलाफ उनके अपने देश के वीरों ने ऐसे ही वीरतापूर्ण कारनामे करके दिखा दिया कि असली वीरता क्या होती है।

कुछ क्रांतिवीरों का यही हाल भारत में भी देखने को मिला, जहाँ उनके हाथ विजय की शहनाई नहीं बजा सके। इन कथाओं को पढ़कर आपने समझ ही लिया होगा कि कम शब्दों में अधिक बात कहने का 'मुश्किल काम' असगर वजाहत के लिए कितना आसान काम है। उनके पहले लघुकथा संग्रह 'मुश्किल काम' में इस तरह की उनकी सवा सौ से अधिक छोटी कथाएँ संगृहीत हैं, जिन्हें रूढ हो चले अर्थ में हम लघुकथाएँ कह सकते हैं, लेकिन किताब में असगर वजाहत ने उन्हें कहानियाँ या छोटी कहानियाँ कहा है, जबकि जिन हालात में उन्होंने ऐसी रचनाएँ लिखीं, उनका विवरण देते हुए उन्होंने खुद ही लिखा है कि जब सीधी बात कहने का अवसर नहीं होता तो कविता के उपादान कहानी को एक नए धरातल तक ले जाते हैं। अभिव्यक्ति सशक्त होती है और लेखक बड़ी हद तक सुरक्षित रहता है। आपातकाल असगर वजाहत के लघुकथा लेखन का पहला दौर था। इस दौर की लघुकथाओं में कुछ प्रतीकात्मक लघुकथाएँ हैं, जिनमें से कुछ बहुत हद तक 'पंचतंत्र' की शैली में लिखी गई हैं। ऐसी लघुकथाएँ लिखने की शुरुआत असगर वजाहत ने आपातकाल में एक बार कर दी तो फिर लगातार वैसी ही लघुकथाएँ लिखते चले गए। आपातकाल के बाद उर्दू के नसरी नज्म (गद्य काव्य) की शैली में उन्होंने 'कवि' सीरीज की लघुकथाएँ लिखीं, जो कविता और कहानी के बीच की होने के कारण लोगों को बहुत पसंद आईं। प्रेमचंद की कहानियों को पाश्चात्य ढाँचेवाली मानते हुए असगर ने माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' को भारतीय शैली की कहानी माना है, जो पंचतंत्र, जातक और नीति कथाओं की मौखिक परंपरा के अधिक निकट है। इस परंपरा की 'बंदर' और 'वीरता' जैसी महत्त्वपूर्ण लघुकथाएँ असगर ने सन् १९८०-८६ के दौरान लिखीं।

इसके बाद असगर ने १९८९-९० के दौरान सिर्फ संवाद के जरिए लघुकथाएँ लिखनी शुरू कीं। सन् १९९२ में वे पाँच साल के लिए हंगरी गए, जहाँ लंबे और दर्दनाक आपातकाल के दौर में हंगेरियाई लेखकों, खासकर इश्तवान आरकेन्य द्वारा अपनाई गई कथा प्रविधि से प्रभावित हुए। इश्तवान कहते हैं, 'अपने पैर फैला लीजिए। सिर को नीचे झुकाइए और दोनों पैरों के बीच से दुनिया को देखिए।' हंगरी की राजधानी बुडापेस्त में रहते हुए असगर ने टी.पी. देव सीरीज की लघुकथाएँ ही नहीं लिखीं, 'विकसित देश की पहचान' तथा 'श्री त्रि···' सीरीज की लघुकथाएँ भी लिखीं। असगर मानते हैं कि जटिल से जटिलतम हो गए आज के यथार्थ को इश्तवान आरकेन्य के तरीके से ही पकड़ना पड़ेगा, अन्यथा वह पकड़ में आ ही नहीं पाएगा। इस तरह कथा-लेखन की चार-पाँच प्रविधियों का उपयोग असगर वजाहत ने अपनी लघुकथाएँ लिखते हुए किया और हिंदी के परम प्रयोगशील लघुकथा लेखक का तमगा हासिल किया। लघुकथा लेखन में असगर से अधिक प्रयोग किसी अन्य कथाकार ने नहीं किए। अल्प प्राण लघुकथा लेखकों से अलग असगर वजाहत एक संपूर्ण कथाकार हैं, जिन्होंने पाँच कहानी-संग्रहों लायक कहानियाँ ही नहीं लिखीं, पाँच उपन्यास और छह नाटक भी लिखे हैं। सो असगर वजाहत का लघुकथा संग्रह 'मुश्किल काम' हिंदी लघुकथा को अतिरिक्त गरिमा ही नहीं प्रदान करता, विधा के रूप में उसे प्रतिष्ठित विधाओं में बिठाने की जुगत भी करता है—चैतन्य त्रिवेदी के 'उल्लास', महेश दर्पण के 'मिट्टी का आदमी', चित्रा मुद्गल के 'बयान' और उन्नी के 'कबूतरों से भी खतरा है' की तरह। आनंदमोहन अवस्थी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, रावी, विष्णु प्रभाकर और युगल ने जिसकी मजबूत आधारशिला रख दी थी, शशांक, विष्णु नागर, सुदर्शन वशिष्ठ, सूर्यकांत नागर और एन. उन्नी ने जिसे गति और निरंतरता प्रदान की। बीसवीं सदी की लघुकथाओं के कई संचयन प्रकाशित हो चुके हैं और विधा के रूप में 'लघुकथा' शब्द ही प्रचलन में है, लेकिन इस संदर्भ में असगर शायद सचेत नहीं हैं। वे अभी भी उसे उदय प्रकाश और विष्णु नागर की तरह कभी कहानी और कभी छोटी कहानी कहते हुए पेश करते हैं, जबकि अपनी इस किताब की भूमिका में वे लगातार इन्हें लघुकथा ही कहते हैं। इस असावधानी से विभ्रम फैलते हैं। इसलिए असगर को अपने संग्रह को खुलकर लघुकथा संग्रह ही कहना चाहिए, क्योंकि भविष्य की विधा लघुकथा ही है, जो कहानी और कविता, दोनों के तत्त्वों से लैस है।

सी-६९, उपकार अपार्टमेंट,
मयूर विहार, फेज-१, दिल्ली-११००९९
दूरभाष : ९८१०३३३९३३

कर्तव्य

● सुनील गज्जाणी

वो जगह-जगह से जख्मी होकर सड़क के खूँखार कुत्तों के बीच से नन्हे पिल्ले को बचा लाया। तमाशबीन रह-रहकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे, तालियाँ बजाते हुए एक ने कहा, ''अरे वाह! जीव-जंतुओं से कितना प्यार है, जो अपनी परवाह किए बिना पिल्ले को बचा लाया!''

''हाँ, कितने खूँखार कुत्ते थे, बंदा हिम्मत न करता तो इस पिल्ले की मौत तो पक्की थी।'' दूसरा बोला।

वो अपने कपड़े झाड़ता, अपने जख्मों को देख, मुसकराता हुआ, सहमे हुए पिल्ले को पुचकारता हुआ, बाँहों में भरकर मन-ही-मन सोचता हुआ गंतव्य की ओर चल पड़ा।

''मुझे अपने आपको सिद्ध करना ही था कि मैं अब वो नहीं हूँ। अगर पिल्ले को कुछ हो जाता तो मेरी नौकरी तो फिर से जाती ही जाती, जो मुझे इतनी मुश्किल से मुझ जैसे आदमी पर भरोसा रख, इस पिल्ले की देख-रेख करने के लिए रखा था। मेरा परिवार तो खुश होगा ही यह हालत देख, सेठजी भी खुश हुए बिना नहीं रहेंगे कि मैंने उनका भरोसा कायम रखा। अब सभी को विश्वास हो जाएगा कि अब मैं किसी नशे का नहीं, कर्तव्य का आदी हो गया हूँ!''

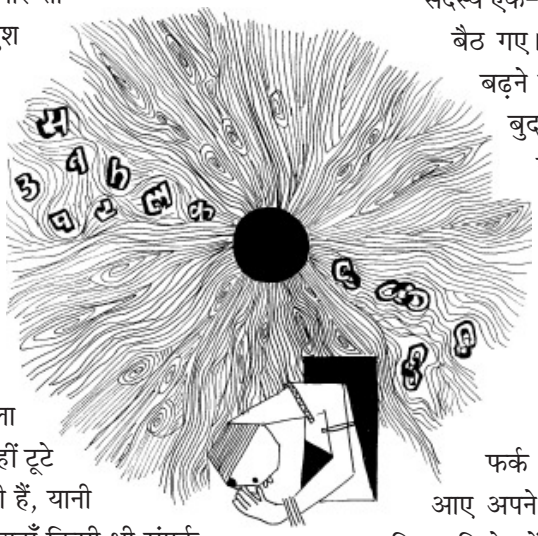

ब्रेकिंग न्यूज

लेह में बादल फटने से जबरदस्त तबाही। हर तरफ डरावना मंजर। इस प्राकृतिक हादसे में कितना नुकसान हुआ, फिलहाल कहना मुश्किल है! मगर हर ओर दिल दहला देनेवाला मंजर है। कहीं मिट्टी में लाशें दबी पड़ी हैं, कहीं टूटे घर, बड़ी-बड़ी गाड़ियाँ जल-समाधि ले चुकी हैं, यानी हर ओर खौफ ही खौफ! लोग खौफजदा हैं! यहाँ किसी भी संपर्क का साधन कट चुका है, न लाइट है और न ही पीने का पानी लोगों के पास! प्रशासन और फौज अपनी पूरी तत्परता से राहत कार्यों को अंजाम दे रही है। यहाँ हम जो दृश्य दिखा रहे हैं वो···।

एक चैनल का रिपोर्टर इस तबाही का हर दृश्य दिखाता हुआ अपनी रपट कह रहा था।

कश्मीर में एक घर बड़ी उत्सुकता से टी.वी. पर ये सब देख रहा था! सभी के चेहरे शांत। परिवार के कुछ सदस्यों की नम आँखें थीं तो कोई इबादत कर रहा था। घर में एकदम खामोशी पसरी थी। मगर टी.वी. में यह मंजर देख वे सिहर उठे, ''हमें अभी-अभी सूचना मिली है,

सुपरिचित साहित्यकार। 'ओस री बूँदा' (राजस्थानी), 'किनारे से परे व अन्य नाटक' (हिंदी नाटक-संग्रह), 'बोई काट्या है' (बाल साहित्य, राजस्थानी) एवं पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। पीथल पुरस्कार एवं जिला प्रशासन बीकानेर द्वारा सम्मानित।

जिसमें मरनेवालों में कुछ की शिनाख्त हुई है, जिनके नाम हम टी.वी. स्क्रीन पर दिखा रहे हैं!'' रिपोर्टर बोला।

''खुदा खैर करे, हमारे जान-पहचान वाला कोई न हो इसमें!'' उस परिवार की एक महिला बुदबुदाई।

पूरा परिवार खौफजदा चेहरा लिये नजरों और कानों को टी.वी. स्क्रीन पर गड़ाकर बैठ गया। नमाज पढ़ती महिला बरबस रुक गई, सभी सदस्य एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। सभी टकटकी लगाए बैठ गए। घर में एकदम सन्नाटा। सभी की धड़कनें बढ़ने लगीं, साँसें मानो थम सी गईं। सभी के होंठ बुदबुदाने लगे कि उनके लिए कोई अपशगुनी न्यूज न हो। तभी रिपोर्टर बोला, ''पहले एक छोटा सा ब्रेक।'' यह सुन मानो सभी की साँसें जम सी गईं।

बँटवारा

ज्यों की ज्यों है इस घर की चौखट और आँगन, जैसा मैंने पाँच-छह महीने पहले देखा था। टूटी चौखट, जगह-जगह टूटा आँगन, फर्क बस इतना है कि सभी भाइयों के बँटवारे में आए अपने-अपने कमरे तो नया लुक लिए हैं। अपने परिवार-रिश्तेदारों में सभी से राय-मशविरा करने के बाद आज मैं अपनी बिटिया का रिश्ता तय करने आया था मगर···!

''अरे समधीजी, क्या सोच रहे हैं और किन आशंकाओं में घिर गए, चिंता मत कीजिए, बस मुहूर्त निकलने की ही देरी है।''

''मगर मैं सोच रहा था कि आपके पिताजी की इतनी बड़ी हवेली चारों बेटों के सिर्फ कमरों तक ही बँटकर रह गई, मगर जगह-जगह टूटा आँगन और टूटी चौखट, किसके बँटवारे का हिस्सा है?''

सुथारों की वाड़ी गुवाड़, बीकानेर-३३४००५ (राज.)
दूरभाष : ०९९५०२१५५५७

लघुकथा

मंसूबे

● राकेश भ्रमर

पारिवारिक कारणों से ज्योति की शादी उसके मनपसंद लड़के से नहीं हो पाई। मन मारकर उसने घरवालों की पसंद के लड़के से शादी कर ली, परंतु वह ससुराल में सामंजस्य नहीं बिठा पाई। उसे लगता था कि एक न एक दिन उसकी शादी उसके प्रेमी से हो जाएगी।

इसी बीच उसकी एक सहेली ने उसे सलाह दी कि अगर वह अपने पति से तलाक ले ले, तो उसके घरवाले उसका दूसरा विवाह उसकी पसंद के लड़के से कर सकते हैं। वह सोच में पड़ गई कि कैसे अपने पति से तलाक ले। कोई रास्ता नहीं सूझा तो उसने सहेली से सलाह माँगी, ''मेरा पति मुझे क्यों और कैसे तलाक देगा?''

''ऐसा करो, अपनी ससुरालवालों पर दहेज की माँग, प्रताड़ना, मारपीट और शारीरिक-मानसिक उत्पीड़न का मामला दर्ज करवा दो। पुलिस उन्हें गिरफ्तार करेगी, तो वह तुमसे समझौता करने पर राजी हो जाएँगे। तब उनसे तलाक देने का दबाव बनाना।''

ज्योति को यह सलाह बहुत उचित लगी। उसने बिना सोचे-विचारे ससुरालवालों पर दहेज का मुकदमा दर्ज करवा दिया। पुलिस ने बिना प्रारंभिक जाँच के सबको गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया।

ज्योति इंतजार करती रही कि ससुरालवाले उसके पास समझौते के लिए आएँगे, परंतु कोई नहीं आया। उनकी जमानत ही नहीं हो पा रही थी। इधर पुलिस ने अदालत में चालान पेश कर दिया और गवाहियाँ चलने लगीं।

कुछ दिन ज्योति ने इंतजार किया। कोई हल नहीं निकला, तो उसने अपनी सहेली की सलाह पर अदालत में तलाक का मुकदमा भी कायम करवा दिया। दो-दो मुकदमे चलने लगे। ज्योति हर तारीख को अदालत में जाती। इंतजार करती कि जल्दी ही फैसला हो जाएगा, परंतु मुकदमों में कोई प्रगति होती दिखाई नहीं दे रही थी। हर बार बिना कारवाई के अगली तारीख पड़ जाती।

साल-दर-साल बीतते चले गए। मुकदमों का कोई अंत नहीं दिखाई दे रहा था। एक दिन उसने महसूस किया कि उसके चेहरे की कांति बुझती सी जा रही थी और बालों में सफेदी झलकने लगी है।

उसकी उम्र बढ़ गई थी, परंतु मुकदमे अभी तक वहीं पर खड़े थे, जहाँ से चले थे।

कुल्हाड़ी

एक दिन कुल्हाड़ी ने घमंड में आकर पेड़ से कहा, ''मेरे सामने तुम्हारी कोई औकात नहीं है। मैं पल भर में तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर सकती हूँ।''

पेड़ ने एक पल गंभीरता से सोचा, फिर जवाब दिया, ''मेरी औलादों ने मेरे साथ दगाबाजी करके तुम्हारा साथ न दिया होता, तो तुम्हारी क्या हैसियत कि मेरा बाल-बाँका कर सकती?''

''तुम्हारे किस वंशज ने मेरा साथ दिया?'' कुल्हाड़ी ने ऐंठते हुए कहा, ''मैं स्वयं इतनी सक्षम हूँ कि किसी के भी टुकड़े कर सकती हूँ।''

''इतना घमंड अच्छा नहीं होता, मेरी प्यारी कुल्हाड़ी! मेरी बात ध्यान से सुनो। अपने आप में तुम एक बेकार लोहे के टुकड़े के अलावा कुछ नहीं हो। तुम्हारे साथ अगर लकड़ी का बेंट न लगा होता तो तुम कैसे किसी के टुकड़े करती? बेंट के सहारे ही तुम्हारा जीवन और अस्तित्व है, वरना तुम एक अपंग के समान हो। तुममें लगा बेंट मेरे जैसे किसी पेड़ की शाखा को काटकर बनाया जाता है। इस प्रकार वह हमारा वंशज हुआ न! बताओ, बिना लकड़ी के बेंट के तुमको कौन पूछता? दुनिया की यही रीति है, अपने ही अपनों के साथ दगा करते हैं। अगर हम अपनों के साथ दगा न करें, तो पराए हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।'' पेड़ ने जीवन की मीमांसा करते हुए कुल्हाड़ी को समझाया।

सुनकर कुल्हाड़ी का सिर शर्म से झुक गया। सच, बिना बेंट के उसका क्या अस्तित्व? पेड़ की लकड़ी का सहारा पाकर वह इतराती है और पेड़ों के ही जिस्म चीरती जाती है।

सुपरिचित साहित्यकार। 'जंगल बबूलों के', 'हवाओं के शहर में'(गजल संग्रह), 'उस गली में' (उपन्यास), 'अब और नहीं' (कहानी-संग्रह)। 'प्राची' मासिक पत्रिका का संपादन। पत्र-पत्रिकाओं में सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित। दूरदर्शन लखनऊ तथा आकाशवाणी रामपुर, जबलपुर और मुंबई से रचनाओं का प्रसारण। संप्रति केंद्र सरकार में अधिकारी।

२४, जगदीशपुरम्, लखनऊ मार्ग,
निकट त्रिपुला चौराहा,
रायबरेली-२२९००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९९६८०२०९३०

दाल-रोटी

● रतन चंद 'रत्नेश'

उसकी उम्र कितनी थी, उसके चेहरे-मोहरे और कद-काठी से पता नहीं लग पा रहा था। गाल धँसे हुए, सिर के बाल बेतरतीब से सफेद-काले, खिचड़ी दाढ़ी। बस इतना समझ लें कि वह प्राप्त वयस्क था। फटी कमीज और गंदी-सी पतलून के साथ वह यहाँ के भव्य भोजनालय के अंदर प्रवेश कर गया और एक कोने में जाकर कुरसी पर बैठ गया। बाहर की गरमी से अंदर आकर उसे इस एयर-कंडीशन होटल में राहत महसूस हुई।

दोपहर का समय था और पूरे होटल में खानेवाले मेजों पर सजे-धजे लोगों की भीड़ थी। उनमें वह भी अब शामिल था। रिक्शा खींचता है तो क्या हुआ, मेहनत की कमाई खाता है। आज इच्छा हो आई थी कि इस भव्य भोजनालय के अंदर बैठकर खाना खाए।

थोड़ी देर में ऑर्डर लेने के लिए यूनीफॉर्म में एक युवक उसके सामने आया, ''तुम यहाँ कैसे बैठ गए? जेब में इतने पैसे हैं कि··· ?''

''पैसे हैं, तभी यहाँ आकर बैठा हूँ। थोड़ा पढ़-लिख भी लेता हूँ। आपका टेबल पर रखा यह परचा पढ़ लिया है मैंने। जाओ, दाल-रोटी और एक कोई सब्जी भिजवाओ जल्दी से।''

तब तक होटल के कुछ और कर्मचारी उस वेटर का साथ देने आ गए।

''जल्दी से बाहर करो इसे वरना दूसरे ग्राहक भाग जाएँगे।'' उनमें से एक ने बाँह पकड़कर उसे कुरसी से उठाने की कोशिश की; पर वह टस-से-मस नहीं हुआ। कहा, ''जब मैं पूरे पैसे देने को तैयार हूँ तो फिर मुझे क्यों उठाया जा रहा है? मैं भी यहाँ खा सकता हूँ।''

होटल का मालिक इस हंगामे को अपने कक्ष में बैठा सी.सी.टी.वी. पर देख रहा था। ऊपर के मंजिल से उतरकर वह नीचे आया और माजरा जानना चाहा।

प्रबंधक ने कहा, ''सर, ऐसे मैले-कुचैले व्यक्ति को कुरसी पर बिठाकर खिलाने से होटल की इमेज खराब होगी और दूसरे ग्राहकों पर इसका बुरा असर पड़ेगा।

मालिक ने शांत मुद्रा में कहा, ''जब वह पैसे दे रहा है तो उसे खाने का पूरा हक है। इसे जो चाहिए, दे दो और हाँ, इससे खाने के पैसे मत लेना।'' कहकर मालिक जिधर से आया, उधर लौट गया।

टाइम पास

'द्वार पर एक घोड़ा बँधा होना चाहिए', पत्नी की कई दिनों से यही जिद्द थी; परंतु न जाने क्यों मुझे घोड़े की कोई अहमियत नजर नहीं आ रही थी। अत: अब तक टालता आ रहा था। मोहल्ले में हर घर के बाहर घोड़े बँधे नजर आते और पत्नी को इसमें अपनी तौहीन दिखती।

जब से नई सरकार बनी थी, घोड़े खुलेआम बीच-बाजार मिलने

सुपरिचित रचनाकार। अब तक तीन कहानी संग्रह प्रकाशित। दो पुस्तकों का बांग्ला से अनुवाद। केंद्रीय सरकार में वरिष्ठ तकनीशियन।

बंद हो गए थे, क्योंकि सरकार बनते ही एक कैबिनेट मंत्री की तत्परता से एक विभाग का नवनिर्माण हो चुका था, जी.पी.डब्ल्यू.डी. यानी घोड़ा पालनेवाला डिपार्टमेंट। अब किसी को घोड़ा लेना हो तो इसी विभाग के शरणागत होना पड़ता। सरकार इस बात पर जोर दे रही थी कि लोग वाहनों को छोड़कर घोड़े अपनाएँ।

आज मुझे उस विभाग में जाना ही पड़ा। घर से पैदल ही निकला। सोचा, जब सरकार पर्यावरण के प्रति इतनी सचेत है तो मुझे भी अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। बहरहाल, सड़क पर न कोई घोड़ा दिखा, न वाहन। विभाग के मुख्यद्वार से होकर अंदर जाते ही मैंने वहाँ के चौकीदार को ऊँघता पाया। पास ही एक चतुर्थ श्रेणी किस्म का कर्मचारी बेंच पर लेटा हुआ था। उसने मुझे देखकर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। एक ओर पाँच-छह तंदुरुस्त घोड़े बँधे थे।

मैं चुपचाप पंक्तिबद्ध कमरों की ओर बढ़ चला। पहले कमरे में बाहर से ही झाँका। एक बाबू चश्मा चढ़ाए फाइलों में खोया हुआ था। उसी कमरे में उसके सामने दूसरा शख्स कागज की तीली बनाकर अपना मुँह बनाता कान साफ कर रहा था। सामने दीवार पर घोड़ों के झुंड की एक तसवीर के साथ संबंधित कैबिनेट मंत्रीजी लटके हुए थे।

उन्हें बिना कुछ कहे मैं आगे बढ़ा। अगले कमरे में कोई नहीं था। कुरसियों और मेज पर धूल ने स्थायी जगह बना रखी थी। इसी बीच लेटा हुआ चतुर्थ श्रेणी किस्म का वह शख्स मेरे पास उस कमरे तक आया और खुलासा किया कि साहब लोग घोड़े का इंतजाम करने दौरे पर गए हैं।

मैं विभाग के दूसरे दरवाजे से बाहर निकला तो वहाँ अपने कार्यालय के वाहनचालक मोहनलाल को एक कुरसी पर बैठकर अखबार बाँचते पाया। मैंने पूछा, ''मोहनलाल, तुम यहाँ क्या कर रहे हो?''

उसने अखबार से बिना आँखें हटाए कहा, ''टाइम पास।''

उसके जवाब से मुझे लगा कि घोड़ा चालकों के लिए पद भरे जाने की संभावना बन रही है। मैं भी टाइम पास करके वहाँ से वापस लौट आया।

म.नं. १८५९, सेक्टर ७-सी, चंडीगढ़-१६००१९
दूरभाष : ९४१७५७३३५७

आलेख

२०१६ : लघुकथा का समृद्ध परिवेश

● कांता रॉय

हिंदी लघुकथा के संदर्भ में वर्ष २०१६ कुछेक बड़ी हलचलों और उपलब्धियों से भरा रहा। लेखन में तकनीक व शिल्प-शैली को लेकर जितनी विगत साल चर्चाएँ हुईं, उतनी शायद ही कभी हुई हों।

नवोदित लघुकथाकार। अब तक तीन लघुकथा संग्रह प्रकाशित। सरकारी, गैर-सरकारी अनेक मंचों से सम्मानित।

नुक्कड़ लघुकथा गोष्ठी : विश्व पुस्तक मेला

वर्ष के पहले माह से ही लघुकथा को लेकर एक अच्छी शुरुआत हुई। १४ जनवरी, २०१६ को 'नुक्कड़ लघुकथा पाठ' का आयोजन शोभा रस्तोगी की एक सार्थक परिकल्पना थी, जिसको विश्व पुस्तक मेले में साकार किया गया। अनेक वरिष्ठ व नए लघुकथाकारों की उपस्थिति और रचना-पाठ भी सराहनीय था। मौसम खराब होने के कारण यह आयोजन पार्क के अंदर खुले में न होकर हॉल नंबर १२ ए में संपन्न हुआ। सुश्री छवि निगम, नीलिमा शर्मा, डॉ. नीरज शर्मा, शोभा रस्तोगी, कांता राय, नीता सैनी, हरनाम शर्मा, अशोक वर्मा, सतीशराज पुष्करणा, मधुदीप, सुभाष नीरव और सूरज प्रकाश ने लघुकथा पाठ में हिस्सा लिया और अपनी दो-दो लघुकथाएँ सुनाईं। कथाकार सूरज प्रकाश ने बिना पढ़े अपनी दो दमदार लघुकथाएँ सुनाईं। अच्छी बात यह रही कि लघुकथा क्षेत्र में बिल्कुल नए लेखकों ने अपनी बेहद सशक्त और कसी हुई लघुकथाओं का पाठ किया, जिन्हें सभी ने सराहा। मधुदीप और अवधेश श्रीवास्तव ने कुछ लघुकथाओं पर अलग से अपनी-अपनी राय भी प्रकट की। करीब डेढ़ घंटे चली इस लघुकथा गोष्ठी का संचालन सुभाष नीरव ने किया। 'नुक्कड़ लघुकथा' गोष्ठी के समापन के बाद इस बात पर भी विचार किया गया कि आगामी विश्व पुस्तक मेले में बड़े स्तर पर लघुकथा को लेकर आयोजन रखा जाए, जिस पर सभी उपस्थित लेखकों ने अपनी सहमति प्रकट की।

अंतर्जाल के द्वारा देश के विभिन्न भागों से लेकर सुदूर विदेशों में बैठे लघुकथाकारों ने एक-दूसरे से जुड़कर विधा में सशक्त उपस्थिति दर्ज की है। यही कारण है कि इस साल लगभग तेरह लघुकथा-संग्रह प्रकाशित हुए, जो इस प्रकार हैं, 'अंदाज नया' अशोक गुजराती, 'जीवन का प्रवाह' कल्पना विजयवर्गीय, 'आँगन-आँगन हरसिंगार' कमल कपूर, 'पथ का चुनाव' कांता रॉय, 'अनसुलझा प्रश्न' किशनलाल शर्मा, 'एक पेग जिंदगी' पूनम डोगरा, 'रिंगटोन' ब्रजेश कानूनगो, 'सम्यक लघुकथाएँ' मीरा जैन, 'एक सेल्फी रिश्तों की' रश्मि प्रणय वागले, 'किसी और देश में' विनय कुमार, 'इत्रफरोश' रोहित शर्मा, 'उद्‌गारों का कलश' कमल नारायण मेहरोत्रा, 'तत: किम' संध्या तिवारी, 'बालमन की लघुकथाएँ' डॉ. श्याम सुंदर दीप्ति, 'मूँछोंवाली' डॉ. मधुकांत। इन संग्रहों में आठ नए लघुकथाकारों की पुस्तकें हैं, जो विधा संदर्भ में एक मिशाल है। गौर करनेवाली बात भी है कि ये सभी नए लेखक समर्पित लघुकथाकार हैं। कथा-लेखन के क्षेत्र में 'समर्पित लघुकथाकार' ढूँढ़ना समुद्र में मोती ढूँढ़ने जैसा ही है, क्योंकि जाने-अनजाने ही सही, कथा-आलोचकों द्वारा अनदेखी लघुकथाकारों का मनोबल तोड़ती है। वे समझने लगते हैं कि कहानी व अन्य विधा विशिष्ट दर्जा दिलवाने में अधिक कारगर साबित होगी, इसलिए उनका लघुकथा-विधा से अन्य विधाओं की ओर पलायन हो जाता है। भोपाल में साहित्य अकादमी के पूर्व निदेशक व निराला सृजन पीठ के वर्तमान निदेशक देवेंद्र दीपकजी ने लघुकथा रचनापाठ 'तिलक' के आयोजन पर विधा की महत्ता बताते हुए लघुकथा की गंभीरता पर एक विस्तृत उद्‌बोधन देते हुए कहा कि विधा चाहे कोई भी हो, वह अपने आप में विशिष्ट होती है। लघुकथा विधा के लिए उपेक्षा भरे इस काल में वरिष्ठ आलोचक डॉ. कमल किशोर गोयनका की आलोचना पुस्तक 'लघुकथा का समय' का आना लघुकथाकारों के मनोबल को बढ़ानेवाला सिद्ध होगा।

'लघुकथा साहित्य' की देयता

अंतर्जाल के द्वारा साहित्यिक अनुष्ठान को सार्थकता का जामा पहनाया—जून २०१३ में स्थापित फेसबुक समूह 'लघुकथा साहित्य' ने, जिसके वर्तमान एडमिन वरिष्ठ लघुकथाकार बलराम अग्रवाल और श्याम सुंदर अग्रवाल हैं। यहाँ वक्त-वक्त पर लघुकथा पर संज्ञान व उचित मार्गदर्शन का प्रयास होता है। २०१६ में भी नव-लेखकों के लिए यहाँ से विविध पहलुओं पर लघुकथा विधा-सम्मत काम हुआ है। देश-विदेश में घटित लघुकथा पर विधा-सम्मत हलचल की समस्त जानकारी लेखकों के लिए उपलब्ध करवाई गई। नवीन संग्रहों व संकलनों का प्रकाशन, विविध पहलुओं पर आलोचना संबंधी जानकारियाँ यहाँ प्रदान की जाती हैं। अंतर्जाल पर 'लघुकथा साहित्य' विधा संदर्भ में मुझे यह हमारा हेड ऑफिस प्रतीत होता है।

साहित्य अकादमी : १५ मार्च, २०१६ : किला फतह

कथाकार सुभाष नीरव द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट साहित्य अकादमी द्वारा आयोजित 'लघुकथा पाठ' के संदर्भ में है तो दूसरी रिपोर्ट हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा आयोजित 'साहित्योत्सव' में संपन्न 'लघुकथा पाठ' के संदर्भ में। पहली रिपोर्ट के अनुसार, 'लघुकथा साहित्य के लिए इस साल की सबसे बड़ी उपलब्धि साहित्य अकादेमी द्वारा 'लघुकथा' को अपने आयोजन में शामिल करना रहा। १५ मार्च, २०१६ को साहित्य अकादेमी के सभागार में साहित्य अकादेमी के 'राजभाषा मंच' के अंतर्गत देवेंद्र कुमार देवेश के संचालन में एक सफल और सार्थक संगोष्ठी संपन्न हुई! इसमें हिंदी के वरिष्ठ चार सशक्त लघुकथा लेखकों सर्वश्री बलराम अग्रवाल

(दिल्ली), सुकेश साहनी (बरेली, उत्तर प्रदेश), अशोक भाटिया (करनाल, हरियाणा) और मधुदीप (दिल्ली) ने खचाखच भरे सभागार में अपनी-अपनी लघुकथाओं का पाठ किया। चारों लेखकों द्वारा पढ़ी गई लघुकथाओं द्वारा अपना-अपना श्रेष्ठ देने का प्रयास किया और वे सफल भी रहे। विषयों की विभिन्नता लिये अपने समय और समाज की धड़कनों को सँजोए लघुकथाओं को श्रोताओं ने तालियों की गड़गड़ाहट के साथ खूब सराहा और एक बात साफ हुई कि लघुकथा केवल पठनीय विधा नहीं है, वह कहानी की भाँति सुनने की भी विधा है। पढ़ी गई लघुकथाओं पर राम कुमार आत्रे, रामेश्वर कांबोज हिमांशु, सुभाष नीरव, राजकुमार गौतम, डॉ. शेरजंग गर्ग ने अपने-अपने विचार रखे। इस आयोजन का हिस्सा दिल्ली के अलावा, हरियाणा और उत्तर प्रदेश से आए लघुकथा-प्रेमी भी बने। हरियाणा से राम कुमार आत्रे, रामेश्वर कांबोज हिमांशु, राधेश्याम, बिजनौर (उत्तर प्रदेश) से डॉ. नीरज सुधांशु तथा उनके पति डॉ. सुधांशु, गुड़गाँव से विभा रश्मि, दिल्ली से वरिष्ठ साहित्यकार शेरजंग गर्ग, 'कथादेश' के संपादक हरिनारायण, बलराम, डॉ. रूपसिंह चंदेल, अवधेश मिश्र, राजकुमार गौतम, अशोक वर्मा, नीलिमा शर्मा, शोभा रस्तोगी, डॉ. विवेकानंद, भूपाल सूद व श्रीमती सूद आदि अनेक लघुकथा प्रेमियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज करके इस आयोजन को सफल मनाया। इस कार्यक्रम की सबसे बड़ी खासियत यह रही कि इसका साहित्य अकादेमी की वेबसाइट पर लाइव प्रसारण भी हुआ। निस्संदेह साहित्य अकादेमी के इस आयोजन को लघुकथा की विकास-यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव मानते हुए हमेशा याद रखा जाएगा।

हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा भी लघुकथा पर पहला आयोजन

दूसरी रिपोर्ट के अनुसार, हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा २६-२८ मार्च, २०१६ तक आयोजित किए गए 'शहीद भगत सिंह साहित्य महोत्सव' में २७ मार्च, २०१६ को एक सत्र हिंदी लघुकथा पाठ के लिए भी रखा गया। इसमें लघुकथाकार बलराम अग्रवाल, मधुदीप, सुभाष नीरव, रामेश्वर कांबोज हिमांशु, बलराम, शोभा रस्तोगी, हीरालाल नागर, पूरन सिंह और अशोक भाटिया ने श्रोताओं से खचाखच भरे विशाल सभागार में मंच से अपनी-अपनी लघुकथाओं का पाठ किया। इसका सफल संचालन अशोक भाटिया ने किया। लघुकथा को लेकर हिंदी अकादमी, दिल्ली का यह पहला आयोजन था।

पड़ाव और पड़ताल

दिशा प्रकाशन के तत्त्वावधान में सन् २०१४ के विश्व पुस्तक मेले से लघुकथा संकलन 'पड़ाव और पड़ताल' के प्रकाशन की एक महत्त्वपूर्ण योजना का शुभारंभ हुआ था। दिसंबर २०१५ तक इस योजना के १५ खंड प्रकाशित हो चुके थे। जनवरी २०१६ में संपन्न विश्व पुस्तक मेले में यह शृंखला नए रूप में अवतरित हुई। शृंखला का १६वाँ और १७वाँ खंड इस पुस्तक में मेले में एकल लघुकथाकार की ६६ लघुकथाओं और उनकी पड़ताल पर केंद्रित था। १६वाँ खंड भगीरथ की ६६ लघुकथाओं पर केंद्रित था और १७वाँ खंड बलराम अग्रवाल की ६६ लघुकथाओं पर केंद्रित था। इनके अतिरिक्त इस शृंखला के अब तक २३ खंड प्रकाशित हो चुके हैं। शृंखला में प्रकाशित अन्य लघुकथाकारों के नाम इस प्रकार हैं—अशोक भाटिया, सतीशराज पुष्करणा, कमल चोपड़ा, मधुदीप, सतीश दुबे व मधुकांत की ६६ लघुकथाएँ और उनकी पड़ताल को चिह्नित किया गया है। यह एक शोधग्रंथ-सा अवर्णनीय कार्य हुआ है। यहाँ वरिष्ठ लघुकथाकार मधुदीप का समर्पण प्रणम्य है।

लघुकथा अनवरत

देश की पहली लघुकथा-केंद्रित वेब पत्रिका 'लघुकथा डॉट कॉम' के सहित 'लघुकथा अनवरत' रामेश्वर कंबोज 'हिमांशु' और सुकेश साहनी के संपादन में कई नए हस्ताक्षरों ने अच्छे लघुकथाकार होने का गौरव पाया है। हिंदी लघुकथा में आप दोनों 'संपादक द्वय' व भूपी सूदजी को इस अहम भूमिका के लिए याद किया जाएगा। प्रगति मैदान में लगनेवाले विश्व पुस्तक मेला २०१६ में अयन प्रकाशन द्वारा 'लघुकथा अनवरत; फेसबुक मित्रों की लघुकथाएँ' का विमोचन हुआ है। आभासी दुनिया में चल रहे लघुकथा-लेखन को चिह्नित करने के मद्देनजर यह संकलन एक अद्वितीय पहल है।

बूँद बूँद सागर

इस बार 'बूँद-बूँद सागर' लघुकथा संकलन, जिसका संपादन डॉ. नीरज सुधांशु व जितेंद्र जीतू ने किया है। यह पुस्तक भी चर्चा का विषय बना है। इस पुस्तक में अधिकतर लघुकथाकार पहली बार प्रकाशित हुए थे। नव-लेखकों के प्रोत्साहन के संदर्भ में यह अनुपम पहल थी। २०१६ में ही अशोक भाटिया द्वारा संपादित लघुकथा संकलन 'हरियाणा से लघुकथाएँ' में ६१ लघुकथाकारों ने अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज (की)।

समसामयिक हिंदी लघुकथाएँ

त्रिलोक सिंह ठकुरेला (सं.) के इस संकलन में ११ सशक्त लघुकथाकार और उनकी ११-११ लघुकथाओं को शामिल किया गया है। 'आँखों देखी लघुकथा' : विकास मिश्र (सं.) गाजियाबाद से प्रकाशित संकलन है, जिसमें सिर्फ ८ लघुकथाकारों की ८८ लघुकथाओं को शामिल किया गया है। 'आदिम पुराकथाएँ' (पुराकथा संकलन) वसंत निरगुणे (सं.) और 'चलें नीड़ की ओर' : कांता राय (सं.) का प्रकाशन भी उल्लेखनीय है।

दृष्टि : लघुकथा की नई अर्द्धवार्षिक पत्रिका

वरिष्ठ लघुकथाकार कमल चोपड़ा सन् २००८ से लघुकथा की एक वार्षिक पत्रिका 'संरचना' का संपादन व प्रकाशन कर रहे हैं। वर्ष २०१६ में संरचना का आठवाँ अंक प्रकाश में आया। इस वर्ष कथाकार अशोक जैन ने लघुकथा विधा को समर्पित अर्धवार्षिक पत्रिका 'दृष्टि' का संपादन व प्रकाशन गुरुग्राम से किया है। पत्रिका की शुरुआत 'पारिवारिक लघुकथा विशेषांक' से हुई है। इसके पहले अंक में नए-पुराने करीब ५८ लघुकथाकार अपनी स्तरीय लघुकथाओं के साथ उपस्थित हैं। सतीशराज पुष्करणा और सुकेश साहनीजी के आलेख पत्रिका के इस अंक की सार्थकता को कायम करने में सफल रहे हैं। इसी वर्ष कथाकार विकेश निझावन के संपादन में 'पुष्पगंधा' त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका ने भी 'लघुकथा विशेषांक' का

प्रकाशन किया, जो उल्लेखनीय है। यह पत्रिका मेरे हाथ नहीं आ पाई है अब तक, लेकिन आदरणीय मार्टिन जॉन जी के अनुसार, 'विकेश निझावन ने 'पुष्पगंधा' के अद्यतन अंक को गंभीरतापूर्वक लघुकथा के नाम समर्पित करने का श्रमसाध्य कार्य किया है। प्रस्तुत अंक में किसी-न-किसी रूप में लघुकथा लेखन से जुड़ी तीन पीढ़ियों को समेटने का स्तुत्य प्रयास किया गया है। एक ओर जहाँ हरिशंकर परसाई (प्रख्यात व्यंग्यकार) विष्णु प्रभाकर, चित्रा मुद्गल, हिमांशु जोशी, सुधा ओम ढींगरा, संतोष श्रीवास्तव की लघुकथाओं ने इस अंक को गरिमामय स्वरूप प्रदान किया है, वहीं वरिष्ठ लघुकथाकारों—कमल चोपड़ा, मधुदीप, रूप देवगुण, जयश्री रॉय, उर्मि कृष्ण, शमीम शर्मा, राजकुमार गौतम, मुकेश शर्मा, अशोक भाटिया, अशोक जैन, रामकुमार आत्रेय, पूरन सिंह, केदारनाथ सविता, रामनिवास मानव, सिद्धेश्वर, फजल इमाम मल्लिक, सैली बलजीत, मृत्युंजय तिवारी, महावीर रवांल्टा, मार्टिन जॉन, डॉ. मुक्ता, शराफत अली खान की उत्कृष्ट लघुकथाओं ने भी अंक को समृद्ध किया है। समकालीन लघुकथा परिदृश्य में अपनी रचनात्मक ऊर्जा के साथ उपस्थिति दर्ज करानेवाले लघुकथाकार अरविंद कुमार खेड़े, रणजीत टाडा, अरविंद मुकुल, अशोक दर्द की प्रतिनिधि लघुकथाएँ भी प्रस्तुत अंक को उम्दा बनाती हैं।

हिंदी लघुकथा का चीन तक पहुँचना भी इस साल की उपलब्धि रही है। चीन से प्रकाशित होनेवाली हिंदी त्रैमासिक पत्रिका 'इंदु संचेतना' में इसे पहुँचाया है डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर' ने, जो इस पत्रिका के संपादक हैं। पत्रिका के इस अंक के अतिथि संपादक हैं श्री राहुल देव।

लब्ध प्रतिष्ठित व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई और 'सारिका' के संपादक अवध नारायण मुद्गल से लघुकथाकार मुकेश शर्मा की लघुकथा विषयक दुर्लभ बातचीत, अग्रिम पंक्ति के लघुकथाकार कमल चोपड़ा का एकमात्र सारगर्भित आलेख निश्चित रूप से इस अंक की उपलब्धि है।

२८वाँ लघुकथा सम्मेलन, पटना

अप्रैल माह में अखिल भारतीय प्रगतिशील लघुकथा मंच, पटना के तत्त्वावधान में हुए २८वें लघुकथा सम्मेलन का आयोजन जो बिहार ललित अकादमी के सभागार में आयोजित हुआ, वह भी अपनी सार्थकता को कायम करने में कामयाब रहा। एक दिन में ही चार सत्र का रखा जाना और चर्चाओं में विविधताएँ, देशभर के वरिष्ठ लघुकथाकारों का जमावड़ा, लेख, आख्यानों का दौर, आलेखों पर चर्चाओं का सत्र और लघुकथा पाठ व उस पर विस्तारपूर्ण समीक्षा विधा पर उत्कृष्ट कार्यशाला को चिह्नित करने में सफल रही। 'किलकारी' समूह के बच्चों द्वारा लघुकथा वाचन आयोजन को नया आयाम मिला।

हिंदी लघुकथा के सफर में चीन

साहित्य अकादमी में लघुकथा को कथाकार बलराम अग्रवाल के लंबे प्रयासों के परिणामस्वरूप वहाँ के विशेष कार्याधिकारी डॉ. देवेंद्र कुमार देवेश ने प्रविष्टि दिलाई तथा हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा आयोजित 'साहित्य महोत्सव' में श्री विकास नारायण राय व डॉ. अशोक भाटिया के प्रयासों ने इसे पहुँचाया।

हिंदी लघुकथा का चीन तक पहुँचना भी इस साल की उपलब्धि रही है। चीन से प्रकाशित होनेवाली हिंदी त्रैमासिक पत्रिका 'इंदु संचेतना' में इसे पहुँचाया है डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर' ने, जो इस पत्रिका के संपादक हैं। पत्रिका के इस अंक के अतिथि संपादक हैं श्री राहुल देव। डॉ. गुणशेखर व राहुल देव के साथ-साथ इस सत्कार्य के लिए पत्रिका के संरक्षक श्री चोंग वेई ह तथा प्रबंध संपादक श्री हू रुई। 'इंदु संचेतना' ने बलराम अग्रवाल की लघुकथाओं के प्रकाशन से इस कार्य की शुरुआत की।

आकाशवाणी भोपाल से लघुकथा का पहली बार प्रसारण

इसी साल भोपाल ने भी नए पहलुओं से विधा की गरमाहट को महसूस किया। लघुकथाकार कांता रॉय की छह लघुकथाओं का पाठ आकाशवाणी भोपाल केंद्र से प्रसारण हुआ, जो लघुकथा विधा पर यह पहली बार हुआ है। आकाशवाणी भोपाल की इस पहल से लघुकथा विधा संदर्भ में कई नई चर्चा को सार्थकता मिली है।

म.प्र. संस्कृति विभाग में पहली बार लघुकथा की उपस्थिति

इसी साल मध्य प्रदेश संस्कृति विभाग, भारत भवन की इकाई निराला सृजन पीठ में रचना-पाठ 'तिलक' के अंतर्गत पहली बार लघुकथा पाठ के लिए कांता रॉय को आमंत्रित किया गया, जो एक सार्थक पहल रही।

द्वितीय ग्लोबल लिटरेरी फेस्टिवल और लघुकथा का सेशन

द्वितीय ग्लोबल लिटरेरी फेस्टिवल, नोएडा २०१६ में अन्य साहित्यिक कार्यशाला के साथ ही लघुकथा-विधा पर कांता रॉय का डेढ़ घंटे का सेशन रखा गया था, जिसमें 'लघुकथा लेखन का उद्देश्य और उसका शिल्प-विधान' पर व्यापक चर्चा हुई।

ऑनलाइन पुस्तक विमोचन साहित्यिक परिवेश में सार्थक पहल

'लघुकथा के परिंदे' मंच पर एक अलग अनुभव, तकनीक और साहित्य का मेल लघुकथा पुस्तक का ऑनलाइन विमोचन के अवसर पर मिला। 'एक पेग जिंदगी' कथा संग्रह पर चर्चाओं के दौरान २४ पुस्तक समीक्षाओं की आमद हुई, जो पूरे देश के अलग-अलग शहरों से वरिष्ठ लघुकथाकारों व साहित्यकारों द्वारा पोस्ट की गई थी। इस विराट् चर्चा-उत्सव को 'ऑनलाइन पुस्तक विमोचन' में सकारात्मक नजरिए से आयोजन की पहल को संदर्भित किया गया है।

'सत्य की मशाल' और लघुकथा का स्थायी स्तंभ

'सत्य की मशाल' पारिवारिक मासिक पत्रिका में लघुकथा को स्थायी स्तंभ के रूप में स्थापित कर विधा के लिए तीन पृष्ठ को सुरक्षित रखा गया। प्रिंट मीडिया में लघुकथा को मुख्य धारा में लाने का सामाचार

पत्रिका की संपादक कांता रॉय की तरफ से अपनी तरह का यह पहला कदम है। हालाँकि मैं यहाँ यह भी संदर्भित करना चाहूँगी कि साहित्य अकादमी मध्य प्रदेश की मासिक पत्रिका 'साक्षात्कार' अन्य विधाओं की बराबरी के साथ लघुकथा को भी स्थायी स्तंभ के रूप में संपूर्ण पन्ने के साथ जगह देती है।

ओपन बुक्स ऑनलाइन

इस साल लघुकथा विधा पर किए गए सार्थक प्रयासों में 'ओपन बुक्स ऑनलाइन' का अलग-अलग शहरों भोपाल और लखनऊ में आयोजित 'साहित्योत्सव आयोजनों' में 'लघुकथा-सत्र' पर वृहद चर्चा उल्लेखनीय प्रयास है। 'ओबीओ लघुकथा चैप्टर' कानपुर की स्थापना मुख्य रूप से लघुकथा विधा पर वहाँ के लेखकों के रुझान व एकाग्र होकर समर्पण के मद्देनजर ही हुआ है। अन्नपूर्णा वाजपेयी के संरक्षण में 'लघुकथा मासिक गोष्ठी' संचालित हुई है।

इस साल जहाँ हिंदी लेखिका संघ मध्य प्रदेश, भोपाल में लघुकथा गोष्ठी व लघुकथा-पुस्तक विमोचन से विधा-सम्मत काम करने से भोपाल की पृष्ठभूमि मजबूत हुई है, वहीं दूसरी ओर जबलपुर में भी आचार्य संजीव वर्मा 'सलिल' की अध्यक्षता में एक मासिक गोष्ठी का आगाज हुआ है, जिनमें प्रभात दूबे सहित कई प्रखर लघुकथाकार शामिल हुए।

२५वाँ अंतरराज्यीय लघुकथा सम्मेलन

कथाकार सुभाष नीरव की ही एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार— पंजाबी की त्रैमासिक लघुकथा पत्रिका 'मिन्नी' (संपादक : श्याम सुंदर अग्रवाल और डॉ. श्याम सुंदर दीप्ति) के संयोजन में २५वाँ अंतरराज्यीय लघुकथा सम्मेलन २३ अक्तूबर, २०१६ को पिंगलवाड़ा, अमृतसर में संपन्न हुआ, जिसमें दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब से बड़ी संख्या में आए लघुकथा लेखक इकट्ठा हुए। सत्र सम्मान समारोह और पुस्तक विमोचन के रूप में रहा, जिसमें मिन्नी त्रैमासिक का ११३वाँ अंक, 'पछाण ते पड़चोल' (दूसरा भाग- संपादक : दीप्ति अग्रवाल, नूर व खेमकरनी) 'आथण वेला' (श्याम सुंदर अग्रवाल का तीसरा लघुकथा संग्रह), 'कैक्टस ते तितलियाँ' (बलराम अग्रवाल का पंजाबी में लघुकथा संग्रह, अनुवादक : श्याम सुंदर अग्रवाल), 'मेरियाँ प्रतिनिधि मिन्नी कहानियाँ' (श्याम सुंदर दीप्ति का नया लघुकथा संग्रह), 'ठीक किहा तुसीं' (गुरसेवक सिंह रोड़की का लघुकथा संग्रह), 'पंजवा थम्म' (संपादक : जगदीश राय कुलरियाँ), 'गल्पी विधा लघुकथा : सिद्धांत ते विचार' (डॉ. कुलदीप सिंह दीप), 'तारा मंडल' (अशोक भाटिया का पंजाबी में लघुकथा संग्रह, अनुवादक : जगदीश राय कुलरियाँ), 'पथ का चुनाव' (कांता राय का लघुकथा संग्रह) पुस्तकों का विमोचन हुआ। इस अवसर पर सीमा जैन और कुलविंदर कौशल को 'लघुकथा किरण सम्मान', श्रीमती आशा ठाकुर को ललिता अग्रवाल स्मृति सम्मान-२०१६, डॉ. अशोक भाटिया को श्री बलदेव कौशिक स्मृति सम्मान से सम्मानित किया गया। 'जुगुनूओं के अंग-संग' नामक दूसरे सत्र में हिंदी और पंजाबी के लगभग पचास से भी ऊपर लेखकों ने अपनी-अपनी लघुकथा का पाठ किया। पठित पंजाबी लघुकथाओं पर डॉ. पवन हरचंदपुरी, डॉ. अनूप सिंह और डॉ. कुलदीप 'दीप' तथा हिंदी लघुकथाओं पर डॉ. अशोक भाटिया व डॉ. बलराम अग्रवाल द्वारा सारगर्भित दो टूक निष्पक्ष टिप्पणियाँ प्रस्तुत की गईं।'

सेतु का प्रकाशन

जून २०१६ में अमेरिका से प्रकाशित होनेवाली इस पत्रिका में लघुकथा को स्थायी स्तंभ के रूप में स्थापित किया गया है। दीपक मशाल और अनुराग शर्मा द्वारा संपादित 'सेतु' का प्रकाशन आरंभ होना लघुकथा विधा में नई आमद है।

विश्व मैत्री मंच

संतोष श्रीवास्तव की अध्यक्षता में 'विश्व मैत्री मंच' ने लघुकथा विधा के संदर्भ में देश-विदेश में अपनी सार्थक चर्चाओं के दौरान कई गोष्ठियाँ आयोजित की हैं।

भूटान में विश्व मैत्री मंच के द्वारा महिला लघुकथाकारों का राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें नेपाल, बिहार तथा भारत के कई प्रदेशों से महिला लघुकथाकारों ने शिरकत की। एक दिवसीय इस सम्मेलन में लघुकथाओं पर विस्तृत चर्चा हुई। विश्व मैत्री मंच के वाट्स एप समूह के द्वारा भी प्रति शनिवार लघुकथा की वर्कशॉप आयोजित की जाती है; जिसमें २१० सदस्यों द्वारा लघुकथाएँ लिखी जाती हैं और उन पर खुलेपन से आलोचनापरक विचार प्रस्तुत किए जाते हैं। विश्व मैत्री मंच समूह में लिखी गई लघुकथाओं का एक संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है। इसका लोकार्पण विश्व पुस्तक मेला, नई दिल्ली, २०१७ में होगा।

हिंदी लघुकथा का मनोविज्ञान

३ अक्तूबर, २०१६ से लघुकथा केंद्रित अपने हिंदी ब्लॉग 'लघुकथा-वार्त्ता' पर बलराम अग्रवाल ने 'हिंदी लघुकथा का मनोविज्ञान' शीर्षक के अंतर्गत 'हिंदी लघुकथा : परंपरा और विकास' शीर्षक पहले अध्याय की शृंखलाबद्ध प्रस्तुति प्रारंभ की। इस शृंखला में लघुकथा विकास पर पैनी दृष्टि अवलोकित हुई है। अपने एक अन्य ब्लॉग के माध्यम से उन्होंने सन् १९७१ से २०१६ तक प्रकाशित लघुकथा संग्रहों व लघुकथा संकलनों की सूची, लघुकथा गोष्ठियों व सम्मेलनों सहित अन्य गतिविधियों पर व्यापक रूप से समग्र जानकारी उपलब्ध करवाई है, जो अपने आप में भगीरथी प्रयास है। अंतर्जाल पर लघुकथा पर पूर्णत: केंद्रित एकमात्र वेब पत्रिका 'लघुकथा डॉट काम' ने इस साल अध्ययन कक्ष में सतीशराज पुष्करणा, कमल चोपड़ा, बलराम अग्रवाल इत्यादि लघुकथाकारों के महत्त्वपूर्ण आलेखों का प्रकाशन किया है।

इस लेख में मैंने नवंबर २०१६ के अंतिम पखवाड़े तक संपन्न लघुकथा से जुड़ी अधिकतम सूचनाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

म. नं.-२१, सेक्टर-सी,
सुभाष कॉलोनी, निकट हाई टेंशन लाईन,
गोविंदपुरा, भोपाल-४६२०२३ (म.प्र.)
दूरभाष : ९५७५४६५१४७

डिस्कनेक्ट

● मार्टिन जॉन

कस्बे से मीलों दूर बड़े शहर के नामी-गिरामी इंजीनियरिंग कॉलेज का छात्र अभिषेक का मोबाइल कई मर्तबा गुनगुना चुका था। बार-बार की गुनगुनाहट जब बरदाश्त नहीं हुई तो बड़े बेदिली से रिसीव किया, 'हाँ मम्मी, जल्दी बोलो।'

'अरे बेटा, कब से कॉल कर रही हूँ, तुम रिसीव नहीं कर रहे हो, चिंता में पड़ जाती हूँ न!'

'हमने कहा था न, जब तब कॉल मत करना···अब जल्दी बोलो।'

'खाना खा लिया?···क्या खाया?···सोने के पहले दूध ले लेना।'

'अरे मम्मी, फिजूल की बातें छोड़ो! कोई जरूरी बात है तो जल्दी बोलो।'

'बेटा, नानी आई हैं···तुमसे बात करना चाहती हैं। लो, जरा बात कर लो!'

'हाँ, बेटा कैसे हो?' नानीजी ने काँपती आवाज में नाती के प्रति प्यार और स्नेह उड़ेलते हुए अपनी बात जारी रखी, '···मेरे लाल, बहुत दिन हो गए तुमको देखे···बहुत जी करता है देखने को···खाना-पीना ठीक से करना···पढ़ाई-लिखाई पर ध्यान देना···इंजीनियर बनकर खानदान का नाम रोशन करना···रात को ज्यादा देर तक घूमना-फिरना मत···जल्दी सो जाना।···और हाँ, सुबह-शाम प्रार्थना करना मत भूलना···भगवान् तुम्हें आशीष दे···हमेशा सेहतमंद रखे···ईश्वर से दुआ करती हूँ···रखती हूँ बेटे।'

बेचारी नानी को पता ही नहीं कि उसके ममत्व का सागर कमरे में ही हिलोरें ले रहा था।

नौनिहाल ने तो शुरू में ही मोबाइल डिस्कनेक्ट कर दिया था।

लाइक

'अरे बेटा, तैयार हो जाओ। कॉलेज जाने का समय हो गया है।···कितनी देर से लेपटॉप में घुसे हो!' दादाजी अपने पोते से मुखातिब थे।

'वेट ए लिटिल दादाजी!···लाइक्स गिन रहा हूँ।'

'काहे का लाइक्स, भई?'

'कल हमने मम्मी की डेथ वाली फोटोज फेसबुक और व्हाट्स एप में पोस्ट की थी।'

'तो?' दादाजी अबोध बालक की तरह प्रश्नाकुल थे।

'यू नो दादाजी, लगभग एक हजार लाइक्स मिले हैं।···इतने लाइक्स तो मेरे किसी भी फ्रेंड को नहीं मिले हैं।···रिकॉर्ड ब्रेक!'

मूलतः लघुकथाकार। शताधिक लघुकथाएँ पत्र-पत्रिकाओं, वेब मैगजीन, ब्लॉगों में प्रकाशित एवं संकलनों में संकलित। आकाशवाणी रचनाएँ से प्रसारित। प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत।

'लाइक!' दादाजी इस शब्द को बुदबुदाते हुए उस दुनिया को समझने की नाकाम कोशिश करने लगे, जहाँ के लोग किसी की मौत को भी बढ़-चढ़कर पसंद करते हैं।

झूठ बिकता है

लाइट!···कैमरा!···एक्शन!

बॉलीवुड की मशहूर अदाकारा स्टूडियो के कृत्रिम झरने के नीचे नहा रही है। गोरा बदन देसी साबुन 'रोजफ्लॉवर' के सफेद झाग से पूरी तरह ढका हुआ है। साबुन को दिखाते हुए संगमरमरी बाँहों को मादक अंदाज में आहिस्ता-आहिस्ता रगड़ रही है, 'क्या आप जानते हैं मेरी खूबसूरती का राज?···जिसने मुझे खूबसूरत बनाया, वह है 'रोज फ्लॉवर'···यह देता है मुझे दिनभर की ताजगी, गुलाब की बेमिसाल खुशबू।···यकीन न हो तो इस्तेमाल कीजिए···चेहरे की ऑयली स्किन से निजात पाइए।'

शॉट ओके होते ही अदाकारा फौरन स्टूडियो में ही बने बाथरूम में घुस गई। बाथरूम से निकलकर मैकअप रूम में ड्रेस वगैरह चेंज करने के बाद स्टूडियो से रवाना होने के लिए जैसे ही अपने वैनिटीवैन के भीतर दाखिल होने को उद्यत हुई तो सामने खड़े कैमरामैन की साँसों में मदहोश कर देनेवाली खुशबू घुल गई। कैमरामैन अपने को रोक नहीं पाया और उसने पूछ ही डाला, 'मैम, इफ यू डोंट माइंड, आप मुझे बताएँगी कि यह खुशबू किस परफ्यूम की है?'

'साबुन की है नॉनसेंस!···स्वीडन से मँगवाती हूँ। यू नो, कोई दूसरा साबुन यूज करूँ तो मेरी स्किन में फुंसियाँ निकल आती हैं।'

अपर बेनियासोल, पोस्ट : आद्रा
जिला : पुरुलिया-२३१२२१ (प.बं.)
दूरभाष : ०९८००९४०४७७

नियम के अनुसार

● मुकेश शर्मा

चार एकड़ में बसे भव्य स्कूल का प्राचार्य स्कूल के चेयरमैन रूपी मालिक के सामने था, ''सर, बात बनी नहीं। कल सरकारी विभाग के लोग इस स्कूल की बिल्डिंग को अवैध निर्माण घोषित करते हुए इसे तोड़ने के लिए आ जाएँगे।''

चेयरमैन का सिर घूम गया, ''स्कूल के साथ पचास एकड़ खाली जमीन पड़ी है, यहाँ सरकार अपनी कोई भी योजना लागू कर सकती है।''

''सर, यहाँ बिल्कुल साथ लगती जमीन पर स्कूल बनाए जाएँगे।'' प्राचार्य ने समझाने की कोशिश की।

''वो स्कूल तो पता नहीं कब बनाए जाएँगे, लेकिन यह स्कूल तो आज के दिन ही बना-बनाया है। वे अपने प्रपोजल को कुछ बदल नहीं सकते?''

''सर, उनके नियमानुसार यह उस प्रस्तावित भूमि में नहीं है। इसलिए नियमानुसार इस बिल्डिंग को तोड़ना···'' प्राचार्य सही तरीके से समझा नहीं पा रहा था।

''लेकिन हम तो सरकार द्वारा घोषित सभी शर्तों को पूरा कर रहे हैं।''

''जी सर! इसकी जाँच के लिए जो कमेटी बनी थी, उस कमेटी के क्लर्क ने मौखिक तौर पर अपनी गलती स्वीकार कर ली है कि वह स्कूल की जमीन चार एकड़ लिखने की बजाय चार सौ गज लिख गया। जिस पर कमेटी ने इसे नियमों का उल्लंघन माना और बिल्डिंग को तोड़ने के आदेश दे दिए।''

''क्या···? गलती क्लर्क करे और सजा हम भुगतें? तुमने यह बात बड़े साहब को बताई?''

''हाँ, बताई सर! उन्होंने कहा कि जाँच-कमेटी का निर्णय फाइनल है, वे उसे बदल नहीं सकते। यदि जाँच-कमेटी का निर्णय आने के बाद भी उन्होंने कमेटी के फैसले को बदल दिया तो उन पर ही अंगुलियाँ उठ जाएँगी।''

''इन लोगों की कुछ 'सेवा-पानी' भी आपने की थी या नहीं?''

''नहीं सर! इस मामले में तो 'ट्राई' ही नहीं किया, सर!''

''तो फिर अब···?'' चेयरमैन के माथे पर पसीना छलछला उठा।

सुपरिचित साहित्यकार। लघुकथा की आलोचना/समीक्षा पर तीन पुस्तकों के अलावा एक कहानी संग्रह प्रकाशित। हरिशंकर परसाई, विष्णु प्रभाकर, रावी, रामनारायण उपाध्याय, अवधनारायण मुदगल आदि के लघुकथा पर लिए साक्षात्कार 'लघुकथा के आयाम' उनकी हस्तलिपि में प्रकाशित। कहानी प्रतियोगिता में साहित्य अकादमी (हरियाणा) का प्रथम पुरस्कार प्राप्त।

''सर! सरकारी विभागवाले नियमानुसार कारवाई करेंगे और कल इस बिल्डिंग को ढहाने के लिए आ जाएँगे।'' प्राचार्य ने अपनी जेब से रूमाल निकाला और चेयरमैन साहब के माथे का पसीना पोंछने लगा।

छोटी सी एक बड़ी बात

पत्नी को चिकनगुनिया हो गया, यानी बुखार और असहनीय जोड़-दर्द, दोनों एक साथ। पति ने हर बार की तरह मनोबल बढ़ाया, 'धीरज रखो, साहस से काम लो। शरीर का मूवमेंट जारी रखो। रोजमर्रा के काम चलने दो। शरीर में शिथिलता नहीं आएगी।'

पत्नी ने सलाह पर अमल किया। बुखार और घरेलू कामकाज साथ-साथ चलते रहे। किंतु दुर्भाग्य···अगले सप्ताह भी पत्नी का बुखार उतरा नहीं, बल्कि पति को भी निन्यानबे डिग्री बुखार और हो गया।

पत्नी ने पति की सलाह दोहराई, 'धीरज रखो, साहस से काम लो। शरीर का मूवमेंट जारी रखो। रोजमर्रा के काम चलने दो। शरीर में शिथिलता नहीं आएगी।'

किंतु पति ने कराहते हुए जवाब दिया, 'मेरे वश की बात नहीं है। मुझे पानी पिला दो और फिर मेरा सिर दबा दो।'

मकान नं. १४४५, सेक्टर-४, अर्बन स्टेट
गुरुग्राम-१२२००१ (हरियाणा)
दूरभाष : ९८१००२२३१२

लघुकथा

षड्यंत्र

● पवन शर्मा

वह देख रहा है। दद्दा को सभी घेरे बैठे हुए हैं। अम्माँ, उसकी दोनों बहनें, सीमा और लता तथा छोटा भाई विनोद। बीच में बैठे दद्दा बतिया रहे हैं। दद्दा अभी-अभी लौटे हैं।

'कितेक के यहाँ गए थे?' अम्माँ पूछती हैं।

'कईन के यहाँ।' दद्दा ने बताया।

'कछू जमी?'

'जमी क्या···फोटो ले आयो हूँ।' दद्दा ने कहा और बैग में से चार फोटो निकालकर अम्माँ की ओर बढ़ा दीं। अम्माँ के पास जाने से पहले ही सीमा और लता ने फोटो झपट लीं। फोटो देखकर दोनों के चेहरे पर प्रसन्नता छा गई। विनोद भी झुककर देखने लगा।

'अम्माँ, जे ठीक है।' सीमा बोली।

'नईं अम्माँ, जे ठीक है।' लता बोली।

वह कुछ नहीं बोला। उसे यह सब तमाशा लग रहा था। अब अम्माँ भी फोटो देखने लगीं। दद्दा कह रहे थे, कमीज उतारते हुए, 'मैंने तो हरेक के यहाँ जे कही कि साठ एकड़ खेत है···ट्रैक्टर चल रओ है···गाय-बैल-भैंस···सब-कुछ है, कोई कमी नईं है मोए! बस, मौड़ी भर ठीक होनी चाहिए। और कहो कि मेरो मौड़ा एम.ए. फाइनल में है जे साल ···और मौड़न से सीधो···कोई ऐब नईं बामें···चाहे तो चल के देख लेओ।' दद्दा थोड़ी देर के लिए रुके, बीड़ी सुलगाई, फिर बोले, 'जे ऊपरवाली फोटो है न···जाके बाप ने कहो कि ब्याह में कोई कसर नई रखूँगो···आवभगत पूरी···पच्चीस हजार देवे कूँ भी बोलो है···मैं सोच रओ हूँ कि जई के साथ पक्की कर देऊँ···और जे नीचेवाली फोटो है न···जा के बाप ने बीस तक बात करी है···।' दद्दा ने कहा और बीड़ी का जोर से सुट्टा मारा तथा हलक से ढेर सारा धुआँ उगल दिया।

'अब तो जाइके ऊपर है कि जाए कौन सी मौड़ी पसंद आएगी।' अम्माँ बोलीं।

वह मन-ही-मन सुलगने लगा।

'काए रे, कौन सी ठीक है? देख ले···तू भी देख ले, नईं तो बाद में हमें ही दोश दे···बता देईए···परों तक जवाब भेजनो है।' दद्दा बोले।

वरिष्ठ लघुकथाकार। तीन लघुकथा संग्रह और एक कहानी संग्रह प्रकाशित। अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित। संप्रति अध्यापन।

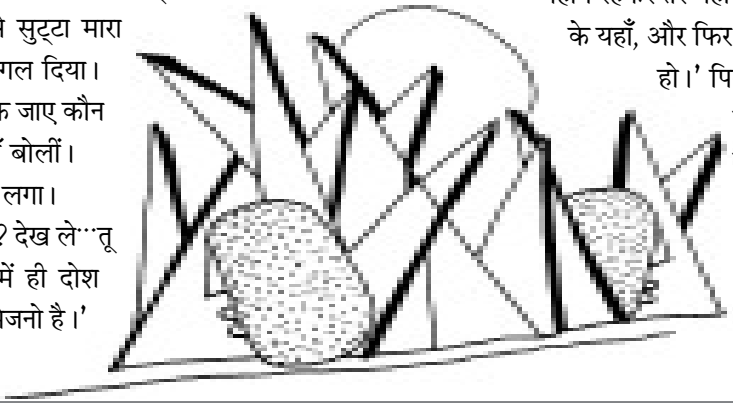

वह देखता है कि सीमा और लता आपस में धीरे-धीरे कुछ बात कर रही हैं, विनोद भी उनमें जा मिला है। अम्माँ उठकर दद्दा के पास जा बैठी हैं, उसे लगा···घर में सभी उसके विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे हैं—क्या दद्दा···क्या अम्माँ···क्या सीमा···क्या लता···क्या विनोद···सब।

'मोए इतनी जल्दी काए के लाने बेच रहे हो, दद्दा।' बोलते हुए एक विद्रूपता उसके चेहरे पर तैर आई।

यह पारी ही तो है!

अचानक पिताजी ने जाने की घोषणा कर दी। फिर उन्होंने अपना सामान समेटना शुरू कर दिया और एक छोटे बक्से में सामान सहेज-सहेजकर रखने लगे।

ऐसा अकसर ही होता है कि पिताजी एकाध माह रहकर जाने की घोषणा कर देते हैं। शुरू-शुरू में मैं चौंकता था, किंतु अब कोई आश्चर्य नहीं होता। जब तक माँ थी, पिताजी ने गाँव नहीं छोड़ा था, किंतु माँ के गुजर जाने के बाद वे तीनों बेटों के यहाँ रहकर कुछ-कुछ दिन बिताने लगे।

'तो क्या आज ही निकल जाएँगे?' मैंने पूछा।

'हाँ।' वे बोले।'

'एक-आध दिन और रुक जाते।'

'नहीं, अब नहीं रुकूँगा, जाऊँगा, यहाँ काफी दिन रह लिया।'

'हाँ, मँझला भी राह देख रहा होगा।' मैं कहता हूँ।

'मँझले के यहाँ नहीं जाऊँगा। सोचता हूँ कि अब गाँव निकल जाऊँ। वहीं रहूँ।'

'क्यों?'

'अब जीवन के आखिरी दिनों में यह अच्छा नहीं लगता कि एकाध महीने रहकर तेरे यहाँ से मँझले के यहाँ, मँझले के यहाँ से छोटे के यहाँ, और फिर तेरे यहाँ जैसे कि एक पारी-सी बँधी हुई हो।' पिताजी कह रहे थे। मैं चुपचाप था। एक सन्नाटा-सा खिंच आया था मेरे और पिताजी के मध्य।

विद्या भवन, सुकरी चर्च, जुन्नारदेव
जिला-छिंदवाड़ा-४८०५५१ (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५८३७०७९

पत्थर

● फजल इमाम मलिक

उसने बहुत बड़ा मकान बनाया···मकान में ढेरों खूबसूरत पत्थर लगाए···मकान में जड़े पत्थर लोगों को लुभाते···पर पत्थरों के बीच रहते-रहते एक दिन वह खुद भी पत्थर हो गया···।

वरिष्ठ लघुकथाकार और पत्रकार। गत कुछ वर्षों से राजनीति में भी सक्रिय। संप्रति जनसत्ता नई दिल्ली में कार्यरत।

काँच परी

उसने फूलों जैसी नाजुक उस लड़की को देखा। कुछ ही दिनों बाद उसकी नाजुक उँगलियों में उसने कीमती पत्थर जड़ी खूबसूरत अँगूठी पहना दी। उसे अपने जीवन में शामिल कर लिया।

उसके बाद, लड़के ने अपने बड़े से घर में लड़की को उतारा। उसे वह सब-कुछ दिया, जिसकी कल्पना खुद उस लड़की ने नहीं की होगी।

पर अब, लड़की फूलों जैसी नाजुक नहीं रही थी।

कीमत

''अच्छा, तुम ही बताओ, वह पत्थर ही तो था···अँगूठी में जड़ा पत्थर···कीमती जरूर था···लेकिन···पत्थर की कीमत भावनाओं से बड़ी तो नहीं होती···।'' भीगी आँखों के साथ उसने सवाल किया।

''तुम्हारा कहना सही है···''

''फिर उस पत्थर के लिए मेरा पति पत्थर क्यों बन गया···?''

मेरे इस सवाल का कोई जवाब उसके पास नहीं था।

उड़ान

उसने आँखें खोलीं तो दुनिया उसे बहुत अच्छी लगी। खुला-खुला आकाश और लंबी-चौड़ी धरती ने उसे अपने सम्मोहन में जकड़ा। उसने अपने पंख खोलकर आकाश के विस्तार को नापना चाहा तो बड़े-बूढ़ों ने उसे समझाया—इतनी जल्दी उड़ान भरना अच्छी बात नहीं है। धीरे-धीरे···कदम-दर-कदम···चलना सीखो; और जब दुनिया पूरी तरह समझ में आ जाए, तो पूरी तरह पंख खोलकर उड़ान भरो।''

उसे यह बात अच्छी नहीं लगी···और उसने बुजुर्गों की बातों को झुठलाने के लिए लंबी उड़ान भरी··

लेकिन थोड़ी देर बाद ही वह धरती पर पड़ा था···।

अँधेरा

रोशनी छलने लगी थी और अन्याय का बोलबाला था। उजाले अब बेतरह डराने लगे थे···कब, कहाँ, क्या हो जाए, कुछ नहीं कहा जा सकता···

उसने बहुत सोचा···विचारा···और फिर अँधेरा कर डाला।

अँधेरा उसे अब रास आने लगा है।

अँधेरा-उजाला

उसे अँधेरों से नफरत थी। वह हमेशा उजालों के बीच रहता···घरों के दरो-दीवार भी रातों में रोशन रहते···अँधेरों को वह अपने पास फटकने नहीं देता···।

पर एक दिन, अचानक ही जब उसकी नजर अपने भीतर गई तो वह सकते में रह गया···भीतर अँधेरों का साम्राज्य था···।

अँधेरा उसका मुकद्दर बन चुका था···तंग और तारीक गलियों में उसने आँखें खोलीं और फिर अँधेरे ने उसका साथ नहीं छोड़ा···। उजाले की चाहत उसे भी थी और जब भी वह उजालों की तरफ़ हाथ बढ़ाता, अँधेरा उसके हाथ आता···।

मायूसी और निराशा उसे रोज परेशान करती। हालाँकि अँधेरे उसे अब डराते नहीं थे, लेकिन उजाले की ललक अब भी उसके अंदर कहीं कौंधती।

और एक दिन अचानक उसकी नजर अपने भीतर पड़ी तो वह हैरतजदा रह गया···उसके भीतर उजालों की एक दुनिया आबाद थी···।

कदम

पति की मौत के बाद अपना और अपने बच्चों का पेट पालने के लिए उसने एक दिन घर से बाहर पाँव धरा···

आज बरसों बीत गए हैं···उसके कदम फिर घर को नहीं लौट पाए।

जनसत्ता, नई दिल्ली-११०००२
दूरभाष : ९८६८०१८४७२

गऊमाता

पंजाबी लघुकथा

मूल : **अनवंत कौर**
अनुवाद : **श्यामसुंदर अग्रवाल**

राजू शर्मा की ससुराल नदी के पार थी। उस गाँव में अधिकतर घर ब्राह्मणों के थे। गऊ-गरीब की रक्षा करना वे अपना पहला धर्म मानते थे। राजू गाँव के एक सम्मानीय पुरोहित का दामाद था। गाँव में उसकी बहुत इज्जत थी। एक दिन लोगों ने देखा कि राजू कीचड़ में लथपथ एक गाय को हाँककर१ नदी से बाहर निकाल रहा है। भीड़ एकत्र हो गई। भीड़ को देखकर हाँफता हुआ राजू बताने लगा—

''गऊमाता कीचड़ में बुरी तरह फँसी हुई थीं। मैंने देखा तो मुझसे सहन नहीं हुआ। जान जोखिम में डालकर मैं इसे बचाकर लाया हूँ। अगर मैं न देखता तो इसका बचना कठिन था।''

गाँववाले उसके इस परोपकार को देखकर बहुत खुश हुए। सभी ने उसकी जय-जयकार की। उसके कीचड़ में सने वस्त्रों की परवाह किए बिना लोग उसे गले मिले। जुलूस के रूप में राजू को उसकी ससुराल तक लाया गया। उसके कीचड़ में सने वस्त्रों को देखकर उसकी पत्नी बोली, ''पहले हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदल लो।''

''कपड़ों का क्या है? धोकर साफ हो जाएँगे। भगवान् की कृपा से गऊमाता की जान बच गई।''

पत्नी उसे घर के भीतर ले गई, ''लावारिस गाय थी। मर जाती तो आसमान नहीं टूट पड़ता। तुम्हें इस मुसीबत में पड़ने की क्या जरूरत थी?''

राजू हँसता हुआ लोटपोट हो गया, फिर बोला, ''पगली! गऊ को बचाने की कहानी तो गढ़नी पड़ी। असल में मुझे तुम्हारे पास आना था। नदी पर पहुँचा तो देखा, वहाँ कोई नाव नहीं थी। नदी में पानी बहुत कम था। कम पानी देख, मैं पैदल ही नदी पार करने लगा। बीच में पहुँचा तो पानी थोड़ा गहरा हो गया, ऊपर से कीचड़-ही-कीचड़। मैं कीचड़ में धँसने लगा। न आगे बढ़ पा रहा था, न पीछे मुड़ पा रहा था। तभी मेरी नजर इस गऊ पर पड़ी। सोचा, यह जरूर कीचड़ से बाहर निकाल देगी। सो मैंने गऊ की पूँछ पकड़ ली और उसे धकेलता हुआ किनारे तक पहुँच गया। यह गऊ न होती तो मैं तो बीच में ही रह जाता।''

पत्नी उसे धुले वस्त्र पकड़ा 'जय गऊमाता की!' कहती हुई बाहर जुटी भीड़ में शामिल हो गई।

समय

मैथिली लघुकथा

मूल : **अनमोल झा**
अनुवाद : **नवीन चौधरी**

ऑफिस के लिए निकलने के समय से पंद्रह-बीस मिनट पहले मूसलधार वर्षा होने लगी। इतनी वर्षा हुई कि रास्ते में पानी जमा हो गया। मैं तैयार होकर थोड़ी देर बैठा रहा। जब वर्षा कम हुई तो मैंने पैंट को नीचे से तीन-चार फोल्ड कर दिए। सैंडलवाला चप्पल पहना और बैग-छाता लेकर बस पकड़ने निकला। अभी तक वर्षा हो रही थी।

रास्ते में कहीं कोई नहीं था। लोग दुकानों में या जहाँ-तहाँ दुबके हुए थे। एक युवती छाता लेकर मुझसे आगे चली जा रही थी, बस-स्टैंड की ओर। कुछ देर मैं उसके पीछे चलता रहा। फिर मैं उससे आगे निकल गया। कोई देख ले तो ऐसा न कहे कि मैं उसका पीछा कर रहा हूँ। जब मैं आगे निकल रहा था, उस समय उसने मेरी ओर देखा। आँखें चार हुईं। अधभीगे खुले हुए बाल, कजरारी आँखें, बिना ओढ़नी के उसके अंग देखते हुए मैं आगे बढ़ गया। पर मेरा मन पीछे ही रह गया। कजरारी आँखें इतनी अच्छी लगती हैं कि देखते ही रहें।

कुछ देर में हम लोग बस-स्टैंड पर पहुँचे। वहाँ और कोई नहीं, बस हम दोनों थे और दोनों की एक ही बस थी। एक-दो रिक्शा बगल में खड़े थे। रिक्शावाले चाय की दुकान में दुबक गए थे।

हम दोनों अपने-अपने छाते लेकर खड़े थे। बीच-बीच में आँखें चार होती रहीं। किसी बस के आने पर हम लोग उधर देखने लगते। दूर से बस आती हुई दिखाई पड़ी। मेरे पास आकर युवती बोली, ''मैं अपना छाता मोड़कर आपके छाते में आ जाती हूँ।'' और वह मेरे छाते में आ गई। उसकी पीठ मेरी छाती से सटी थी, उसके बाल मेरी बाँहों को छू रहे थे। मुझे सिहरन होने लगी। इतने में बस आकर सामने खड़ी हो गई। बस में हम साथ खड़े हो गए।

कुछ देर बाद युवती ने मुझसे पूछा, ''आप कहाँ जाएँगे?''

''इक्साइड। तुम कहाँ जाओगी?''

''बेलियाघाटा।''

बेलियाघाटा इस बस का अंतिम पड़ाव है। फिर कुछ देर बाद उसने मेरे कान में मुँह सटाकर कहा, ''बहुत ठंड है। हम लोग उतरकर चाय पी लें।''

मैंने कहा, ''मैं विवाहित हूँ। मेरे बीबी-बच्चे हैं।'' ''तो क्या हुआ? वे अपनी जगह पर हैं। हम लोग अपनी जगह।''

अब मुझे ऐसा लग रहा था जैसे उसने मुझे अपनी बाँहों के दायरे में कस लिया और मैं उससे छूटकर भागना चाहता हूँ।

नूतन पल्ली, उत्तर पोदराह,
हावड़ा-७१११०९ (पं. बंगाल)
दूरभाष : ०९९०३६६२८३०

उपनयन

मलयालम लघुकथा

● **कण्णन मेनन**

उपनयन कर्म और दोपहर का भोजन करके लंबी बोरी में दक्षिणा के रूप में मिले हुए नई धोती, चावल और नारियल आदि को भरते हुए तंत्रि के पास सुब्रह्मण्यम जा खड़ा हुआ। तंत्रि हँसा, साथ में वह भी।

''कल पिताजी ने बताया था कि स्वामी एक बड़े पंडित हैं।''

उसने गर्व के साथ सिर हिलाया।

''मुझे एक शंका है।''

''क्या है?''

''हम यह पवित्र धागा क्यों धारण करते हैं?'' सुब्रह्मण्यम ने जनेऊ को छूकर पूछा।

तंत्रि थोड़ा हिचकिचाया। बोला, ''क्या तुझे मालूम नहीं?''

''नहीं।''

''तू ब्राह्मण है, इसलिए यह पवित्र धागा धारण करना है।''

''मेरा शरीर खुजला रहा है; मैं इसे उतारने जा रहा हूँ।''

''अरे-अरे, ऐसा नहीं करना। बड़ा पाप लगेगा।''

''पाप? पाप यानी क्या है स्वामी?''

तंत्रि को गुस्सा आया। बोला, ''जो नहीं करना चाहिए, उसे करना पाप है।''

बच्चे को हँसी आई। पूछा, ''तो स्वामी ने कल रात जो सिगार पिया था?''

बच्चा मुझे कष्ट देने के भाव में ही आया है, यह उसे पता चल गया।

''वह तो मजाक में पिया था।''

''तो मजाक में पाप कर सकते हैं?''

वह कुछ नहीं बोला। बच्चे ने फिर शुरू किया, ''कल पिताजी जो बोतल लाए थे, वह खाली कर दी है न?''

उसने उसे घूरकर देखा।

बच्चे ने छोड़ा नहीं, ''स्वामी, ब्राह्मण लोगों के लिए मद्यपान करना पाप है न?''

तंत्रि दुबक गया। यह कोई सुन रहा है क्या? इसे देखने के लिए उसने चारों ओर देखा। सत्यानाश! यह शरारती न जाने अब क्या-क्या पूछनेवाला है?

''तबीयत ठीक नहीं थी। सारा बदन दर्द कर रहा था। पिताजी ने कहा था कि थोड़ा पीने से कम हो जाएगा। इसलिए एक घूँट ले लिया था।''

''यानी, कल ही तुमने दो पाप किए थे, है न?''

उस छोकरे के मुँह पर एक थप्पड़ मारने का मन हुआ। इसी बीच तंत्रि द्वारा पहनाए गए पवित्र धागे को उतारकर बच्चे ने धीरे से उसे अपने निक्कर के पॉकेट में रख लिया था।

''जाकर कुरता पहनो। जनेऊ के बिना दिखेगा तो कोई क्या सोचेगा?'' पीछे से पिता ने बच्चे को धिक्कारा।

बच्चे को भीतर जाते देखकर अपने दोस्तों से बातचीत कर रहे उसके पिताजी को उसने अपने पास बुला लिया।

''जल्दी ही उसे एक डॉक्टर के पास ले जाओ। कुछ गड़बड़ है! क्या-क्या बेमतलब के सवाल उसने मुझसे पूछे? मैं एकदम हड़बड़ा गया।''

पिताजी हँसे, ''मैंने सब सुन लिया। तुम इतने मूर्ख हो, यह मैं नहीं जानता था।''

निर्माल्य

मराठी लघुकथा

● **वि.सा. खांडेकर**

पूजा समाप्त होने को आई। ढेर सारे फूल भगवान् को अर्पित किए गए थे। उनमें से हर एक फूल मुसकरा रहा था। शायद उनकी वह हँसी अपनी जिंदगी की कृतार्थता के कारण थी। भगवान् भी पुलकित हो रहे थे। समर्पण और भक्ति-भावना से भला कौन प्रसन्न नहीं होता?

दूसरे दिन पुजारीजी उन सूखे, बासी फूलों को उतारने लगे। इससे मायूस हो, आर्द्र व कातर निगाहों से भगवान् की ओर देखते हुए वे फूल कहने लगे, ''तुम तो भक्ति के प्यासे हो भगवान्, हमने तुम्हारे लिए

अपना रूप, रस, गंध दाँव पर लगाया। फिर भी तुम हमें जुदा करोगे?''

फूलों की करुणा भरी पुकार सुनने की फुरसत भला कहाँ थी भगवान् के पास? वे तो दुखियारे लोगों को राहत पहुँचाने की व्यवस्था में ही व्यस्त थे।

पूजा के लिए फिर से नए फूल आने लगे।

निर्माल्य बनकर कोने में पड़े फूल नवागतों को आगाह करने लगे, ''पीछे हटो, हमारी मानो और यहाँ से लौट जाओ। कल तो हम भी तुम्हारी ही तरह खिलखिला रहे थे। आज हमारी हालत क्या हो गई है, तुम देख ही रहे हो। हमें अपनी अंधश्रद्धा ले डूबी।''

भगवान् की मूर्ति ने पुजारीजी को फटकार लगाई, ''पुजारी, इन बासी फूलों को अब तक फिंकवाया क्यों नहीं तुमने?''

गर्भगृह से बाहर, कूड़े के ढेर की ओर जाते हुए फूलों ने खीजकर कहा, ''हम निर्माल्य हो गए! और तुम? तुम तो बेजान पत्थर हो। किसने तुम्हें भगवान् बनाया?''

इससे आगे के शब्द किसी को सुनाई नहीं पड़े, क्योंकि पूजा आरंभ हो चुकी थी। जोरदार घंटा-नाद, स्रोत-पाठ और देवाधिदेव की जय-जयकार से समूचा परिवेश गूँज उठा।

पूजा समाप्त हुई। ताजे फूल पत्थर की मूर्ति की शोभा बढ़ाने लगे। उनमें से हर फूल मुसकरा रहा था, मानो उनकी हँसी भी अपनी जिंदगी की कृतार्थता का एहसास दिला रही थी! भगवान् भी कल की तरह प्रसन्न थे, भक्ति से किसका मन भला प्रसन्न नहीं होता, कौन नहीं हँसता? हँसने-रोने के इस दौर को अब आनेवाले कल का इंतजार है।

तेलुगु लघुकथा

असहनीय शोर

मूल : **भमिडि पाटि रामगोपाल**

अनुवाद : **पारनंदि निर्मला**

श्रीमतीजी और बच्चों के शोरगुल से बचने के लिए कुछ दिनों पहले मैंने एक स्टीरियो सेट खरीदा। उसके साथ ही पाश्चात्य संगीत के कुछ एल.पी. रिकार्ड्स भी खरीदे। साथ ही दुकानदार ने आर.डी. बर्मन के फिल्मी गीतों का एक एल.पी. मुफ्त में दे दिया। बस फिर क्या था, हमारे घरवालों ने वॉल्यूम बढ़ाकर अड़ोस-पड़ोस वालों के कान छेदने का काम शुरू कर दिया।

एक दिन मैं सिटी बस से उतरकर अपने पड़ोसी के साथ घर बैठ गया था।

''हम लोगों ने स्टीरियो सेट खरीदा है, कभी आकर सुनें।'' बातों-बातों में मैंने यह कहते हुए उन्हें अपने घर आने का निमंत्रण दिया।

''आप हमारे घर आकर अपना स्टीरियो सेट सुनें तो अच्छा रहेगा।'' तब जाकर कहीं मुझे कहीं पता चला कि हम लोग कितने जोर से बजा रहे हैं।

: दो :

एक घर के मालिक से सुब्बाराम की भेंट हुई। सुब्बाराम किराए के मकान के लिए उनके घर गया। घर उसको पसंद आया और मालिक ने भी देना स्वीकार कर लिया। ''हाँ, एक बात पूछना ही भूल गया, आपके यहाँ कुत्ते नहीं हैं न?''

''नहीं···नहीं हैं।'' सुब्बाराम ने कहा।

''रेडियो या टी.वी है?''

''नहीं है।''

''ग्रामोफोन या स्टीरियो सेट?''

''वह भी नहीं है।''

''संगीत सीखने वाली बहनें या हारमोनियम जैसे बाजे?''

''नहीं हैं।''

''अलार्म वाली घड़ी''

''वह भी नहीं है।''

''छोटी-छोटी बातों पर रोने वाले बच्चे?''

''नहीं, हमारे अभी बच्चे नहीं हुए हैं।''

''अच्छी बात है।'' घर के मालिक ने कहा, ''मेरे कहने का मतलब यह नहीं था कि आप नि:संतान रहें। बल्कि बात यह है कि मुझे शोरगुल पसंद नहीं है। कल ही आप आ सकते हैं।''

सुब्बाराम गेट तक गया फिर लौटकर बोला, ''साहब एक विनती है।''

''कहिए।''

मेरे पास एक पुराना पार्कर पेन है, जो मेरी पैतृक संपत्ति है। लिखते समय वह बर्र-बर्र की आवाज करता है। दिन को तो पता नहीं, पर रात को थोड़ा अधिक ही आवाज करता है। मुझे ही पहले यह बात आपको बतानी थी। हाँ, इससे आपको कोई एतराज तो नहीं है?''

बस फिर क्या था, सुब्बाराम को वह घर किराए पर नहीं मिला।

: तीन :

हमारी दूर की एक रिश्तेदार रामलक्ष्मी ने प्रसव के बाद बच्चे को लेकर आने के उपलक्ष्य में एक छोटी सी पार्टी का आयोजन किया था। मैं श्रीमतीजी के साथ गया। बच्चे को आशीर्वाद और बड़ों को बधाई देने के बाद मेरी श्रीमतीजी ने पूछा, ''रात को बच्चे के दूध के लिए रोने पर आप उठती हैं या आपके पति?''

यह सुन उन्होंने कहा, ''हमारे पड़ोसी पहले उठते हैं।''

ठीक भी तो है, पति-पत्नी दोनों नौकरी करते हैं और दिनभर के थके-थकाए उन दोनों को बच्चे का रोना कैसे सुनाई दे सकता है!

कौन

उर्दू लघुकथा

मूल : **जोगिंदर पाल**

अनुवाद : **कृष्णा पाल**

मैं एक बार पाकिस्तान का वो पुराना घर देख आऊँ। आखिर मेरी यह ख्वाहिश पूरी होने का मौका आ गया और मैं वीजा हासिल करने में कामयाब हो गया; फिर उड़कर वहाँ जा पहुँचा और—

मैं धीरे से अपने पुराने घर का दरवाजा खटखटा रहा हूँ और वह जादुई दरवाजा एकदम खुला है।

''कौन हो बाबा?''

दरवाजा खोलने वाले छोकरे को देखकर मैं चौंक पड़ा और उसके चेहरे पर अपनी आँखें गड़ा ली हैं—वही है, ज्यों का त्यों! वहीं, जिसे आज से पचास-पचपन बरस पहले यहाँ छोड़कर मैं चुपचाप घर से बाहर हो लिया था।

''किससे मिलना है बाबा, घरवाले बाहर गए हुए हैं।''

'हाँ, वो बेचारा क्या जाने, घरवाले लौट आए हैं।'

''बोलो बाबा, कौन हो?''

नहीं, उस मासूम ने मुझे कभी देखा ही नहीं तो उसका क्या दोष? किसी बच्चे को क्या मालूम कि बुढ्ढा-खुड्डा होकर उसकी यह सूरत निकल आएगी?

मेरे आँसू बह निकले हैं और मैंने बरबस आगे बढ़कर उसे बाँहों में ले लिया है। जागीरदार ने ऐन उन्हीं शब्दों में दस रुपए की माँग की थी। मैंने मुसकराकर लड़की को इस बार भी दो का नोट थमा दिया और यों ही सोचने लगा कि भला आदमी इसी तरह माँग-ताँगकर वक्त काटने का आदी मालूम होता है।

'चलो, मैंने ही रुपए तो दिए हैं।' सिर झटककर मैं अपने काम में व्यस्त हो गया।

पिछले सात-आठ महीनों से ज्यादा दिन मैंने कारोबार के सिलसिले में घर से बाहर बिताए। इस दौरान वह लड़की कभी आई हो तो मुझे मालूम नहीं। आज सुबह के वक्त मैं दूधवाले का इंतजार कर रहा था। थोड़ी देर में घंटी की आवाज सुनकर मैं बरतन लेकर बाहर आ गया कि दूध डलवा लूँ।

दरवाजे पर दूधवाले की बजाय एक अधेड़ उम्र नेकसूरत पुरुष खड़ा था।

''मेरा नाम जागीरदार है।''

''आइए।''

''नहीं, छोटी सी बात करनी है, यहीं किए देता हूँ।''

''कहिए?''

''इस बार लड़की को चिट्ठी देकर नहीं भेजा। आज ही हाजिर हो गया हूँ। मुझे आप से यह निवेदन करना है कि···''

मैंने उसे रुपए-दो रुपए देने के लिए जेब में हाथ डाला।

''नहीं, ठहरिए, पहले मेरी विनती सुन लीजिए। मैं अपनी चिट्ठियों में जो रकम लिखूँ, कृपया आप वही भेजा करें।''

मैं उसकी तरफ हैरत और गुस्से से देखने लगा।

''मेरी बेटी अब पूरी जवान हो चुकी है, जनाब। आपको अब तो पूरे पैसे चुकाने होंगे।''

भलाई कभी व्यर्थ नहीं जाती

राजस्थानी लघुकथा

● **विजयदान देथा**

मधुमक्खी को प्यास लगी तो वह एक तालाब में पानी पीने के लिए आई। मुश्किल से आधी ही प्यास बुझ पाई थी कि एक जोर की हिलोर आई। हिलोर के आकस्मिक थपेड़े से वह सँभल नहीं सकी और उसकी पाँखें भीग गईं। वह डूबने को ही थी कि एक उड़ते कबूतर की नजर उस पर पड़ गई। असहाय मधुमक्खी को इस प्रकार डूबते देखा तो उसके मन में दया उमड़ आई। उसने एक पत्ता मधुमक्खी के पास डाल दिया। इतना सहारा मिलते ही मक्खी पत्ते पर लुढ़क पड़ी। पाँखें सूखते ही उसके लिए उड़ना संभव हो गया। उसने कबूतर का बहुत ही आभार माना।

उस दिन के बाद दोनों में गाढ़ी दोस्ती हो गई। इस बीच एक बार ऐसा संयोग बना कि दिनभर भटकने के पश्चात् एक शिकारी निराश होकर घर लौट रहा था। नीम पर कबूतर को बैठे देखा। सो उसी को तीर का निशाना बनाना चाहा। शिकारी ने कबूतर को मारने के लिए कान तक तीर खींचा ही था कि फूलों का रस छोड़कर वह मक्खी वहाँ से उड़ी। शिकारी के कान पर डंक मारा तो वह एकदम चौंका। तना हुआ तीर छूटा तो अवश्य, किंतु कबूतर के पास से होकर सनसनाता दूर जा गिरा। धनुष की टंकार सुनकर कबूतर उसी क्षण वहाँ से उड़ गया। मधुमक्खी के सामने विगलित स्वर में आभार प्रदर्शित करने लगा तो मक्खी ने भिनभिनाते हुए कहा, ''इसमें आभार की क्या बात, तुमने मेरे प्राण बचाए तो मैं तुम्हारी मौत कैसे देख सकती थी। तुम्हारी भलाई ने ही तुम्हारे प्राणों की रक्षा की है।''

जूठनखोर

ओड़िया लघुकथा

● प्रतिभा राय

बच्चा पुकारा, ''माँ-माँ, हमारा दूध सुलतान (कुत्ता) पी गया।''

''पीने दे बेटा। घर के कुत्ते दूध पीते हैं, वे घर की पहरेदारी करते हैं।'' माँ बोली। बच्चा अपनी कटोरी से दूध लेकर सुलतान की थाली में उड़ेल आया। माँ हँस दी।

बच्चा फिर बोला, ''माँ-माँ, सुलतान जूठा खा रहा है।''

''उसे बंद कर। भगवान् कहते हैं, घर के कुत्ते अपनी संतान की तरह होते हैं। कुत्ते को जूठन नहीं देना चाहिए। अगर वे जूठा खाएँगे तो उन्हें बीमारी होगी। घर के कुत्तों को भी सम्मान के साथ रखना चाहिए, क्योंकि वे लोग सब समझ सकते हैं। डाँटने से दु:खी हो जाते हैं, रोते हैं।''

बच्चा कुत्ते के पास से जूठन उठा लाया और अच्छी चीजें दे आया। माँ हँसने लगी।

बच्चा पुकारा, ''माँ-माँ, राजा (नौकर) दूध पी रहा है।''

माँ गुस्से से दौड़ी, ''बदमाश, चोर, पेटू, दूध पी रहा है? घर में कभी दूध पिया है? तेरे सात पुरखों ने कभी दूध पिया है? घर में बासी भात तक नहीं मिल रहा होगा, मगर यहाँ दूध नहीं पीने से जैसे मर जाएगा, दूर हट। पराए के घर में अगर काम नहीं करेगा तो पेट में दाना नहीं जाएगा, इधर माँ ने नाम दिया है राजा! इसकी माँ को भी शर्म नहीं है।'' बेटा राजा के मुँह से दूध का गिलास छुड़ा लाया।

माँ बोली, ''ठीक किया। इनके मुँह में अगर अच्छी चीजें लग गईं तो उन्हीं के लिए कष्टदायक बन जाएगा। ये कहाँ से दूध-दही पाएँगे, जो अपने मुँह में लगाएँगे!''

और एक दिन बेटा पुकारा, ''माँ-माँ, राजा बरतनों से पोंछकर जूठन खा रहा है।''

''खाने दे बेचारे को। जूठन न खाने से गरीबों का पेट नहीं भरता बेटे, कौन उन्हें अच्छी चीज परोसकर देगा?'' माँ बोली।

बेटा बोला, ''जूठा खाकर राजा की तबीयत खराब नहीं होगी माँ?''

''रास्ते के किनारे, होटलों से जूठन बटोरकर ये लोग रखे हैं, जिनके घर हैं, उनके यहाँ भी ये अच्छा कम और जूठन ज्यादा खाते हैं। उनको यमराज भी नहीं पूछता। जूठन न खाने से उनका पेट नहीं भरता। वे कमजोर हो जाएँगे।'' माँ बोली।

बच्चा राजा को अपनी थाली से जूठन दे आया और माँ से पूछा, ''राजा को चोर, पेटू, लोभी, राक्षस, उसके माँ-बाप को कंगाल, भिखारी, बेशर्म कहकर गाली देने से उसका मन दु:खी नहीं होगा माँ?''

''अरे बेटे, पेट की चिंता करते वक्त मन को कौन पूछता है। वे अगर मन को पकड़े रहेंगे तो उनका पेट नहीं भरेगा। इन लोगों का भला मन कैसा! राजा क्या हमारा सुलतान है? थोड़ा अगर डपटकर कह दो तो वह दूध में मुँह नहीं लगाएगा। जितना अभिमान करता है, उतना सुकुमार भी है और फिर इस कंगाल छोकरे का नाम राजा है। देख, गाली के साथ-साथ कैसे जूठन बटोर रहा है।''

माँ सुलतान को प्यार कर रही थी।

निर्विकार भाव से जूठन बटोरते राजा को देखकर बेटा भावुक होता जा रहा था।

नटखट बालिका

बांग्ला लघुकथा

● रवींद्रनाथ ठाकुर

मैंने केवल इतना कहा, ''सायंकाल जब पूर्ण चंद्रमा कदंब वृक्ष की डालियों के बीच में फँस जाता है तो क्या कोई उसे पकड़ नहीं सकता?'' किंतु दादा मुझ पर हँसने लगे और बोले, ''बच्ची, तुम्हारी जैसी मूर्ख लड़की मैंने आज तक नहीं देखी। चंद्रमा हमसे इतनी दूर है तो उसे कोई पकड़ कैसे सकता है?'' मैंने कहा, ''दादा, वास्तव में मूर्ख आप हैं! जब माँ खिड़की में से मुसकराती हुई बाहर झाँकती है और हमें खेलते हुए देखती है, तब हम उसे दूर कहेंगे?''

फिर भी दादा ने कहा, ''तुम नटखट लड़की हो! किंतु यह तो बताओ, चंद्रमा को पकड़ने के लिए इतना बड़ा जाल तुम्हें कहाँ मिलगा?''

मैंने कहा, ''आप निश्चय ही उसे अपने हाथों से पकड़ सकते हैं!''

किंतु दादा हँसकर बोले, ''तुमसे बढ़कर मूर्ख मैंने आज तक नहीं देखा। पास आने पर देख पाओगे कि वह कितना बड़ा है।''

मैंने कहा, ''दादा, यही व्यर्थ की बातें आपको स्कूल में सिखाई जाती हैं! जब माँ तुम्हारा चुंबन लेने के लिए अपना चेहरा नीचे को झुकाती है तो क्या वह बड़ा होता है?''

फिर भी दादा कहते रहे, ''तुम बहुत नटखट लड़की हो!''

खून का रंग

गुजराती लघुकथा

● विनोद भट्ट

खून सड़क पर फैल गया था। उसके आस-पास भीड़ लग गई थी। लाश को पोस्टमार्टम के लिए अस्पताल ले जाया जाना था। मारनेवाले कब के भाग चुके थे। दंगों में मरनेवाला कौन है, यह जानने की सब में उत्सुकता थी। लोग भीतर-ही-भीतर खुसरफुसर कर रहे थे। एक ने धीरे से दूसरे से फुसफुसाकर पूछा, ''मरनेवाला हिंदू था या मुसलमान?'' सामने फैले खून को देखते हुए दूसरा बोला, ''खून के रंग से क्या पता चलेगा?''

समय की बचत

मणिपुरी लघुकथा

● इबोहल सिंह कांग्जम

तोलची को पतली खपची का एक बड़ा गट्ठर लिये देर से आते देखकर उपस्थिति चैक कर रहे उसके अफसर ने पूछा, ''तोलची, खपची खरीदकर लाए हो? कितने की है?''

''सर, घर से लाया हूँ!''

''किसको देनी है?''

''किसी को भी नहीं देनी। सोचा, ऑफिस में काम करते-करते दो-एक टोकरियाँ बनाऊँगा। एक ही ऑफिस में नौकरी करते हुए इबेचाओबी, मोहिनी आदि ने तो बुनाई का काम किया, थोड़ी देर के लिए भी समय नहीं गँवाया। हम पुरुषों को कोई काम किए बगैर रहना, मुझे शर्म आई, इसीलिए सर···।'' अफसर ने सोचा, 'तब फिर मुझे कौन सा काम करना होगा?'

चरैवेति-चरैवेति

अंगिका लघुकथा

● शिव नारायण

एक यात्री ने राजदरबार में पहुँचकर राजा से निवेदन किया, ''महाराज, मैं दूर देश की यात्रा पर निकला हूँ। आज की रात आपकी शरण में बिताना चाहता हूँ। कल तड़के आगे की यात्रा पर निकल जाऊँगा। कृपया आज की रात मुझे शरण दे दें।'' राजा ने मंत्री को आदेश दिया, ''यात्री को राजकीय अतिथि मानकर तदनुकूल सत्कार किया जाए तथा इनके रहने की व्यवस्था राजकीय अतिथिशाला में की जाए।''

मंत्री राजा की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए यात्री के साथ अतिथिशाला पहुँचे। अतिथिशाला में सैकड़ों विशालकाय कमरे थे, परंतु संयोग ऐसा हुआ कि उस दिन एक भी कमरा खाली नहीं था। मंत्री चक्कर में पड़े। रात बीतती जा रही थी, किंतु यात्री के ठहरने की व्यवस्था नहीं हो पा रही थी। यात्री ने पूरी रात बाहर ही चक्कर काटते हुए बिता दी। सुबह होने पर राजा के निकट पहुँच, उससे विदा माँगते हुए कहा, ''राजन! मुझे विदा करें। दूर-देश की यात्रा पर निकलना है।''

राजा को मंत्री के द्वारा पिछली रात की कथा मालूम हो चुकी थी। क्षमा-याचना करते हुए, ''प्रियवर, पिछली रात आपको अपार कष्ट हुआ। आप और कुछ दिन ठहर जाएँ, आज आपके राजकीय प्रवास का पक्का इंतजाम हो जाएगा।'' यात्री ने कहा, ''क्षमा करें महाराज! मैं किसी भी स्थिति में नहीं ठहर सकता। ठहरना मैंने सीखा भी नहीं है। मुझे तो चरैवेति-चरैवेति की ही शिक्षा मिली है। मुझे आपके आतिथ्य से कोई शिकायत नहीं है। आपका आतिथ्य ग्रहण करना शायद मेरे भाग्य में ही नहीं था।''

कहकर यात्री चल पड़ा। कुछ दिनों बाद वह एक रेगिस्तान से गुजर रहा था। बीच रेगिस्तान में पहुँचने पर आँधी के आगमन का आभास मिला। अनुमान सही निकला। हवा तेजी से बहने लगी। वह तेजी से सुरक्षित स्थान की तलाश में इधर-उधर बढ़ने लगा। तभी उसे एक छोटा सा आश्रय स्थल दीख पड़ा। वह उस ओर बढ़ चला। एक अत्यंत छोटा सा लकड़ी का कमरानुमा घर था। उसने कुंडी खटखटाई। थोड़ी देर में एक बूढ़े ने दरवाजा खोला। यात्री ने अपनी मुसीबत बताते हुए रातभर के

लिए आश्रय की प्रार्थना की। बूढ़े ने उसे अंदर बुला लिया। बहुत ही छोटा सा कमरा था। सामने खाट पर एक बूढ़ी लगातार खाँस रही थी। बूढ़ी लेटी रही और वह दोनों किसी तरह बैठ गए। बाहर भीषण हवा के झोंके में सर्वत्र रेत ही रेत फैली थी। तभी पुन: कुंडी खटखटाई। बूढ़ा उठा, दरवाजा खोला। एक आगंतुक याचना भाव में हाथ जोड़े खड़ा था। बूढ़े ने उसे अंदर बुला लिया। बाहर आँधी चलने लगी थी। पुन: कुंडी खड़की। बूढ़े ने दरवाजा खोला। एक और आगंतुक प्राण-रक्षा की मुद्रा में खड़ा था। उसकी दयनीय स्थिति देख बूढ़े ने उसे भी अंदर बुला लिया।

बूढ़ी उठ बैठी। उस छोटे से कक्ष में पाँच व्यक्ति समाए किसी तरह रात बिता रहे थे। एक बार पुन: कुंडी खड़की। एक नया आगंतुक आश्रय की याचना के साथ खड़ा था। उसे भी अंदर बुला लिया गया। अब वे छह हो गए। कक्ष में किसी के बैठने की जगह शेष नहीं थी। सभी खड़े हो गए। बूढ़ी अस्वस्थ स्थिति में लगातार खाँस रही थी और बूढ़ा बुदबुदा रहा था, ''घबराओ नहीं, सुबह तक सब ठीक हो जाएगा। ईश्वर ने अपनी जिन संतानों को भेजा है, उनका अतिथि-सत्कार करना तो हमारा सबसे बड़ा धर्म है।''

अंतत: रेगिस्तान की वह आँधी किसी तरह समाप्त हुई। सुबह यात्री ने बूढ़े से विदा माँगी, ''बाबा, हमें विदा करो। तुमने हमारी जान की रक्षा की है। हम तुम्हारा यह आतिथ्य कभी नहीं भूलेंगे।'' बूढ़े ने विनती की, ''बेटा, रात तुम सबकी कोई सेवा नहीं कर पाया। आज दिनभर ठहर जाओ। मैं भोजन का इंतजाम करता हूँ।''

यात्री ने कहा, ''इसकी जरूरत नहीं बाबा। आपने हमारी प्राण-रक्षा की है। यही आपकी सबसे बड़ी अतिथि सेवा है। वैसे ठहरना मैंने सीखा भी नहीं है। बस चलते रहने की ही शिक्षा मिली है, चरैवेति-चरैवेति।''

भोजपुरी लघुकथा

जागरूक

● कृष्णानंद कृष्ण

रात का सन्नाटा कुत्तों के लड़ने की आवाज से टूट जाता है। कुछ लोग धनगाँव एक्सप्रेस की प्रतीक्षा में इधर-उधर बैठे हुए हैं। रात गहरा गई है। कुछ मजदूर ट्रैफिक गोलंबर पर सोए हुए हैं।

सिनेमा रोड से एक आदमी ट्रैफिक गोलंबर की तरफ आता है। लड़खड़ाती चाल से पियक्कड़ तथा मैले कपड़े और अस्त-व्यस्त केशों को देखकर पागल का सा अनुमान होता है।

गोलंबर के पास आकर वह रुकता है। सोए हुए लोगों को गौर से देखता है। अफसर गिनती शुरू करता है—एक, दो, तीन···दस···पंद्रह और अचानक रुक जाता है।

सोए हुए लोगों को एक बार फिर गिनता है। इधर-उधर देखता है। फिर चिल्लाने लगता है, ''किसके ऑर्डर से सोया है तुम लोग यहाँ? कौन है इस शहर का मालिक? हमको जवाब दे? ये लोग लावारिस के माफिक क्यों सोए हुए हैं?''

कोई कुछ नहीं बोलता है। वह आक्रोश की मुद्रा में मुट्ठियाँ हवा में उछालता है, ''मैं जानता हूँ···कोई कुछ नहीं बोलेगा। सोओ, मेरे बच्चो···मगर मैं पूछता हूँ···कौन है यहाँ का मालिक? देखता क्यों नहीं, मेरे मासूम बच्चे भूखे फुटपाथ पर सोए हुए हैं।'' और सामने होटल के नीचे लड़ते कुत्तों को देखकर ठहाका लगाता है। बुदबुदाता है, 'साले, तुम लोगों में भी भाईचारा नहीं रह गया क्या?'

''का हो काका, मस्ती बानूँ?'' एक रिक्शावाला पूछता है। वह चिल्लाता है, ''कमीनो, उड़ाओ मेरा मजाक, खूब उड़ाओ मेरा मजाक···लेकिन तुम लोग दो बजे रात को यहाँ किसके ऑर्डर से बैठे हो। बताओ, वो लोग गोलंबर पर क्यों सोया है? मैं जानता हूँ, तुममें से कोई कुछ नहीं बोलेगा। तुम्हारी जुबान बंद जो है।''

गोलंबर पर सोए लोगों की ओर देखकर वह फिर चिल्लाता है, ''आओ मेरे बच्चो, आओ, मैं तुम्हारे हक की लड़ाई लड़ूँगा।''

कोई कुछ नहीं बोलता है। वह एक बार फिर चारों तरफ चौकसी नजर से देखता है, फिर शुरू हो जाता है।

''ठीक है मेरे बच्चो, तुम आराम से सोओ। मैं तुम्हारे हक की लड़ाई लड़ूँगा, अकेले।'' और सामने से आती एक काली कार के सामने खड़ा हो जाता है। हवा में मुट्ठियाँ भाँजते हुए चिल्लाता है, ''तुम लोग देखता नहीं, मेरे बच्चे सोए हुए हैं। गाड़ी रोको, नहीं तो उनकी नींद टूट जाएगी।''

गाड़ी का दरवाजा एक झटके से खुलता है। दो आदमी बाहर आते हैं और उसे पकड़कर गोलंबर पर पटक जाते हैं।

वह गोलंबर पर सोए लोगों के बीच में पड़ा-पड़ा बड़बड़ाता है, 'सालो, तुम खूब नींद में सोओ, लेकिन मैं तुम्हारे हक की लड़ाई लड़ूँगा···अकेले···अकेले।'

राम झरोखे बैठ के

कतार में खड़े लोग

● गोपाल चतुर्वेदी

कतार में लगना इस देश की परंपरा है। कहीं आदमी डी.टी.सी. की क्यू में खड़ा है तो कभी सिनेमा टिकट, तो कभी मंदिर में प्रभु के दर्शनार्थ। दीगर है कि यह जीते जी नहीं ही होते हैं। हमारे एक ज्ञानी मित्र हमें बताते हैं कि कतार के अनुशासन में बँधना कायरों की पहचान है। अपने अनुभव से हम उनसे कुछ हद तक सहमत हैं। दरअसल, बचपन के स्कूल की शारीरिक और माता-पिता की कान खिंचाई की सजा का ऐसा खौफ अवचेतन में समाया है कि क्यू तोड़ने के आंतरिक अरमान के बावजूद हम उस में शामिल रहते हैं। पर इस का कदापि यह अर्थ नहीं है कि हम साहसी नहीं हैं। हम ने स्कूल के बाद की हर परीक्षा नकल के बल पास की है। यह साहसिक उपलब्धि हमें दबंगों के गिरोह के ठीक पीछे बैठ के हासिल हुई। निरीक्षक हमें कट्टा गैंग का साथ समझकर टोकने-रोकने की हिमाकत करने में हिचकते हैं।

यों हमने कतार तोड़ने के कइयों के बहादुरी के कारनामे देखे हैं। यदि सामूहिक बद्दुआ का कुछ प्रभाव होता तो ऐसों की टाँग और हाथ शर्तिया टूट जाते। इन्ही हाथों और टाँगों से इन्होंने कतार का बंटाधार किया है। पर आज की अपाहिज आस्था के युग में न भजन-कीर्तन और नैतिक आचरण से राम मिलते हैं, न वह दुष्कर्मी रावणों का विनाश करने में समर्थ हैं।

कतार-विनाशकों का तर्क है कि कतार में खड़े रहना कुछ की बुरी लत है। कतार से वाकई कतराते तो चार्टर्ड बस से दफ्तर चले जाते, क्या अनिवार्यता है कि डी.टी.सी. की क्यू में लगें? जिन्होंने कतार तोड़ी, वे निजी वाहन या चार्टर्ड बस से यात्रा करते हैं। चार्टर्ड छूट गई तो मजबूरी है। मन में डी.टी.सी. भी मिस न करने के भय से वह लपक लिये, क्यू को नजरअंदाज करके।

कतार में लगे-लगे कइयों के चश्मा लग गया तो कुछ के बाल पक गए, पर वह निजी दो या चार पहिये के वाहन तक प्रगति न कर पाए। उन से हमदर्दी किसी ने नहीं जताई है। शासक अपनी पीठ ठोकते हैं कि जिन को पैदल या साइकिल से सफर करना पड़ता, उनके लिए बस या मेट्रो की व्यवस्था कोई कम सुविधा है क्या? अब वह उम्मीद करें कि जनसेवक उन्हें कंधे पर लादकर दफ्तर छोड़ें या बाजार, तो यह तो होने से रहा। जरूरत के हिसाब से उनकी योजना और बसें चलाने की है, जिससे कतारें छोटी हों। लोगों का सुभीता बढ़े। बसों का तो पता नहीं और आई, कि नहीं आई पर कतारें और लंबी हो गई हैं। किसी ने बताया कि सब आबादी बढ़ने का संकट है। सड़कें भी बसों का भार वहन करते-करते चरमरा उठी हैं। तय नहीं है कि कब डामर का बाह्य मैकअप त्यागकर वह कंकड़-पत्थर के अपने असली अवतार में आ जाए।

हम आधिकारिक रूप से यह कहने में असमर्थ हैं कि कतार अंग्रेजों की देन है कि नहीं? हमें इतना बखूबी स्मरण है कि स्कूल की प्रेयर-मीटिंग में हम सब कतारों में खड़े होते थे। जाने गुरुकुल में यह व्यवस्था थी कि नहीं? पर यहाँ तो सब का मन कहीं भी हो, तन सीधा खड़ा रहता। हिला-डुला तो टीचर की सजा का खतरा मँडराता। अब हमें वक्त के साथ ज्ञान मिला है कि यह कमबख्त मन जो है, बड़ी यायावर किस्म की चीज है। आदमी जहाँ रहे, यह वहाँ शायद ही कभी रहता है। इसीलिए ऑपरेशन-थियेटर देखकर हमें कँपकँपी आ जाती है। बीमार अंदर बेहोश पड़ा है। सर्जन छुरी-चाकू लिये काट-छाँट को प्रस्तुत है। कौन कहे, अगर वह युवा है तो उस का मन नर्स या कन्या मित्र में न अटका हो? कहीं ध्यान भी उधर ही भटक गया तो मरीज का भविष्य क्या होगा? उम्रदार सर्जन का मन भटके तब भी गनीमत है। अब तक उसे इतना अभ्यास हो चुका है कि काँट-छाँट में गलती की आशंका कम है। यों चाकू-छुरी अंदर भूलना तो एक आम वारदात है। सब जानते हैं कि आदमी विस्मृति का ब्रह्मा है।

अचानक एक दिन हमने देखा कि लोग क्यों बसों से हटकर बैंकों के सामने आ गए हैं। हमें हैरानी हुई कि मामला क्या है? पान की दुकान के पप्पू ने चटखारे लेकर ज्ञान दिया कि यह सारी सरकार की हरकत है। उसने पाँच सौ और हजार के नोट रद्द कर दिए हैं। अब वे महज कागज के टुकड़े हैं। वह खुश था। अब काले धनवालों का क्या होगा? क्या वे इन नोटों को अँगीठी में जलाकर हाथ तापेंगे या चाय बनाएँगे? हमने उसे चेताया कि उसके पास भी तो ऐसे नोट होंगे। उसने उत्तर दिया कि ''अपनी आमदनी तो पान-सिगरेट की है। उसमें छोटे नोट ही मिलते हैं। बहुत जमा हुए तो दो ढाई लाख। वह तो खाते में जमा हो जाएँगे! हम तो सोच रहे हैं कि घसीटा सेठ का क्या होगा? वह तो हजार-पाँच सौ के नीचे कुछ बेचते ही नहीं है?''

पप्पू के स्वर में खुशी से कहीं ज्यादा सेठ घसीटा की पीड़ा की

प्रसन्नता थी। हमें संतोष हुआ कि पप्पू वसूली के बुलडॉग न होकर सामान्य इनसान हैं। जैसे चौराहे पर भले परिचित ही पिटे तो उसे बचाने शायद ही कोई आगे आए, पर एकाध हाथ लगाने की संभावना हो तो सब अपना योगदान देने को उत्सुक हों।

हम जैसे बेरोजगारों को इस पाँच सौ, हजार के नोटों के रद्द होने से क्या फर्क पड़ता है? अपने माँ-बाप भी कौन धन्ना सेठ हैं? दोनों सरकारी स्कूलों में पढ़ाते हैं। वेतन सीधे बैंक जाता है। घर पर कौन कारू का खजाना होगा कि चिंता की जाए। चार-साढ़े चार हजार होंगे तो वह तो बदल ही जाएँगे। अगर इस बदलवाने को हमसे कहें तो हम कहीं तो उपयोगी हों। क्यू में खड़े होने को हम सहर्ष तैयार हैं। अपने पास तो आधार ही क्यों, वोटर कार्ड भी है। बस जो नहीं है, वह अपना बैंक एकाउंट नहीं है।

घर जाकर जानकारी मिली कि पिताजी के एक शिष्य के बाप बैंक मैनेजर हैं। बस इस परिचय ने पुरुषार्थ दिखाया। नए नोट का दीदार हम ने घर में किया। पड़ोस के सोनू भी बेरोजगारी में हमारे साथी हैं। उन्हें किसी ने पाँच सौ के कमीशन पर लाइन में लगकर नोट बदलवाने का काम सुझाया। 'एक से भले दो' के उसूल पर उन्होंने हमें भी इस अस्थायी धंधे में मौका दिया। दो दिन में हमने अपनी लगन से तीन-तीन हजार की विशुद्ध कमाई की। उसके बाद किसी दोस्त की नजर लग गई। उँगली पर अमिट स्याही ने हमें कहीं का न छोड़ा। फिर भी क्यू-दर्शन से बाज न आए। कौन कहे, इससे किसी नए धंधे की जुगाड़ लगे!

हम और हमारे बेरोजगार मित्र, दोनों कतार को आशान्वित दृष्टि से ताकते। क्या पता, कब किस्मत चेते! कब किसी नेता, उद्योगपति, व्यापारी जैसे पैसेवाले का एजेंट हमें कुछ नया काम सुझा दे। एक अनजान व्यक्ति जब हमारी ओर आया तो यकायक उम्मीद जागी। ''कहिए'', हमने उसका इरादा भाँपना चाहा। उसने दोस्ताना अंदाज में कहा, ''हम कल से आपको क्यू पर नजर रखे देख रहे हैं। आप कतार में न होकर क्यों यों अपना वक्त बरबाद कर रहे हैं? क्या आपको किसी गुप्तचर एजेंसी ने भेजा है?''

हम उससे कैसे बताते कि हम बेकार हैं। हालिया कतार से कमाई की थी। फिर उसी इंतजार में हैं। हमने अनुभव से जाना है कि अभाव-ग्रस्त अकसर झूठ का सहारा लेता है। हम क्यों चूकते? उन्हें बरगलाने को हम ने बताया कि हम कतार का सर्वेक्षण कर रहे हैं, एक अखबार के लिये। जो क्यू में लगे हैं, वह उस के बारे में क्या सोचते हैं? काले धन का कोई निदान है यह पाँच सौ, हजार के नोटों का रद्द किया जाना? कतार की किल्लत की सजा क्या वह इस निर्णय के जनक को देंगे?

उसने न अखबार में रुचि दिखाई न हमारे सर्वेक्षण में। हमें शक हुआ। क्या इस ने हमारे बचकाने झूठ को पकड़ लिया है, जो यह प्रतिक्रिया रहित है? कुछ ऐसे शातिर होते हैं, जिनके अंतर में सत्य-असत्य को पकड़ने की कोई 'चिप' फिट होती है, जो उन्हें तत्काल आगाह कर देती है कि क्या सच है, क्या झूठ? कहीं यह ऐसा ही चिपदार इनसान तो नहीं है? फिर भी अब तो जुबान की कमान से शाब्दिक तीर छूट ही चुका है। नतीजा कुछ भी हो। हमें सुनने के बाद जैसे अपना निष्कर्ष निकालकर वह बोला, ''हमें आप दोनों से काम हैं।''

काम के नाम से हममें जैसे नव जीवन का संचार हुआ, ज्यों ठप स्मार्ट फोन की बैटरी फिर से चार्ज हो जाए। हमारे मित्र ने अधीरता से कहा, 'काम बताइए।' उसने सवाल किया, 'आपका बैंक अकाउंट है?' हम दोनों ने निराशा में सिर हिलाया। वह जाने लगा। हमने उसे रोककर कहा, 'आप काम तो बताइए, हम 'मैनेज' कर लेंगे।'

वह भी जानता है और हम भी। हिंदुस्तान में 'मैनेज' करने के बिना डिग्री के मैनेजमेंट विशेषज्ञ हर सड़क पर चप्पल चटकाते पाए जाते हैं। उसने हमारी प्रतिभा पहचानकर काम बताया, 'हमें आपके माध्यम से खातों में ढाई लाख जमा करवाकर उन्हें धीरे-धीरे निकलवाना है। इस में पचास का कमीशन है, खातेदार के लिए। सौदा सिर्फ भरोसे का है। यदि आप दोनों हमारे विश्वास पर खरे उतरे तो मानकर चलिए कि आपका जीवन बन जाएगा।'

हमने उससे एक दिन का समय माँगा। वहीं बैंक के सामने मिलने का वादा कर हम फूट लिए। दोनों दोस्तों ने दिनभर माथा-पच्ची की पर ऐसा एक भी मित्र ध्यान न आया, जिसके साथ पैसे का जोखिम उठाया जा सके। क्या गारंटी है कि कोई ढाई लाख अपने बैंक में जमा करवाकर डकार तक न ले। बार-बार याद दिलाएँ तो आयकर में हमारी शिकायत ही न कर दे! बेकारी में आटा गीला इसी को कहते हैं। हम दोनों मित्रों को झक्क मारकर एक साथ एक ही सहारा नजर आया, हमारी माँ का भी बैंक एकाउंट है, उसकी माँ का भी। क्यों न ढाई-ढाई लाख की राशि उन्हीं में खपाई जाए। इससे हम दोनों फोकटियों को पचास-पचास हजार का लाभ तो हो जाएगा। हमें आभास हुआ कि संकट के समय आदमी कितना अकेला है? माँ-बाप का सहारा कितना महत्त्वपूर्ण है? यह भी न हो तो मनुष्य कितना बेबस है।

अपने नैराश्य चिंतन से उबरकर हम दोनों बैंक की घटती हुई कतार के सामने जा पहुँचे। कुछ प्रतीक्षा के बाद वही अजनबी फिर आया। हमारे प्रस्ताव को सुनकर उसने हमारी उम्मीदों की भ्रूण-हत्या कर डाली, ''देखिए, एक करोड़ से कम की राशि पर हम सौदा नहीं करते हैं। अब तक हमें झुग्गी-झोंपड़ी और भिखारियों के ढेरों थोक के प्रस्ताव मिल चुके हैं। आप हमें अधिक विश्वसनीय लगे तो हम ने आप से कहा भी, पर कुल पाँच की टुच्ची राशि के लिए हम कोई खतरा उठाने को तैयार नहीं है। इस से बेहतर तो भिखमंगों पर भरोसा करना होगा। उन में डिग्रीयाफ्ता पढ़े-लिखों से कहीं ज्यादा नैतिकता है। ऊपरवाले का डर भी है।''

हमने उससे काफी मिन्नत-मनौव्वल की पर उसने हमारी एक न सुनी। हमें लगा कि यह अजनबी हमारे श्राप का शिकार होगा। इसका भिखारियों और झुग्गी-झोंपड़ीवालों पर विश्वास कितना अर्थहीन है। उन में से कितनों का बैंक एकाउंट होगा? संभव है कि यह बात इसने हमें बहकाने को कही हो। जरूर इसने कोई और इंतजाम किया है। मुफ्त की कमाई से बचना आसान नहीं है। हमने आत्मसम्मान को ताक पर रखकर

फिर उससे जाकर अपील की, 'हमें मौका तो दीजिए, हम आप को निराश नहीं करेंगे।' उसने हमें इनकार का थप्पड़ बेरहमी से मारा। हम ने उसके सामने काले धन और उस के रखनेवालों को कोसा। पुलिस से उसकी शिकायत करने की खोखली धमकी दी और फिर कतार-दर्शन में लग लिए।

अब हमने निर्णय किया है कि कतार पर लेख लिखना ही लिखना। कतार जो है, अभाव की जमीन पर संदेह के बीज से उगती है। बस का क्यों यों लगता है कि सीमित सीटों पर नंबर लग सके। बैंकों की कतार का रहस्य है कि पाँच सौ, हजार के पुराने नोट बरबाद न हों। लोगों के मन में संशय है कि कहीं उनकी नोट बदलने की बारी आए न आए? भुक्तभोगी बनकर हमने यह भी जाना है कि कतार की लंबाई बढ़ाने में, अपने बजाय, दूसरों के नोट बदलने का योगदान ज्यादा है। अधिकतर अपनी दिहाड़ी क्यू की शोभा बनकर अर्जित करते हैं, वरना स्याही लगने के बाद कतारें अचानक छोटी क्यों हो जातीं? ए.टी.एम. में कैश की कमी क्यू की प्रेरणा है। वहाँ की कतार में एक ही नेता पाए गए थे और खबर है कि वह भी उसे ऑपरेट करना नहीं जानते थे। यों हमारे जनसेवक हर कतार से ऊपर हैं। वह क्यों, उस में पाए जाएँ। सूट-बूट धारियों का या गांधी कैपवालों का यहाँ होने का सवाल ही नहीं उठता है। भाड़े के टट्टुओं की तादाद उन की महानता का मानक है। वह कब काम आएँगे?

क्यू के विषय में देश या राज्य के जनसेवकों की संवेदना अभी तक सुप्त पड़ी खर्राटे भर रही थी। हर्ष का विषय है कि बैंकों की कतारों से वह चौंककर जागी है। आम आदमी, गरीब, किसान आदि-आदि की क्यू-पीड़ा से उनकी आँखों का भर आना सिद्ध करता है कि उनमें इनसानियत अभी थोड़ी-बहुत शेष है। भले ही इस के दर्शन सियासी विरोधी को ठेंगा दिखाने के लिए होते हों या अपना नुकसान छिपाने के लिए।

वह नहीं चाहते हैं कि कतार और उनके कष्ट खत्म हों। उनकी एक ही कामना है, बैंक की कतारें अगले चुनाव तक यों ही लगी रहें। वह अपने ग्लिसरीन के आँसू रोते रहें और जनता से इसी विधि से जुड़ते रहें। नोट बंदी तभी कारगर है, जब इस से सत्ता वापसी संभव हो, वरना वह एक ही गाना गुनगुना रहे हैं, 'सबकुछ लुटाकर होश में आए तो क्या किया।'

कुछ आशावादियों को विश्वास है कि कतारों का अंत और कैश का सामान्य वितरण बस शुरू ही होनेवाला है। जनसेवकों के जनता से जुड़ने का वही असली परीक्षण होगा। यों कुछ शंकालु साहिर के शब्दों में यह कहने से भी नहीं चूकते हैं—

'कौन रोता है किसी और के खातिर ऐ दोस्त,
सबको अपनी ही किसी बात पै रोना आया!'

अर्थशास्त्रियों की मान्यता है कि इस अकेले कदम से काले धन की एकाध परत भले उखड़े, पर वह परत-दर-परत से सुसज्जित प्याज है। उसमें काटनेवाले को रुलाने की सामर्थ्य है। इस चक्रव्यूह में प्रवेश कर क्या इस के उन्मूलन को कटिबद्ध योद्धा सही-सलामत बाहर निकल पाएगा? कुछ को डर है कि यदि यह जिद्दी कामयाबी से न्यायिक प्रक्रिया, नौकरशाही, सकल राष्ट्रीय आय और सियासी विरोध के चक्रव्यूह को भेद गया तो स्वयं के आँसू रोकर भी वह प्याज को काटकर दम लेगा। कहना कठिन है कि किसका पलड़ा भारी है, नोटबंदी के विरोधियों का कि उसके समर्थकों का?

साअ
९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१

सुधी पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक अथवा बैंक-ड्राफ्ट साहित्य अमृत के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. १११०७३४३९३ अथवा CBIN ०२८०२९७ में साहित्य अमृत के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- पत्रिका न मिलने पर १५ से २० तारीख तक सूचित कर दें, ताकि वह अंक नए अंक के साथ भेजा जा सके।
- आपको अगर साहित्य अमृत का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया कार्यालय दिवस में २ से ५ बजे तक फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा sahityaamrit@gmail.com पर इ-मेल करें।

रूसी लघुकथा

क्रिसमस ट्री

● दोस्तोयव्स्की

बच्चा एक सीलन भरे कमरे में बंद था और ठंड से ठिठुर रहा था। वह बहुत भूखा था। वह बार-बार अपनी बीमार माँ के पास, जो कमरे में एक चटाई पर लेटी थी, जाता। एक दूसरे कोने में एक अस्सी साल की दुष्ट सी महिला लेटी हुई थी। दूसरे कमरे में जाकर उसने पानी पिया, पर खाने को एक टुकड़ा भी न मिल सका। अँधेरे में डर सा गया था। शाम बीत चुकी थी, पर कमरे में कोई रोशनी नहीं जलाई गई थी। उसने अँधेरे में ही अपनी माँ का चेहरा टटोला, उसे आश्चर्य हुआ कि वह हिल-डुल नहीं रही है और बर्फ की तरह ठंडी पड़ चुकी है। वह धीरे से उठा, अपने हाथ को मृत औरत के शरीर पर रखता हुआ फूँक-फूँककर अपनी उँगलियों को गरम करने लगा। उसने टटोलकर अपनी टोपी उठाई और कोठरी से बाहर निकल गया।

वह अपने अकेलेपन से भयभीत हो रहा था। यह सब क्या हो रहा है? कुछ लोग भीड़ में खड़े हैं। काँच की एक खिड़की के अंदर, छोटी-छोटी सुंदर गुड़ियाँ तथा खिलौने, मानो जिंदा हों! एक बूढ़ा आदमी वायलिन से खेल रहा था और उसके आस-पास वे सब खेल रहे थे। एक लय में उन सबके साथ होंठ हिल रहे थे। ऐसी गुड़ियाँ उसने पहले कभी नहीं देखी थीं। उसने प्रसन्नता का अनुभव किया। एकाएक ही उसे लगा कि पीछे से किसी ने उसे पकड़ लिया है। एक दुष्ट लड़के ने उसके सिर पर मारा। वह वहाँ से भागकर एक बगीचे में घुसा और लकड़ी के एक टुकड़े पर बैठ गया।

वह सकपकाया भयभीत-सा बैठा था, पर एकाएक ही उसने अपने आपको बहुत प्रसन्न महसूस किया। उसका दर्द मिट चुका था। वह गरमी अनुभव कर रहा था। उसकी सारी ठंड छूट गई थी। उसने सोचा, उसे क्यों नहीं सो लेना चाहिए? एकाएक उसे महसूस हुआ कि माँ लोरियाँ गा रही है।

''मेरी क्रिसमस ट्री के पास आओ, ओ मेरे नन्हे बच्चे!'' एक हल्की सी आवाज आई।

उसे फिर अनुभव हुआ कि वह उसकी माँ ही है। वह देख नहीं सका, पर कोई उस पर झुका और अंधकार में उसे कस लिया। उसने अपने हाथ उसके आगे फैला दिए और एकाएक—ओह! कितना तेज प्रकाश! क्या यही क्रिसमस ट्री है, पर वह फर का पेड़ नहीं था। उसने ऐसा पेड़ कभी नहीं देखा था। वह अब है कहाँ? हर चीज चमकती हुई थी। वे गुड़ियाँ नहीं थीं। वे नन्हे लड़के-लड़कियाँ थे। वे सब उड़े हुए उसके पास आए, उसका चुंबन लिया और अपने साथ ले गए। उसने देखा, माँ उसकी ओर देख रही है और खुश है।

और सुबह नौकर ने देखा कि छोटा बच्चा ठंड से जमकर मर चुका है।

जमादारिन ने कंधे उचकाए और वहाँ से चली गई। उसके लिए तो इसका कोई मतलब ही न था।

अमरीकी लघुकथा

क्रांतिकारी

● हेमिंग्वे

सन् १९१९। वह इटली में रेल से सफर कर रहा था। पार्टी हेडक्वार्टर से वह मोमजामे का एक चौकोर टुकड़ा लाया था, जिस पर पक्के रंग से लिखा हुआ था कि बुडापेस्ट में इस साथी ने 'गोरों' के बहुत अत्याचार सहे हैं। साथियों से अपील है कि वे हर तरह से इसकी मद्द करें। टिकट की जगह वह इसे ही इस्तेमाल कर रहा था। वह युवक बहुत शरमीला और चुप्पा था। टिकट बाबू उतरते तो अगले को बता जाते। उसके पास पैसा नहीं था। वे उसे चोरी-छिपे खाना भी खिला देते।

वह इटली देखकर बहुत प्रसन्न था। बड़ा सुंदर देश है। वह कहता, ''लोग बड़े भले हैं।'' वह कई शहर और बहुत से चित्रों को देख चुका था। गियोट्टो, मसाचियो और पियरो डैला फ्रांसेस्का की प्रतिलिपियाँ भी उसने खरीदी थीं, जिन्हें वह 'अवंती' के अंक में लपेटे घूम रहा था। मांतेगना उसे पसंद नहीं आया। वह बोलोना आया तो मैं उसे रोमना साथ ले गया। मुझे एक से मिलना था। वह मजे का सफर रहा। सितंबर के शुरू के खुशनुमा दिन थे। वह मगयारी था और बहुत झेंपू। होर्थी के लोग उससे अच्छी तरह पेश नहीं आए थे। कुछ जिक्र उसने किया था। हंगरी के बावजूद उसका विश्वास एक पूरी विश्व क्रांति में था।

''इटली में आंदोलन का क्या हाल?'' उसने पूछा।

''बहुत बुरा!'' मैंने कहा।

''पर यहाँ चलेगा खूब!'' वह बोला, ''यहाँ सबकुछ। यही अकेला देश है, जिसके बारे में किसी को संदेह नहीं है। सब यहीं से शुरू होगा।''

मैं कुछ नहीं बोला। बोलोना में वह विदा हुआ। वहाँ से रेल से वह मिलान के लिए गया, मिलान से आओस्ता और वहाँ से उसे पैदल-पैदल पर्दा पार करके स्विट्जरलैंड पहुँचना था। मिलान के श्री व श्रीमती मांतेगना का जिक्र मैंने किया, ''उन्हें छोड़िए,'' उसने झेंपते हुए कहा कि वे उसे जँचे नहीं। मिलान के साथियों और खाना मिलने की जगह के पते मैंने उसे दे दिए। उसने मुझे धन्यवाद दिया, पर उसके दिमाग में दर्रा पार करके आगे जाने की बात समाई हुई थी। मौसम ठीक रहते-रहते वह दर्रा पार कर लेना चाहता था। उसके बारे में मुझे अंतिम खबर यही मिली कि स्विसों ने नदी के पास पकड़कर उसे जेल में डाल दिया है।

मौलिकता

जर्मन लघुकथा

● बर्तोल्त ब्रेख्त

श्रीमान ने शिकायत की कि आजकल बहुत सारे ऐसे लोग मिलेंगे, जो केवल अपने बल पर महान् पुस्तकें लिखने का दावा करते हैं और उनके इस दावे को स्वीकार लिया जाता है। चीनी दार्शनिक चुआंग-त्जू ने अपने जीवन के शुरू में एक लाख शब्दों की एक पुस्तक लिखी, जिनमें से नब्बे हजार शब्द केवल दूसरों की उक्तियाँ थीं। अब हम ऐसी किताबें नहीं लिखते, क्योंकि हमारे पास पर्याप्त बुद्धिमत्ता नहीं है। नतीजे में स्वयं हमें अपने दिमाग में ही सारे विचार पैदा करने होते हैं और जो लोग ज्यादा विचार पैदा नहीं कर पाते, अपने आपको सुस्त और कुंद समझने लगते हैं। यही वजह है कि हमें कहीं भी लेने लायक या उद्धृत किए जाने लायक विचार नहीं मिलते। ये लोग कितना थोड़ा कर्म करते हैं। एक कलम, कुछ कागज, यही कुछ उनके पास है। वे अपनी कुटिया बिना किसी की मदद के बनाते हैं। और केवल उतनी तुच्छ सामग्री से, जो एक आदमी अकेले अपने हाथों में ले जा सकता है और स्वयं अपने बल पर जो आदमी निर्मित कर सकता है, उसके अलावा वे किन्हीं विशाल इमारतों को नहीं जान पाते!

गहराई

फ्रांसीसी लघुकथा

● फ्लाबेयर

''प्रेम कितना गहरा होता है?'' उस दिन हौवा ने यह सवाल आदम से पूछा था और आदम ने जवाब दिया था, ''सागर की तरह।'' मगर सागर ने इनकार करते हुए कहा था, ''नहीं, धरती की तरह, क्योंकि वह मुझसे गहरी है।''

धरती को यह कैसे स्वीकार होता, बोली, ''नहीं, प्रेम मुझसे कहीं ज्यादा गहरा होता है। आसमान से उसकी तुलना करनी चाहिए।''

किंतु आसमान को यह गलती मान्य नहीं थी। उसने कहा, ''नहीं, वह इनसान की तरह गहरा होता है।'' और सुनकर हौवा उदास हो गई। निश्श्वास छोड़कर उसने कहा, ''सवाल तो यही है कि इनसान की गहराई कौन मापे?''

बारिश

कोरियाई लघुकथा

● व्हांग सून वोन

लड़का नाले के किनारे खड़ा था। उसने एक लड़की को देखा, जो पानी में हाथ डालकर खेल रही थी। लड़की जब स्कूल से लौटती थी तो रोज पानी से खेलती थी। उसके खेल का यह सिलसिला बहुत दिनों से चला आ रहा था।

आज वह नाले के बीच में पड़े पत्थर पर उकड़ू बैठकर खेल रही थी। लड़का किनारे बैठकर उसके लौटने का इंतजार कर रहा था। तभी एक किसान उधर से गुजरा। लड़की ने किसान को नाला पार करने के लिए रास्ता दे दिया। लड़का भी उस पार चला गया।

लड़का दूसरे दिन कुछ देर से आया। लड़की उसी पत्थर पर बैठी

अपना मुँह धो रही थी। उसने गुलाबी रंग का स्वेटर पहन रखा था। उसकी बाँहें मुड़ी हुई थीं। वह अपने आप में ही खोई हुई थी। पता नहीं उसने लड़के को देखा था या नहीं। अचानक उसकी नजर लड़के पर पड़ी। उसने पानी से एक कंकड़ उठाकर लड़के की ओर फेंक दिया और स्वयं किनारे पर उगी नरकुल की झाड़ियों में छलाँग लगा दी। लड़के ने वह कंकड़ उठाकर अपनी जेब में रख लिया।

फिर दो-तीन दिन तक लड़की वहाँ नहीं आई। लड़का बहुत परेशान हुआ।

शनिवार के दिन जब लड़का नाले पर आया तो लड़की उसी जगह खेल रही थी। दोनों की आँखें मिलीं और झुक गईं।

फिर लड़के ने लड़की से पूछा, ''क्या तुम कभी उन पहाड़ों के पार गई हो?''

''चलो, हम वहाँ चलें।''

''लेकिन वे तो बहुत दूर हैं।''

''हो सकता है, लेकिन मैं तो रोज इससे भी ज्यादा दूर चलता हूँ।''

''पागल।''

फिर वे दोनों धान के खेतों में चलने लगे। कुछ देर धान के खेतों में खड़े बिजूकों से खेलते रहे। तभी बारिश शुरू हो गई। वे एक मचान के नीचे खड़े हो गए और मचान से टपकते पानी में भीगते रहे। जब पानी रुका तो वे घर लौट गए।

दूसरे दिन और फिर कई दिन लड़की नहीं आई। लड़का रोज नाले पर जाकर बोर होता रहा। एक दिन लड़की आई तो पता चला कि वह बीमार थी। वह पीली और दुबली हो गई थी।

लड़की ने उसे बताया कि चंद्रोत्सव के बाद वे अपना घर किराए पर देकर जा रहे हैं।

फिर वे अपने-अपने घर चले गए।

चंद्रोत्सव के दिन लड़के का पिता लड़की के गाँव गया था। जब वह लौटा तो उसने बताया कि उस लड़की का परिवार अपनी सारी संपत्ति बेचकर जा रहा है, क्योंकि वह लड़की मर गई है। वह कई दिनों से बीमार थी और उन लोगों के पास उसकी दवा के पैसे नहीं थे। वह लड़की बड़ी विचित्र थी। उसने मरते समय कहा कि उसे उन्हीं कपड़ों के साथ दफनाया जाए, जिन्हें वह पहने हुए है।

खिलौने

पोलिश लघुकथा

● **तदेऊष रुजेविज**

मेरे खिलौने? तीस वर्ष से ज्यादा बीत चुके हैं, जब मुझे पहला खिलौना मिला था। उन दिनों अपने खिलौने खुद ही ईजाद करने पड़ते थे और खुद ही बनाने पड़ते थे। जब मैं बच्चा था, तब मेरे पास शायद तीन या चार से ज्यादा कारखानों के बने खिलौने नहीं थे। एक तो था उलटी आँखोंवाला गुड्डा, दूसरा था जलतरंग, पर तीसरा क्या था, अब याद नहीं।

खिलौने किससे बनाए जाते थे? खिलौनों के लिए सबसे आसान कच्चा माल होता था : पत्थर, अखरोट, ओक के फल, पेड़ की टहनियाँ, बटन, बोतलों की डाटें, कुछ धागे या तार के टुकड़े। एकदम छुटपन में, यानी जब मैं तीर-कमान या गुलेल बनाना भी नहीं सीख पाया था, तब मेरे खेलने के लिए एक लंबी छड़ी या पेड़ की टहनी ही काफी हुआ करती थी। वह छड़ी मेरा घोड़ा बनती। फिर होता यह कि तुम दोनों तरफ पैर डाले, उस पर बैठे होते, जैसे कोई जादूगर अपने डंडे पर बैठा हो। वह छड़ी तुम्हारा घोड़ा होती। तुम उस पर दुलकियाँ ले रहे होते और तुम्हारी हिनहिनाहट सारे आँगन में गूँज रही होती।

अपनी मेज पर बैठा मैं खिड़की से बाहर देख रहा हूँ। जनवरी का धुँधलका फैला हुआ है। मटियाले आसमान से गिरती हुई बर्फ की परतों के बीच मुझे एक काली पत्तों रहित पेड़ की चोटी भर दिखाई दे रही है। उसकी टहनियों पर काली चिड़ियों के बैठने के धब्बे नजर आ रहे हैं। १९६९ की जनवरी की यह रात ऐसी ही चपल थी। आज जब ये कुछ पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, दस वर्ष बीत चुके हैं। अब उस चित्र को सुधारने की जरूरत है। हाँ, उन पहले, सबसे पहले, खिलौनों से खेले चालीस वर्ष से ज्यादा बीत गए हैं। दस साल पहले मैं घड़ियों और पेड़ों की टहनियों तक ही पहुँच पाया था। लकड़ी के मोटे सिरे पर डोरी बाँधकर गाड़ी बना लेता था। हमारी घुड़साल चौके का कोई कोना होती थी।

पेड़ की डाल में से तराशी हुई टहनी या छड़ी में विलक्षण गुण होते थे। कभी वह हमारा भाला बन जाती तो कभी तलवार या बरछी, शाम को हम अपने घोड़ों को चौक के कोने में रख देते, जिससे वे सो सकें और सुबह तरोताजा मिलें।

डाट का अपना अलग महत्त्व होता था। कच्चे माल के रूप में ही नहीं, एक खिलौने के रूप में भी वे बड़ी उपयोगी सिद्ध होती थीं। सबसे खूबसूरत डाटें तो वे होती थीं, जो काँच या चीनी की बनी होती थीं, हरी-हरी या सफेद डाटें, जो सोडा-लेमन की बोतलों में लगाई जाती थीं और गोल-गोल सुंदर डाटें, जो लाल या काले रबड़ के वॉशर लगाकर बीयर की बोतलों में लगाने के काम आती थीं। फिर कार्क की बनी सादा डाटें होती थीं। काँच की डाटों में एक तार फँसा होता था। ऐसी डाटें बोतलों से निकलते ही हमारी गाड़ियाँ या कारें बन जाती थीं।

ये डाटें सबसे पहले हमारे फौजी जवान की बनी थीं। सबसे पहले उनमें हमने तोपची होने के गुण पाए। लकड़ी के डंडों के तराशकर या गत्तों को काटकर बनाए गए जवान तो बहुत बाद में आए। किसी खास

तौर के तख्तों में से काटे गए तैयारशुदा जवान और भी बाद में आए। जस्ते और टीन के जवान तो उन दिनों हमारे लिए स्वप्न थे और हमारी सामर्थ्य से महँगे भी। हमारे पास जस्ते का एक ही जवान था, जो अचानक ही हमारे हाथ लग गया था। उसका रंग फीका पड़ चुका था और उसकी बंदूक की बरछी टूटकर गिर चुकी थी, पर फिर भी वह हमारा सबसे प्रिय जवान था ओर फौजियों की पलटन से हमेशा अलग खड़ा किया जाता था। जरा बड़ा होने पर मैं उस जस्ते के जवान से जी चाहे उतना खेल सकता था।

परदे की रानी

म्याँमारी लघुकथा

● महिम्यांग

एक घना जंगल था। उस जंगल में शेर रहता था और जंगल के सारे जानवर उसे अपना राजा मानते थे। वे सब शेर के दरबार में रोज नियम से सलामी बजाते थे। सलामी बजानेवालों में चींटी और चींटे भी थे।

एक दिन एक चींटी कुछ देर से दरबार में पहुँची। शेर इस छोटी सी चींटी को देर से आता देखकर बहुत नाराज हुआ और उसे अपमानित करके दरबार से निकाल दिया।

शेर ने मुसाहिबों से कानाफूसी शुरू की, ''जरा सी चींटी और इसकी यह मजाल!''

''इसे तो मसलकर फेंक देना चाहिए, तब इसे अपनी औकात का पता चल जाता!'' दूसरे चाटुकार ने कहा।

किसी ने फिर चींटी का साथ नहीं दिया। कोई उससे बोला तक नहीं, बल्कि नन्हीं सी चींटी को देखकर वे सब हँसते रहे।

चींटी बहुत दु:खी हुई और रोती हुई अपने स्वामी चींटे के पास पहुँची। सारा हाल सुनकर चींटा भी बहुत दु:खी हुआ। उसने सोचा, हमें अपने अपमान का बदला लेने की तरकीब सोचनी चाहिए।

चींटे ने थोड़ी देर सोचकर कहा, ''तू जा और शेर के कान में घुसकर उसे पीड़ा पहुँचा।''

चींटी ने वैसा ही किया, वह शेर के कान में घुस गई। शेर पीड़ा से छटपटाने लगा, उसकी दर्द भरी दहाड़ सुनकर जंगल के सभी जानवर उसके पास आ गए और उसका उपचार करने लगे। जैसे ही चींटी को निकालने की कोशिश की जाती, वैसे ही चींटी परदे की रानी की तरह शरमाकर अंदर सिमट जाती। जब चींटे से कहा गया कि वह चींटी को बाहर निकाले। चींटा अपने राजा की छटपटापट देखकर द्रवित हो गया और कान में घुसकर चींटी को निकाल लाया।

शेर ने चींटी और चींटे के आकार की लघुता को नकारकर उनकी शक्ति को स्वीकारा और उन्हें अधिकार दिया कि वे जंगल में कहीं भी स्वतंत्रतापूर्वक रह सकते हैं। उसी दिन से चींटियों को धरती पर कहीं भी रहने का अधिकार मिल गया।

एक पुराना कोट

नेपाली लघुकथा

● नंद हांगखिम

पति की मृत्योपरांत उसकी पत्नी उसका सारा सामान महंत लाल मेहतर को देने लगी तो बेटे मोहन ने टोका कि बाबा की लाठी, चप्पल, झोला, दाढ़ी बनाने का सामान और वस्त्र वगैराह जब उनके काम आ सकता है तो किसी को देने की क्या जरूरत है?

''न-न, मृत व्यक्ति की चीजें रखना अच्छा नहीं होता!'' माँ नहीं मानी। मोहन चुप हो गया। माँ ने फाउंटेनपेन और कंघी तक उठाकर महंत लाल को देने के लिए रख दिए। आखिर वह बाबूजी का ऊनी कोट भी उठाकर उन वस्तुओं में रखने लगी तो मोहन से न रहा गया।

''यह कोट तो मुझे रख लेने दो माँ''बाबा की निशानी?'' माँ को उसकी आवाज उसके बाप जैसी लगी। फिर भी वह इनकार करना ही चाहती थी कि कलेजा उछलकर गले में अटक गया! और वह इनकार न कर सकी।

यूनियन की सहायता से मोहन पितावाले स्थान पर ही काम पर लग गया। वह कोट पहनकर ड्यूटी पर जाता तो माँ अवसाद भरे हर्ष के साथ खिड़की में बैठी उसे जाते देखती रहती। जिस दिन मोहन कोट को घर में छोड़ जाता, माँ का अंग-अंग भारी और संत्रस्त हो जाता। उसे छटपटाहट सी होने लगती कि कोट उठाकर महंत लाल को दे दिया जाए, किंतु मोहन की कोट के प्रति रुचि उसे रोक देती। उसे लगता, अच्छा है कि कोट घर में ही रहे। इस बहाने वह पति की छाया को अपने इर्द-गिर्द मँडराता पाकर स्वयं को सुरक्षित महसूस करती रहती।

सर्दियों में मोहन रोज वही कोट पहनने लगा। माँ को डर हुआ कि

कोट कहीं फट न जाए। इसलिए एक दिन बोली, ''तू एक स्वेटर और बनवा ले। इतनी सर्दी में एक कोट से काम नहीं चलेगा। इसे ही पहनता रहा तो फट जाएगा।''

''यह जल्दी फटे, मैं भी यही सोच रहा हूँ।''

''क्यों?''

''कचहरी में सभी मुझे बाबा के नाम से बुलाते हैं। कहते हैं, इस कोट में मैं बिल्कुल हरे बाबू लगता हूँ। कई तो मेरा नाम तक नहीं जानते…और…और इसे पहनकर मुझे बिल्कुल वैसी ही खाँसी आती है, जैसी बाबा को आया करती थी।''

माँ ने सोचा, 'वह केवल बात करता है, वरना कोट के प्रति उसका लगाव अटूट है', परंतु एक दिन मोहन घर पहुँचा तो उसने कोट नहीं पहन रखा था!

''कोट कहाँ छोड़ आया?'' माँ ने पूछा।

''महंतलाल को दे दिया। मरे हुओं की चीजें पहननी अच्छी नहीं होतीं। आज एक बच्चा मुझे बाबा समझकर चीख पड़ा। डरकर भागा और मरते-मरते बचा। बाबूजी उसे छेड़ते रहते थे। अब मुझसे यह कोट नहीं पहना जाता।''

''यह तुझे क्या हो गया है?''

''कुछ नहीं, अब मैं मोहन हूँ…सिर्फ मोहन, मुझ पर किसी मृतक का बोझ नहीं रहा। हरे बाबू आज तक जीवित थे। मैं मर गया था। आज मैं जीवित हो गया हूँ। मैं मोहन, एक जीवित व्यक्ति!'' वह हाथ हिला-हिलाकर बोलता रहा! माँ काफी असंतुष्ट थी, लेकिन संतुष्ट भी कम नहीं थी।

———————— ✦✦✦ ————————

चीनी लघुकथा

चतुर, मूर्ख और गुलाम

● लूशुन

एक गुलाम था। एक दिन उसे एक चतुर आदमी मिला तो वह उससे बोला, ''साहब, मैं कुत्तों जैसी जिंदगी बसर कर रहा हूँ। मुझे दिन में एक बार भी भरपेट खाना नहीं मिलता।''

''यह तो वास्तव में बहुत दुःखद है।'' चतुर आदमी ने हमदर्दी दिखाते हुए कहा, ''लेकिन मुझे विश्वास है कि स्थितियाँ जल्दी ही ठीक हो जाएँगी। सब ठीक हो जाएगा।''

कुछ दिन बाद उसने फिर एक व्यक्ति से अपना दुखड़ा रोया, ''साहब, मेरा मालिक मुझे जानवर मानता है।''

''तुम भी उसे जानवर समझो।'' कहकर वह इतनी जोर से चीखा कि गुलाम हतप्रभ रह गया। वह व्यक्ति मूर्ख था।

''साहब, जिस झोंपड़ी में मैं रहता हूँ, उसमें एक भी खिड़की नहीं है और न ही कोई रोशनदान।''

''ठीक है, मुझे अपनी झोंपड़ी दिखाओ।'' मूर्ख उसको झोंपड़ी तक ले गया और उसकी दीवार गिरानी शुरू कर दी।

''साहब, आप क्या कर रहे हैं?'' गुलाम ने घबराकर पूछा।

''मैं तुम्हारे लिए खिड़की बना रहा हूँ।''

''नहीं, यह मत बनाओ। मालिक मुझे कच्चा खा जाएगा।''

''खा जाने दो!'' कहकर मूर्ख दीवार गिराता रहा।

गुलाम चिल्लाने लगा। तभी गुलामों की पूरी टुकड़ी आई और उस मूर्ख को मार-मारकर वहाँ से भगा दिया। सा अ

(प्रस्तुति : बलराम)

लघुकथा एक जीवंत विधा है, क्योंकि वह साक्षात जीवन से जुड़ी है, जीवन से रस लेती है। लघुकथा और जीवन मुझे कई बार पर्याय लगते हैं, इसलिए मैं कहता हूँ कि जिस लघुकथा में मानव-जीवन न हो, उसकी धड़कन न हो, उसकी पीड़ा और आनंद न हो, उसका पतन और उत्थान न हो, उसका संकल्प और विकल्प न हो वह लघुकथा नहीं है। लघुकथा को उसकी शब्द-सीमा से पहचानने की चेष्टा मुझे अनुचित लगती है। क्योंकि शब्द-सीमा, शब्द-संख्या या शब्दों का समूह रचना को रचना नहीं बनाते, बल्कि उन शब्दों में छिपी संवेदना की संजीवनी-शक्ति ही उनमें प्राणों की प्रतिष्ठा करती है। लघुकथा वह ही रचना बन सकती है जो जीवन की प्राण-शक्ति को अपने अणु-अणु में समाए हो। लघुकथा एक बहुत ही छोटी विधा है, अतः इसमें संवेदनाओं की सघनता का होना अत्यावश्यक है, क्योंकि लघु तभी प्रभावशाली होगा जब वह घनीभूत होगा, ठोस होगा, सघन होगा। तुलसीदास ने लिखा है कि सूर्य देखने में छोटा है, पर वह ब्रह्मांड का अंधकार दूर करता है। इसी प्रकार छोटा सा अंकुश हाथी को वश में कर लेता है। मैं लघुकथा को इसी रूप में देखता हूँ और चाहता हूँ कि आधुनिक लघुकथा इस शक्ति को ग्रहण करे और लघु होकर भी गहरा और स्थायी प्रभाव अंकित करे।

—कमल किशोर गोयनका : दिनांक 29.3.1991, बलराम अग्रवाल को लिखे एक पत्र में

लॉफिंग क्लब

लघुकथा

● सुकेश साहनी

हरिहर बाबू पार्क के सामने ठिठक गए। वहाँ जमा लोगों के सम्मिलित ठहाकों से वातावरण गूँज रहा था। उनके बहुत से हमउम्र साथी उस क्लब के मेंबर हो गए थे और अकसर उनसे भी इसमें शामिल होने के लिए कहते रहते थे। पिछले कई दिनों से वे ठीक से सो नहीं पा रहे थे, इसी वजह से उनकी आँखें सूजी हुई थीं और सिर चकरा रहा था।

थोड़ी देर तक वे उन हँसते हुए लोगों की ओर देखते हुए न जाने क्या सोचते रहे। फिर थके-थके कदमों से पार्क के भीतर जाकर उन व्यायाम करते लोगों की पिछली कतार में शामिल हो गए।

''…फेफड़ों में धीरे-धीरे हवा भरो… छोड़ो, भरो!'' लॉफिंग क्लब का बूढ़ा ग्रुप लीडर कह रहा था, ''अब जोर का ठहाका लगाओ।''

''हाऽऽ हाऽऽ हाऽऽ हाऽऽ…'' हरिहर बाबू ने भी ठहाका लगाया।

''जब दुकान छोटे को देना चाहते हैं , तो उसी के पास रहें जाकर। हम लोगों की छाती पर क्यों चढ़े बैठे हैं।''

''हाऽऽ…हाऽऽ…हाऽऽऽ…'' इन जहर बुझे तीरों से बचना चाहते हैं हरिहर बाबू।

''दिन-रात की खटर-पटर, ताँक-झाँक! जीना हराम कर रखा है। हमारी तो कोई प्राइवेसी ही नहीं रही।''

''हाऽऽऽ हाऽऽऽ हाऽऽऽ…'' ठहाकों के पीछे छिप जाना चाहते हैं ढाल हरिहर बाबू।

''हर चीज पर तो कुंडली मारे बैठे हैं,बुड्ढन!''

''हाऽऽऽऽऽ…हाऽऽऽऽऽ…'' ठहाकों की आवाज बहुत दूर से आती मालूम देती है उन्हें।

''बहुत लंबी उम्र पाई है इन्होंने…हमें मारकर ही मरेंगे।''

''होऽऽ होऽऽ होऽऽ होऽऽ…'' तीरों की बौछार से ठहाकों की ढाल मिट्टी की तरह भुरभुरा जाती है।

ग्रुप लीडर के इशारे पर सब आराम की मुद्रा में आ गए थे। ठहाकों की वजह से सभी की आँखें भीगी हुई थीं। ऐसे में हरिहर बाबू को अपने आँसुओं से तर चेहरे को किसी से छिपाने की जरूरत महसूस नहीं हुई।

लड़ाई

''क्या हुआ, बेटी?'' बूढ़ी आँखों में हैरानी थी।

''कैसी अजीब आवाजें निकाल रहे हैं!'' बहू ने तिनमिनाकर कहा, ''गुड़िया डरकर रोने लगी है, कितनी मुश्किल से सुलाया था उसको!''

''अच्छा!'' उन्हें हैरानी हुई, ''नींद में पता ही नहीं चला, ऐसा पहले तो कभी नहीं हुआ!''

पैर में बँधे ट्रेक्शन की वजह से वह खुद को बहुत असहाय पा रहे थे। उन्हें गाँव की खुली हवा में साँस लेने की आदत थी। महानगरों के डिब्बेनुमा मकानों में उनका दम घुटता था। पिछले दिनों गाँव में हैंडपंप पर नहाते हुए उनका पैर फिसल गया था और कूल्हे की हड्डी टूट गई थी। खबर मिलने पर बेटा उन्हें इलाज के लिए शहर ले आया। डॉक्टरों की राय थी कि ऑपरेशन कर दिया जाए, ताकि वे जल्दी ही चलने-फिरने लगें। दूसरे विकल्प के रूप में ट्रेक्शन था, जिसमें छह महीने तक एक ही पोजीशन में लेटे रहने के बावजूद इस उम्र में हड्डी जुड़ने की संभावना काफी कम थी, बेड सोल और पेट संबंधी विकारों का खतरा अलग से था। सभी बातों पर गौर करने के बाद बेटे ने ऑपरेशन कराने का फैसला किया तो बहू ने रौद्र रूप धारण कर लिया था, ''अपनी सारी बचत इनके इलाज पर लगा दोगे, तो गुड़िया की शादी पर किससे भीख माँगोगे? पड़े-पड़े जुड़ जाएगी इनकी हड्डी, फिर जल्दी ठीक होकर इन्होंने कौन सा खेतों में हल चलाना है।''

अंतत: उनके पैर में ट्रेक्शन बाँध दिया गया था।

सोचते-सोचते फिर उनकी आँख लग गई और वे जोर-जोर से खर्राटे लेने लगे।

''हे भगवान्!'' बिस्तर पर करवटें बदलते हुए बहू भुनभुनाई।

''उधर ध्यान मत दो, सोने की कोशिश करो।'' पति ने सलाह दी।

''दिनभर काम में खटते रहो,'' वह बड़बड़ाई, ''जब दो घड़ी आराम का समय होता है तो ये शुरू हो जाते हैं। कुछ करो, नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगी।''

झल्लाकर वह उठा, दनदनाता हुआ वह पिता के पास पहुँचा और उन्हें झकझोरकर उठा दिया।

बेटे की इस अप्रत्याशित हरकत से वे भौंचक्के रह गए। टेक्शन लगे पैर में कूल्हे के पास असहनीय पीड़ा हुई और उनके मुख से चीख निकल गई।

''खर्राटे लेना बंद कीजिए,'' पीड़ा से विकृत उनके चेहरे की परवाह किए बिना वह चिल्लाया, ''आपकी वजह से घर में सबकी नींद हराम हो गई है।''

बेटे से ऐसे व्यवहार की वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। थोड़ी देर तक उनकी समझ में कुछ नहीं आया, पर सच्चाई का आभास होते ही उनकी आँखें ही नहीं, पूरा शरीर डब-डब करने लगा। आँखों की कोरों से कुछ आँसू निकले और दाढ़ी में गुम हो गए।

उस रात फिर उनके खर्राटे किसी को सुनाई नहीं दिए। सुबह उनका शरीर बिस्तर पर निश्चल पड़ा था। फटी-फटी चुनौती देती सी आँखें छत पर टिकी हुई थीं।

पिता के दाह-संस्कार के बाद मृत्यु पंजीयन रजिस्टर में शहरी बेटे ने मृत्यु का कारण लिखाया—ओल्ड ऐज। अंतिम समय में पिता की उस लड़ाई के बारे में वह कभी जान नहीं पाया। साअ

१८५, उत्सव, महानगर पार्ट-२
बरेली-२४३१२२ (उ.प्र.)

बिल

● खुदेजा खान

बड़े बाबू ने पहले चाय पी, फिर आराम से टहलते हए तीन सौ बीस नंबर बाबा तंबाखूवाला पान मुँह में ठूँसा। पान ठेलेवाले को कहा, ''खाते में लिख लेना भाया, हिसाब इकट्ठा देख लेंगे।''

दो पान बँधवाकर जेब में डाले। एक सिगरेट का पैकेट लिया। उससे निकालकर एक सिगरेट सुलगाई। पैकेट को जेब में खिसकाया और कश लगाते, टहलते हुए लंच-टाइम का पूरा सदुपयोग करते ऑफिस पहुँचे। अपने सहयोगी से बोले, ''यार पांडे, तुमने बिल तैयार कर लिया एस.सी.एस.टी. और कोटेवालों की स्टेशनरी का?''

वरिष्ठ लेखिका। पत्र-पत्रिकाओं में लघुकथाएँ निरंतर प्रकाशित। 'सपना सा लगे', 'संगत' (गजल-संग्रह) प्रकाशित।

पांडे ने बिल दिखाया पेन ५ रुपए १०० नग, स्केल २ रुपए १०० नग, पेंसिल ५ रुपए १०० नग कॉपी २० रुपए २०० नग···वगैरह-वगैरह।

बिल देखते ही बड़े बाबू भड़क गए, ''पहले तुमने कभी बिलिंग नहीं की क्या? कुल जमा तीस हजार हो रहा है···क्या होगा इतने से?''

चलो, मैं बोलता हूँ, लिखते जाओ। पेन ५० रुपए १०० नग, स्केल १० रुपए १०० नग, पेंसिल १० रुपए १०० नग, कॉपी ५० रुपए २०० नग···। महँगाई के हिसाब से रेट लिखोगे कि नहीं···? थोक के भाव का रेट लिखा तो खाओगे क्या और कमाओगे क्या···! कुछ समझे कि नहीं···? ये लो, फिलहाल पान खाओ।''

पांडे ने मुंडी हिलाकर सहमति जता दी।

कुत्ते

बड़े घर में वृद्ध दंपती और दो पालतू कुत्ते ही बच गए हैं। बेटे-बेटियों की शादी हो गई। सब शहर से बाहर ही रहते हैं। तीन बेटों में से किसी ने भी बाप के कारोबार में हाथ बँटाकर साथ में रहना स्वीकार नहीं किया। खैर, सब बाहर गए तो गए; लेकिन जब सब आपस में इकट्ठा होते हैं तो आपस में कुत्ते-बिल्लियों की तरह लड़ते हैं। पैसों और मकान-दुकान में अपने हिस्से के लिए।

सालों बाद भी बेटियाँ आती हैं तो कुछ-न-कुछ लेकर ही जाती हैं। बेटे भी अपने खर्चों का रोना रोकर रकम ऐंठने के चक्कर में रहते हैं। बस, घर के ये दो कुत्ते ही हैं, जो कोई डिमांड नहीं करते। दो बिस्कुट दे दो तो दुम हिलाकर कृतज्ञता प्रकट करते हैं। खुश हो प्यार जताते हैं, वफादारी निभाते हैं।

पर आज वो दोनों अलग ही मूड में एक-दूसरे से लड़ रहे हैं। भोंक-भभोंड़ रहे हैं। शोर सुनकर मालिक अपने पालतुओं के पास आए और बोले, ''क्या हुआ बच्चा लोग, कुत्ते होकर इनसान की तरह क्यों लड़ रहे हो? इस तरह से तो हमारे यहाँ औलादें झगड़ती हैं।''

गांधी आश्रम

१९२० में स्थापित यह वही आश्रम है, जिसे महात्मा गांधी ने स्थापित किया था। कभी सैकड़ों श्रमिक यहाँ काम करते थे। आज दो-चार कर्मचारी ही रह गए हैं। इमारत ऐसी उजाड़-बेजान हो गई है कि देखकर भूतों का डेरा लगती है। इमारत बच इसलिए गई कि यह जमीन गिरवी रखी हुई है।

खादी की चादरें, थान, कमीजें, कुरते, और पाजामे पुरानी जर्जर अलमारियों में रखे हैं। इन नए परिधानों पर भी यहाँ उदासी छाई है। आज के संदर्भ में गांधी और खादी पूरक नहीं पुराने हो गए हैं।

कमीज, जो काफी समय से उपेक्षित पड़ी थी, एकाएक बोल उठी- ''ये फैशन शो वाले क्यों नहीं आ रहे? कम-से-कम वही आ जाएँ हमें रैंप पर कैट वॉक कराने के लिए···।''

यह सुनकर खादी के थान से चुप न रहा गया। बोला, ''अब तो सरकारी खरीद भी बंद है। न अस्पतालों में, न रेलवे में और न सरकारी कार्यालयों में हमारी उपयोगिता रह गई है। कोई पूछ-परख नहीं है।''

''और नहीं तो क्या, चादर ने रोना रोया।'' जब मशीनों से बना कपड़ा आधी कीमत में मिल रहा है तो हथकरघे को कौन पूछता है।''

''क्यों, नेता लोग तो अब भी खादी पहन रहे हैं।'' कुरते-पाजामे ने एक साथ कहा।

''हाँ, तभी तो यह हाल है।'' टोपी ने जुमला कसा।

इसी के साथ वहाँ फिर गहरा सन्नाटा छा गया।

चित्रकोट रोड, धरमपुरा नं. १,
निकट अशोका पार्क
जगदलपुर (छ.ग.)

शह-मात

● अनिता मंडा

मधु ने इकलौते बेटे की शादी को लेकर बहुत सपने सँजोए थे। धूमधाम से शादी करके वह समाज में सबको अपनी समृद्धि से परिचित कराना चाहती थी। अपनी पसंद की तथा अपने रुतबे की बहू लाने के उसके अरमानों पर तब तुषारपात हो गया, जब राहुल एक दिन चुपचाप कोर्ट-मैरिज करके निशा को अपनी पत्नी बनाकर ले आया। कई दिन तक यह बात मधु के गले नहीं उतरी कि एक साधारण से क्लर्क की बेटी उसकी बहू है। न कोई दहेज, न अकरा-महँगा तोहफा। उसके भीतर की कड़वाहट आए दिन रिश्तों में जहर घोल रही थी। जब से वह घर में आई मधु का पारा सातवें आसमान पर रहता था। तिल को ताड़ बनाने का कोई अवसर वह नहीं छोड़ती थी।

''बहूरानी, जरा काम-काज में भी दिल लगा लिया करो।

''सारे दिन फोन, टी.वी. से फुरसत मिले तो घर के काम सूझें न!'' वह बोलती जाती थी और निशा नजरें झुकाए सुनती रहती थी।

''इस महारानी को तो कुछ कहने से बेहतर है, दीवार पर सिर दे मारो। कितनी बार समझाया है, कपड़े धोने से पहले जेबें देख लिया करो। आज फिर देखो, पैंट की जेब में हिसाब की परची धुल गई।''

मधु पैंट की जेब से कागज के टुकड़े निकालकर दिखा रही थी, जो कि लुगदी बन चुके थे।

''तुम्हीं जवाब देना आज, मैं कब तक तुम्हारी तरफदारी करती रहूँ...बुला रहे हैं राहुल और तेरे ससुरजी। जा, तू ही सामना कर आज।''

मधु की बात सुनकर निशा अपनी दराज से एक कागज निकालकर लाई और राहुल के हाथ में दे दिया।

''मम्मी, आप तो कह रही थीं परची धुल गई, पर ये तो सही है! यही तो थी।'' राहुल ने कहा।

''वो माँजी, मैंने तो रात को ही कपड़े चेक करके छोड़ दिए थे। यह तो अच्छा हुआ, जो मेरी नजर आप पर पड़ गई। जब आप जेब में परची रख रही थीं, तो मैंने वो परची निकालकर एक रद्दी कागज उसमें रख दिया।''

कहते हुए निशा का मन भर आया। बोली, ''माँजी, आप मुझे पसंद नहीं करतीं, पर आज मुझे नीचा दिखाने के चक्कर में ये परची धुल जाती तो राहुल का कितना नुकसान हो जाता, इतनी बड़ी पेमेंट रुक जाती।''

आई-१३७, द्वितीय तल,
कीर्ति नगर, नई दिल्ली-११००१५

ऊहापोह

● अंतरा करवड़े

''लेकिन मेरा सवाल यह है कि इस महीने की सेल अचानक इतनी नीचे क्यों दिखाई दे रही है?'' वे चाहकर भी अपनी आवाज को उम्मीद के स्तर तक ऊँचा नहीं उठा पाए थे।

''सर, वो मेहता वाली घटना के कारण।''

''बस, बहुत हो गया। एक आदमी आकर हमें भ्रष्टाचारी कह जाता है और हम मान लेते हैं? इतने सालों से जिस मालिक का दिया खा रहे हैं, उनके प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं रह गई है हमारी? और वैसे भी, हमारे माल में जानवरों की हड्डियों की मिलावट की बात अभी भी सिद्ध तो नहीं हुई है?''

''सर, लेकिन बिना आग के धुआँ तो नहीं निकलता।'' बात तीखी थी। लग गई।

बैठक बेनतीजा खत्म कर दी गई। वे अपने चैंबर में वापस लौट आए थे। सुबह जब से मालिक का आदेश आया था कि वे मेहता को 'सैट' कर लें और उनके लिए एक मोटी रकम का इंतजाम हो जाएगा, उनके मन का भूचाल रुकने का नाम नहीं ले रहा था। जीवन भर मन के कोने में एक सपना पाला था उन्होंने अपनी तिजोरी का। उस भरी-पूरी तिजोरी का, जिसकी बदौलत दुनिया मुट्ठी में की जा सकती है।

लेकिन आज वे अपने सपने से ही आँखें चुराना चाह रहे थे। सपने की राह पर चलते हुए यों कीचड़ सनी गलियों से भी जाना पड़ेगा, यह कल्पना से बाहर की बात थी।

हाथों की उँगलियाँ कसमसा रही थीं, एक मुट्ठी बनने के लिए, वो मुट्ठी, जिससे दुनिया वश में की जा सके। अचानक उन्हें एक और शक्तिशाली हाथ याद आने लगा। बचपन में की गई मस्तिष्क की प्रोग्रामिंग काम कर रही थी। किसी भी गलती की आशंका पर पिताजी का हाथ उनकी छड़ी पर पहले कुछ समय यों ही कसमसाता था।

एक ओर तिजोरी थी और दूसरी ओर पिताजी की पुश्तैनी छड़ी।

आज अपनी बढ़ती उम्र में उन्होंने पिता को सहारे की लाठी बना लिया था।

अनुध्वनि, ११७, श्रीनगर एक्स्टेंशन
इंदौर (म.प्र)
दूरभाष : ०७३१४०६३०१८

रौनक

● अर्चना तिवारी

''शॉल, नी कैप, बाम, हेल्थ ड्रिंक्स, बिस्किट्स—ये सब चीजें तो दिल्ली में भी मिलती हैं। फिर यहाँ से लादकर ले जाने की क्या जरूरत है?'' स्नेहा को चीजें बैग में डालते देख शिखर ने पूछा।

''मिलती हैं, लेकिन ऑफिस में काम के बाद मैं ये सब चीजें खरीदने लगूँगी तो आधा दिन बरबाद हो जाएगा। बहुत दिनों बाद माँ से मिल रही हूँ। इसलिए मैं चाहती हूँ कि कम-से-कम आधा दिन तो उनके साथ गुजारूँ, न कि शॉपिंग करते हुए।''

''तो ऑनलाइन ही भेज देतीं।'' शिखर ने तर्क दिया।

''हाँ, भेज सकती थी श्रीमान शिखरजी, और पिछली बार भेजी भी थीं। लेकिन सारे ड्रिंक्स पड़े-पड़े एक्सपायर हो गए थे। माँ ने उनके पैक भी नहीं खोले थे।''

''हो सकता है, माँ को उसका फ्लेवर न पसंद आया हो।''

''अच्छा, लेकिन पिछली बार जो मैंने बाजार से लाकर दिया था, सेम फ्लेवर। उसे तो माँ ने तुरंत खोलकर पिया था।''

''ऐसा क्यों?'' शिखर ने पूछा।

''ऐसा इसलिए कि ये सारी चीजें देखने में भले ही मामूली हों, लेकिन इनके साथ जुड़े प्यार के एहसास ऑनलाइन नहीं मिलते।'' स्नेहा ने शिखर की नाक पकड़कर हिलाते हुए जवाब दिया।

''ओके-ओके, योर हाइनेस।'' कहते हुए शिखर ने सिर से कैप उतारकर झुकने का अभिनय किया। फिर दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

स्नेहा ने माँ को फोन पर बताया कि वह दो दिन के लिए दिल्ली आ रही है। खबर सुनते ही घुटने पकड़कर चलने वाली आशा के शरीर में बिजली की सी स्फूर्ति आ गई।

''सुन रज्जो, स्नेहा का कमरा ठीक कर देना। वह दो दिन के लिए आ रही है।'' आशा ने काम करनेवाली को निर्देश दिया।

''जी मेम साब।''

''और सुन, साब आएँ तो उन्हें चाय पिला देना। मैं सुपरमार्केट जा रही हूँ।'' कहकर आशा सुपर मार्केट चली गई।

काउंटर पर बिल चुका, वे जैसे ही मुड़ी तो सामने उनकी सहकर्मी शीला मिल गई।

''अरे, आप यहाँ?'' शीला ने आश्चर्य प्रकट किया।

''हाँ, कुछ सामान लेना था।'' आशा ने जवाब दिया।

''कोई आनेवाला है क्या?'' शीलाजी ने पूछा।

''हाँ, हमारे घर की रौनक आनेवाली है।''

''अच्छा तो बिटिया आ रही है!''

''हाँ शीला, हमारी बहूरानी स्नेहा आ रही है।'' कहते हुए आशा का चेहरा खुशी से चमक उठा।

१/२१७ विराट खंड, गोमती नगर, लखनऊ-२२६०१०
दूरभाष : ०७४९९१०३८५२

नई बिरादरी

● दीपक मशाल

पूजा ने किसी तरह हिम्मत करके अपनी शादी के बारे में एक बार फिर मम्मी से चर्चा चलाई। हालाँकि मम्मी पहले दिन से ही राजी थीं, लेकिन पूजा के लिए बड़ी चुनौती घर के कर्ता-धर्ता बड़े भाई दिलीप को मनाना थी। चूँकि डैडी के गुजर जाने के बाद से किसी भी अहम फैसले पर उन्हीं का निर्णय आखिरी और मान्य हो गया था।

शाम को मौका और मूड देखकर माँ ने दिलीप की प्लेट में गरम रोटी रखते हुए पूछा, ''बेटा, आखिर पता तो चले कि तुझे यह रिश्ता पसंद क्यों नहीं। पूजा और सुनील दोनों, सालों से एक-दूसरे को जानते हैं। साथ में पढ़े और अब नौकरी भी साथ करते हैं। दोनों जी-जान से चाहते हैं एक-दूसरे को।''

''मम्मी, मैं इससे बेहतर रिश्ता तलाश रहा हूँ न। पूजा में तो अभी बचपना है, पर मेरी समझ नहीं आता कि आपको इतनी जल्दी क्यों पड़ी है। मुझ पर तनिक भरोसा तो रखिए।'' बात को काटते हुए दिलीप बोला, ''आज दाल बहुत अच्छी बनी है, रामवीर से कहना, हमेशा ऐसे ही बघार लगाया करे।'' कहकर वह और दाल निकालने लगा।

''देख, बात बदलने की कोशिश न कर। जात-बिरादरी, धन-मान सभी में दोनों परिवार बराबर के हैं। उनकी कोई माँग भी नहीं। और तो और सुनील के पिताजी भी तेरे बराबर के अफसर हैं। फिर आखिर कमी क्या है बेटा?''

कम मिर्च के खाने ने भी अचानक दिलीप का चेहरा लाल कर दिया था।

''माँ, मैं आखिरी बार कह रहा हूँ कि यह शादी पॉसिबल नहीं और हाँ, श्यामाचरण मेरी तरह डी.एम. नहीं, बल्कि प्रमोटी डी.एम. हैं।''

मालवीय नगर, बजरिया कोंच (शुक्लाजी की दुकान के सामने)
जिला-जालौन-२८५२०५ (उ.प्र.)

विवशता

● देवराज संजू

बिंदर और प्रीतो बरामदे में बैठे चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे, जबकि उनका आठ वर्ष का मुन्ना व छह वर्ष की मुन्नी आँगन में घर-घर खेल रहे थे। उन्होंने नीम के पेड़ के नीचे ईंटों का घरौंदा बनाकर पत्तों का एक बिछौना बिछाया हुआ था।

''ऐ जी सुनिए! बच्चे बड़े हो गए हैं, अब एक कमरे में गुजर नहीं होती। मैं कब से कह रही हूँ कि बच्चों के लिए एक कमरा बनवा लो, लेकिन आप मेरी सुनते कहाँ हैं।'' प्रीतो ने फिर पुरानी शिकायत दोहराई।

''बना लेंगे नया कमरा भी, जब चार पैसे हाथ आएँगे तो।'' बिंदर ने लापरवाही से कहा।

''उधर देखो, बच्चों ने घर बना भी लिया और बिस्तर भी बिछा लिया।'' बच्चों की तरफ इशारा करते हुए प्रीतो ने कहा।

बाहर आँगन में मुन्ना किसी वयस्क की भाँति मुन्नी के कंधे पर हाथ रखे कह रहा था, ''रात बहुत हो चुकी है भागवान! चलो आओ, अब हम सो जाएँ।''

वे दोनों पत्तों के बिछौने पर पति-पत्नी की तरह सोने का अभिनय करने लगे।

बिंदर और प्रीतो दोनों ने चाय के अधभरे कप एक तरफ जमीन पर रख दिए और फटी-फटी आँखों से एक-दूसरे की तरफ देखने लगे। उन्हें कुछ नहीं सूझ रहा था, केवल बच्चों की बातें हथौड़े की तरह उनके मन-मस्तिष्क पर प्रहार कर रही थीं।

फिर अचानक बिंदर उठा और एक पुरानी तिरपाल को कमरे के बीचोबीच लटकाकर कमरे को दो भागों मे बाँट दिया।

राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला सुखार,
तहसील नूरपुर, जिला काँगड़ा-१७६०५१ (हि.प्र.)

सेल्स प्रमोटर

● गजेंद्र रावत

''सेल्स प्रमोटर के इंटरव्यू के लिए तीन लोग हैं सर, मगर इनमें एक आदमी बहुत ही नीच है।''

मेसेंजर ने कंपनी के चेयरमैन को बताया।

''कौन?'' चेयरमैन आश्चर्य से बोला।

''योगेश भटनागर!... पीली कमीज में है।'' घिन भरा मुँह बनाकर मेसेंजर बोला।

''क्यों?''

''सर, जिस दिन मैं इंटरव्यू लैटर देने इसके घर गया था, उस दिन बहुत गरमी थी। मेरा गला प्यास से सूखा जा रहा था। दूसरी मंजिल चढ़कर मैंने इसे लैटर रिसीव कराया और एक गिलास पानी माँगा। यह बोला, नीचे राइट साइड में मार्किट है, वहाँ से खरीद लेना। गुस्सा तब और बढ़ गया, जब इसने मेरे मुँह पर दरवाजा बंद कर दिया।'' मेसेंजर तैश में बोल रहा था, ''जबकि दूसरे कैंडीडेट्स ने मुझे 'ठंडा' पिलाया। आदमी-आदमी में फर्क होता है...''

चेयरमैन देर तक मेसेंजर की बात पर सोचता रहा। फिर मुसकराते हुए बुदबुदाया, ''नीच आदमी!''

इंटरव्यू के सप्ताह बाद मन मारकर मैसेंजर को सेल्स-प्रमोटर का अपॉइंट्मेंट लैटर योगेश भटनागर के घर पहुँचाने का काम करना पड़ रहा था। उसे चेयरमैन की अक्ल पर गुस्सा, खीज और उससे अधिक हैरानी हो रही थी।

डब्ल्यू.पी. ३३-सी, पीतमपुरा, दिल्ली-११००३४
दूरभाष : ०९९७१०१७१३६

जादूगर

● **हेमधर शर्मा**

वह जादूगर था, शब्दों का जादूगर!

एक छोटी सी घटना मिल जाए तो वह उसी को बड़ी कहानी का रूप दे देता था। कई बार ऐसा होता कि अपनी लिखी कहानी पढ़ वह खुद भी अचंभित रह जाता। पता नहीं, ईश्वर का वरदान था या कुछ और कि कलम उठाते ही अपने आप चलने लगती थी। उसे कुछ सोचना भी नहीं पड़ता था।

पर यह तब की बात है, जब उसकी नौकरी नहीं लगी थी।

लिखने की नौकरी। अपने इसी हुनर ने उसे काम दिलाया था। उसके जादू से खुश हो, राजा ने उसे खरीद लिया था। अब वह राजकवि था, ऐशोआराम की कोई कमी नहीं थी। जादू बढ़ गया था। अब उसे लिखने के लिए छोटी सी घटना की भी जरूरत नहीं पड़ती थी। ऐसी तिलिस्मी कविता-कहानियाँ लिखता कि लोग उसकी सूझ पर हैरान रह जाते। उसके नाम का डंका बजने लगा था।

समय गुजरता गया, जरूरत तो नहीं थी, राजकवि ने इतनी दौलत इकट्ठी कर ली थी कि सात पुश्तें बैठकर खा सकें, लेकिन वंशानुगत प्रभाव कहें या कुछ और कि राजकवि का बेटा भी कविता लिखने लगा था। शुरू-शुरू में खुश हुआ था राजकवि और जैसी कि हर बाप की इच्छा होती है, उसने भी कामना की थी कि उसका बेटा उससे बड़ा जादूगर निकले।

और बेटा सचमुच उससे बड़ा जादूगर निकला। बाप से भी ज्यादा उसके नाम का डंका बजने लगा था; पर राज गलियारों में नहीं, बल्कि आम जनों के बीच। राजा उसे खरीदने में असफल रहा था। प्रजा जागरूक होती जा रही थी और राजा को अपना सिंहासन डोलता नजर आने लगा था।

और तब, जबकि विद्रोह सिर्फ एक कदम दूर रह गया था, राजकवि ने राजा को वह सलाह दी, जिसने साबित कर दिया कि असली जादूगर वही था। अब राजा ने राज्य में लोकतंत्र स्थापित कर दिया था और प्रधानमंत्री बन गया था।

मंगलधाम सोसाइटी
नांदा, पोस्ट-कोराडी कॉलोनी
नागपुर-४४००११ (महाराष्ट्र)

तमाचा

● **जगदीश राय कुलरियाँ**

सेठ दीनदयाल ने जब रेलवे स्टेशन से बस-स्टैंड पहुँचकर अपना सामान देखा तो उसके होश उड़ गए। वे अपना रुपयों और गहनों से भरा एक बैग रेलगाड़ी में ही छोड़ आए थे। उसमें उनके पचास हजार रुपए और दस-बारह तोले सोने के गहने थे, जिन्हें वे अपने बेटे की शादी के लिए शहर के बैंक के लॉकर से निकालकर ला रहे थे। रास्ते भर उस बैग को उन्होंने कितना सँभालकर रखा था। उन्हें याद आया कि रेलगाड़ी में काफी भीड़ थी और उसके पास बहुत ही गंदे, फटे-पुराने कपड़े पहने हुए एक मैले से हाथ-पाँवोंवाला साधारण सा लड़का बैठा हुआ था।

उन्होंने मन-ही-मन उस नौजवान लड़के को एक गंदी सी गाली दी और बड़बड़ाए, ''उसी साले, चोर-उचक्के छोकरे ने मेरा बैग चुराया होगा। ये साले भीड़-भाड़वाली गाड़ियों में इसलिए तो सवार होते हैं।'' इसी तरह की बातें सोचते हुए वे उस लड़के को कोसते हुए परेशान हो रहे थे कि उनको पीछे से किसी ने आवाज दी। पीछे मुड़कर देखा तो वही लड़का सामने खड़ा था।

''सेठजी, सेठजी!'' यह लीजिए आपका बैग। मैंने रेलवे स्टेशन पर भी आपको कई आवाजें लगाई थीं, लेकिन आप मेरी आवाज सुने बिना ही जल्दी से ताँगे पर सवार हो गए। मैं स्टेशन से आपके ताँगे के पीछे-पीछे भागता चला आ रहा हूँ।'' लड़के ने फूलती साँसों से कहा। सेठ दीनदयाल ने लड़के के हाथ से बैग झपट लिया और खोलकर सामान की जाँच करने लगे। तसल्ली होने पर अपने पर्स में से एक पाँच रुपए का फटा-पुराना नोट निकालकर ईनाम देना चाहा।

''रहने दीजिए सेठजी! रख लीजिए, आपके काम आएगा।'' कहकर वह लड़का पीछे मुड़कर चलता बना। सेठजी उसे जाते हुए देखते रहे। उन्हें लगा कि वह लड़का उनके गाल पर तमाचा मारकर चला गया है।

४६, एंप्लाइज कॉलोनी
बरेटा, जिला-मानसा-१५१५०१ (पंजाब)
दूरभाष : ०९५०१८७७०३३

दंश

● ज्योत्स्ना कपिल

बाबूजी बहुत उमंग में थे। आतुरता से दरवाजे पर लगा घंटी का बटन दबाया। सोच रहे थे, उन्हें अचानक सामने देखकर बिटिया कितनी खुश होगी! कितना समय हो गया उससे मिले।

कुछ देर बाद लड़खड़ाते हुए जमाई बाबू ने दरवाजा खोला। मुँह से एक तेज बदबूदार भभका निकला। उसके हाथ में शायद कोई आभूषण था। प्रणाम की मुद्रा में जुड़े हाथ यों ही रह गए।

''बाबूजी आप!''

बेटी पर निगाह पड़ी तो कलेजा मुँह को आ गया। तन पर मार-पीट के निशान, शरीर पर आभूषण के नाम पर नाक की कील तक न थी। आँखों के नीचे पड़े स्याह घेरे अपनी कहानी खुद कह रहे थे। उसकी दशा देखकर बहुत देर तक पछताते रहे। फिर बोले, ''तू चल मेरे साथ, इस नर्क में अब मैं तुझे एक पल भी नहीं रहने दूँगा।''

''नहीं बाबूजी, अब तो यही तकदीर है मेरी, जिसे आपने चुना है मेरे लिए।''

''मुझसे बहुत बड़ी गलती हो गई, बेटी।''

''माँ-बाप से कहीं कभी कोई गलती होती है, बाबूजी!'' कहते हुए अश्रु उसकी आँखों से निकलकर गालों से ढलक पड़े।

''बेटी, तुमने कभी बताया भी नहीं कि···।''

''बताती भी तो कौन सुनता मेरी! पहले भी मेरी कहाँ सुनी आपने, जब विकास दिल की गहराइयों से चाहता था मुझे, पर वह जात-बिरादरी का न था, यह आपकी जात-बिरादरी के हीरे जैसे वर हैं, मुझे तो अब इसी हीरे की चमक में रिसना है जिंदगी भर!''

''नहीं बेटी, नहीं। हर भूल को सुधारा जा सकता है। इस भूल को भी सुधारेंगे हम।''

१८-ए, विक्रमादित्य पुरी, स्टेट बैंक कॉलोनी,
बरेली-२४३००५ (उ.प्र.)

हँसी-खुशी

● कमल कपूर

आज भी रीना 'वॉक' पर नहीं आई तो उसे चिंता हो आई । यहीं, इसी 'राजीव पार्क' में पहली बार मिली थी उससे। परिचय पहचान में बदला और पहचान स्नेहिल दोस्ती में। नेह के प्रगाढ़ पलों में एक दिन पूछा था उसने, ''रीना! तुम्हारे घर में कौन-कौन हैं?''

''मैं, मेरे पति और हँसी-खुशी।''

''हँसी-खुशी कौन हैं रीना?''

''मेरी प्यारी-प्यारी जुड़वाँ बच्चियाँ।'' कहते हुए वह थोड़ा सा मुसकराई थी।

उसका इन्हीं बच्चियों से मिलने का मन हो आया और रीना के तीन दिन से न आने का कारण जानने का भी, सो छोटी बजरिया से बच्चियों के लिए कुछ चॉकलेट्स और दो खिलौने लेकर वह उसके घर जा पहुँची।

उससे हुलसकर मिली रीना तो सबसे पहला सवाल उसने यही पूछा, ''हँसी-खुशी कहाँ हैं, रीना?''

''वे सो रही हैं।''

थोड़ी देर बाद उनकी 'केयर टेकर' ने आकर कहा, ''बीबीजी! हँसी-खुशी जाग गई हैं, पर वे दूध नहीं पी रहीं।''

वह उठकर भीतर चली गई और कुछ पल बाद लौट भी आई, ''बड़ी जिद्दी हो गई हैं।'' वह मुसकराई।

''रीना, बुलाओ न उन्हें। मैं उनसे मिलना चाहती हूँ।'' उसने आग्रह किया तो रीना ने मिसरी घुले स्वर में पुकारा, ''हँसी···खुशी···कम बेबी।'' वे दोनों चहकती-मटकती सामने आ खड़ी हुईं तो यों चौंक उठी जैसे उसने आठवाँ अजूबा देख लिया हो··· ''अरे! ये तो बिल्लियों के···''

''नहीं हेमा! ऐसे न कहो। ये मेरी बच्चियाँ हैं। पता है, इस घर में सबकुछ था, पर हँसी और खुशी नहीं थी, क्योंकि हमारी कोई संतान नहीं हुई। मेरे पति को बच्चा गोद लेना पसंद नहीं। एक दिन हमारे घर के पिछवाड़े आम के पेड़ के नीचे कजरी बिल्ली ने इन्हें जन्म दिया और अगले ही दिन मर गई तो मैंने इन्हें अपना लिया। अब हमारे घर में हँसी भी है और खुशी भी, इन दोनों के रूप में।''

२१४४/९ सेक्टर,
फरीदाबाद-१२१००६ (हरियाणा)
दूरभाष : ०९८७३९६७४५५

सुखांत

● मधु जैन

''वकील चाचा, बाबूजी की तेरहवीं भी हो गई, अब तो लॉकर की चाबी दे दीजिए।''

''ठीक है, देता हूँ, ये लो।''

वकील चाचा के साथ हरीश बैंक में कारवाई कर लॉकर खोलता है, ''ये क्या चाचा, आपने तो कहा था, लॉकर में सोना-चाँदी और वसीयतनामा है, पर इसमें तो चाँदी का एक सिक्का और हिदायतनामा है, आपने मुझसे झूठ क्यों बोला?''

और फिर अपशब्दों की बौछार करता हुआ चला गया।

''श्याम, ये हरीश बैंक से इतने गुस्से में क्यों निकला?''

''अरे लॉकर में कुछ नहीं मिला होगा।''

''तुम्हें ये सब कैसे पता?''

''वकील साहब ने बताया था कि पंडितजी का बाकी जीवन अच्छे से बीते, इसलिए उन्होंने एक तरकीब बनाई थी।''

''तू पहेली मत बुझा, सच-सच बता, क्या बात है?''

''हरीश के बाबूजी पंडिताई करके घर चलाते थे। पत्नी की मौत के बाद उन्होंने ही उसका लालन-पालन किया। जब उनके बेटा-बहू उन्हें खाने-पीने के लिए परेशान करने लगे तो कुछ दिनों तक प्रसाद खाकर रहे।''

''गाँववालों को यह बात क्यों नहीं बताई?''

''गाँव में उनकी इतनी इज्जत जो थी, एक दिन वकील साहब ने पूछा तो दोस्ती के नाते सबकुछ बता दिया। वकील साहब ने उनका बैंक में लॉकर खुलवा दिया और हरीश को खबर हो गई कि पंडितजी ने वसीयत की है, जो उनकी सेवा करेगा, उसे लॉकर में रखे जेवरात मिलेंगे।''

''अच्छा, इसीलिए वह पंडितजी की इतनी सेवा करता था। वकील साहब ने बढ़िया झूठ बोला।''

''किसी की भलाई के लिए बोला गया झूठ झूठ नहीं होता।''

५९३, संजीवनी नगर, जबलपुर-४८२००३ (म.प्र.)
दूरभाष : ०७६१४०५४९७८

मन तो होता ही है

● मीना पांडेय

आज श्रेया तितली-सी उड़ी फिर रही थी। फोन, बधाइयाँ, पकवान, केक और बहुत कुछ···गाँव से आई माँ हैरान-परेशान स्वयं को किसी तरह अड़साने की कोशिश में लगी थी। श्रेया भी धीरे-धीरे उन्हें सहज होने में मदद कर रही थी।

''नानी, आओ! यहाँ बैठो, हम सबके साथ! सेल्फी लेंगे!'' श्रेया चहकी।

''सेल्फी··· ?''

''नानी फोटो···''

''धत्त पगली, अब मैं बुढ़ापे में क्या फोटो खिंचाऊँगी।'' वे सकुचाईं।

''अरे, आओ न नानी!'' उसने खींचकर सोफे पर बैठा लिया।

''अरे नानी, इतनी सीरियस क्यों हुई जा रही हो? थोड़ा मुसकराओ न! हाँ ऐसे! नानी ऐसे पोज बनाओ! हाँ वाओ! नानी सो कूल!''

''हट पगली, जाने क्या-क्या करवाएगी मुझसे।'' नानी ने श्रेया को परे धकेलते हुए कहा।

इसी तरह हँसते-खेलते जन्मदिन का जश्न समाप्त हो गया। सब अपने-अपने घर चले गए।

नानी ने श्रेया से कहा, ''जरा दिखा तो, कैसी फोटू खींची है तूने?''

''नानी अब कल देखना, मैं थक गई हूँ।''

''अरे दिखा न, देखूँ कैसी लग रही हूँ?'' नानी ने श्रेया को खींचकर पास बिठा लिया।

श्रेया ने उनके हाथ में मोबाइल पकड़ाते हुए कहा, ''लो नानी, खुद ही देख लो, बस ऐसे आगे बढ़ाते जाना।''

नानी पूरी तन्मयता से फोटो देख रही थीं। बीच में बोल भी पड़ती थी, ''अरे, इसमें मैं कट गई हूँ। ये वाली अच्छी है। देखो तो इसमें मेरे बाल रुई से उड़ते दिख रहे हैं, बता देती तो ठीक कर लेती। अरे, इसमें तो मेरे दाँत दिख रहे हैं।''

कभी लजाती, कभी खिलखिलाती, कभी गुस्साती हुई माँ! कहाँ तो वह फोटो के लिए तैयार ही नहीं थीं और कहाँ··· ! सच बस एक आग्रह, एक पहल की जरूरत होती है···मन तो सबका होता ही है!

आई-५९६, आर.एस.एस. नगर, एम.आई.जी. कॉलोनी,
एम.आई.जी. थाने के पीछे,, इंदौर-४५२००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९६९१६८६१५३

मैरिज मैटीरियल

● **नीलिमा शर्मा**

'एक बार बोलकर तो देखो!' मन-ही-मन आवेश ने सोचा।

''आप बहुत कम बात करती हैं क्या?'' आवेश ने कहा।

''मैं अधिकतर चुप ही रहती हूँ!'' नजर नीची किए बालेश बोली।

''कितना ओवर कॉन्फिडेंट चिरकुट होगा, यह नहीं सोचा था।' मन-ही-मन बालेश बोली। ''मौन की भाषा में लफ्ज कहना आपको बखूबी आता है। आपकी आँखें बोलती हैं। बस आपके लब चुप रहते हैं!'' आवेश ने थोड़ा हिम्मत करते हुए कहा। 'उफ कवि भी है यह, रोजाना ऐसे तारीफ से रोमांस करेगा तो कविताई ही करता रह जाएगा और मैं गहरी नींद सो जाया करूँगी।'

''आपको क्या-क्या पसंद हैं?'' आवेश ने झिझकते हुए पूछा।

''जी छोटे-छोटे कपड़े।'' लेकिन अम्मा को पसंद नहीं। मन-ही-मन बालेश बोली। लेकिन सामने से बोली, ''जी, हमको अपनी भाभी और अम्मा के साथ मंदिर जाना पसंद है।''

''ऐसे कैसे जिंदगी कटेगी आपकी भविष्य में?'' आवेश बोला, फिर कॉफी हाउस में एक मौन पसर गया।

हर मसले का हल मौन नहीं होता। कभी-कभी शब्द भी जरूरी होते हैं।

दोनों एक साथ बोले, ''वॉशरूम होकर आते हैं।''

वहाँ दोनों के फोन पर व्हाट्स ऐप संदेश टाइप हो रहे थे।

''यार, मुझे बालेश पसंद है। शादी तो ऐसी ही लड़कियों से की जाती है। तन्वी से अपना चक्कर चलता रहेगा।''

''सच! क्या आइटम बॉय ढूँढ़ा मेरे डैड ने मेरे लिए, यह कोई मैरिज मैटीरियल है क्या?''

सवा सेर

● **नेहा अग्रवाल 'निःशब्द'**

कोठरीनुमा कमरे में पाँच लोग मुँह पर नकाब बाँधे अपने नापाक इरादों का जश्न बना रहे थे। हाथ में शराब का गिलास लिये उनमें से एक बोला, ''बधाई हो चीफ, मुझे नहीं पता था कि यह काम इतना आसान होगा। यहाँ होनेवाले भ्रष्टाचार ने तो चुटकी में सब काम करवा दिया।''

तभी बाहर कुछ गिरने की आवाज पर चीफ ने उनमें से एक को बाहर देखकर आने का इशारा किया और बाकी सबको अपने होंठों पर उँगली रखते हुए शांत रहने का इशारा किया।

कुछ ही समय में बाहर गया सदस्य वापस आया और हाथ से सबकुछ सही होने का इशारा किया।

चीफ ने उसे वहीं दरवाजे पर रुके रहकर नजर रखने को कहा और बाकी सबसे उनके कार्य की प्रगति जाननी चाही।

''चीफ हमने पूरे शहर को बारूद के ढेर में बदल दिया है। बस आधे घंटे बाद यह शहर कब्रिस्तान में बदल जाएगा।'' आदेश पाकर समूह के तीसरे सदस्य ने बात आगे बढ़ाते हुए कहा।

कुछ देर तक सोचने के बाद चीफ ने सबको हिदायत दी, ''तुम सबको याद है न, जो जैकेट तुम लोगों ने पहन रखी है, वो बारूद से पूरी तरह भरी हुई है। किसी भी मुसीबत में बस वो जैकेट उतारकर फेंक देना।''

चारों की सहमति में हिली गरदन को देखकर दरवाजे पर खड़े सदस्य से कहा, ''ठीक है, अब तुम बाहर जाकर गाड़ी निकालो।''

बाहर आते ही उसने नीचे झुककर मिट्टी उठाई और अपने माथे पर लगा ली। फिर अपनी जैकेट निकाली और कोठरी की तरफ उछाल दी।

''सर, तुरंत पूरे शहर में बम निरोधी दस्ते भेजिए। चार आतंकवादी जहन्नुम में और एक बेहोशी की हालत मे मेरे सामने पड़ा है।'' अगले ही पल वह सी.बी.आई. अधिकारी अपने साथी से फोन पर बात करते हुए आगे की ओर चल दिया।

५५४/६१९, चमन जागरणवालों के सामने,
छोटा बरहा पोस्ट ऑफिस के पास, आलमबाग, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४१०४०५९०१

चिट्ठी न कोई संदेश

● **नीना अंदोत्रा पठानिया**

''चलो उर्मी, तैयार हो जाओ, मार्किट जाना है। कुछ सामान लाना है।'' गजलें सुन रही उर्मी को उसकी सास नीलम ने कहा। ''चलते हैं माँ? बस एक लास्ट सुनने दो, फिर चलते हैं।''

''नहीं, बिल्कुल भी नहीं···सुनेगी और फिर उदास हो जाएगी और मैं नहीं चाहती तू उदास रहे, मैं चाहती हूँ तू खुश रहे मेरे लिए और उसके लिए, जो तेरी कोख में पल रहा है।''

तभी गजल शुरू हो गई··· 'चिट्ठी न कोई संदेश, जाने वो कौन सा देश, जहाँ तुम चले गए'। गजल शुरू होते ही दोनों सास-बहू शांत होकर गजल में खो गईं, अतीत की बंद किताब को दोनों सास-बहू एक-दूसरे से छुपकर खोलतीं और बंद कर देतीं, पर एक-दूसरे को मजबूत बनकर दिखातीं।

गजल खत्म होते ही नीलम ने अपनी आँखें साफ कर ली थीं, पर उर्मी अभी भी अतीत के समुंदर में थी।

''उर्मी मेरी बच्ची! मेरा बेटा भी तू है और बहू भी तू, सब तुझे ही देखना है।'' रोती हुई उर्मी को चुप कराते हुए नीलम बोली, वह अपनी बहू के दर्द को समझती है।

''किसने यह युद्ध बनाया, माँ? क्यों मुझ जैसी लड़कियाँ सारी उम्र इंतजार करती रहती हैं? मैं जानती हूँ, कमल नहीं आएगा, पर मुझे हर पल उसका इंतजार रहता है।'' सिसकती हुई उर्मी ने कहा।

''मैंने भी तो अपना बेटा खोया है, उर्मी, पर मुझे जीना है तेरे लिए और उस कमल के लिए, जो आनेवाला है इस दुनिया में, मेरे लिए, तेरे लिए।'' रोती हुई नीलम ने उर्मी को प्यार से गले लगा लिया।

आई-९, आश्रय अपार्टमेंट, नजदीक इंदिरा ब्रिज, हंसोल
अहमदाबाद (गुजरात)
दूरभाष : ९९७९००१४०

चाल

● **नीरज सुधांशु**

''राम-राम जी, बाऊजी!''

''राम-राम भई, रामप्रसाद! आज सुबह-सुबह कैसे? सब खैरियत तो है? बालक-उलक तो ठीक हैं?'' हलक में भरे पानी को गुड़गुड़ाकर पिचकारी मारकर बाऊजी ने पूछा।

''यो बालादत्त ठीक रहेण देगा तब न।''

''क्या कर दिया बालादत्त ने?'' बाऊजी ने मूढ़ा सरकाकर उस पर पसरते हुए पूछा।

''अजी वोई, दीवार का मसला, आज तो दिन निकले ई तू-तू, मैं-मैं करन लगा।''

''तुम आपस में बात करके न सुलझा सकते हो मामला।'' झगड़े की गहराई तौलते हुए बाऊजी ने जानना चाहा।

''ना जी, अब तो मैं परसान हो गया हूँ रोज-रोज की किच-किच से।'' रामप्रसाद ने दु:खी मन से कहा।

''तो एक काम कर, थाने चला जा, वोई अकल ठिकाने लगावेंगे उसकी।''

''चला जाऊँ? पर थानेदार लिख लेगा न रपट?''

''हाँ, हाँ, मेरा नाम ले दियो, हो जागा तेरा काम।''

गाँव में किसी को कोई समस्या होती या आपस में झगड़ा होता तो सलाह लेने बाऊजी के दर पर पहुँचता। बाऊजी का असली नाम रघुनंदन चौधरी था। एक कत्ल की सजा अधूरी भुगतकर वापस लौट आए थे। अधूरी इसलिए, क्योंकि देश की आजादी की पचासवीं वर्षगाँठ की खुशी में कई कैदियों की सजा माफ कर दी गई थी।

''राम-राम बाऊजी!'' रामप्रसाद के जाते ही बालादत्त ने प्रवेश किया।

''क्या बात, आज खेत पर ना गया?'' बाऊजी ने अनजान बनते हुए पूछा।

''दिमाग चल गया है मेरा तो इस रामपरसाद की हरकतों से, रोज-रोज झगड़ा लेकर बैठ जावै है दीवार का। क्या करूँ, आप ही सलाह दो।''

''एक काम कर, थाने चला जा, रामप्रसाद भी ना माना, थाने गया है, जो पहले पहुँचेगा, उसका केस भारी रहेगा।''

दोनों को लाईन में लगाकर बाऊजी ने फोन उठाया, ''हेलो इंस्पेक्टर, दो मुरगे भेजे हैं अभी-अभी।''

आर्य नगर, नई बस्ती, बिजनौर-२४६१०१
दूरभाष : ०९४१२७१३६४०

डिमांड

● मुन्नूलाल

उस दिन पापा बहुत खुश थे। आते ही मम्मी से बोले, ''किरन की माँ, किरन की तो किस्मत ही खुल गई समझो।''

मम्मी चहकी, ''शादी पक्की हो गई क्या?''

''हाँ, पक्की ही समझो, बहुत नेक और सम्मानित खानदान है, लड़का क्लास टू की अफसरी में आ गया है।'' पापा बोले।

''इतना बढ़िया। राजी कैसे हो गए? हम तो उनके मुकाबले···।''

पापा बात काटकर बोले, ''अरे, ऐसा कुछ नहीं। मेरे जाने से वे लोग बहुत खुश हुए। बोले, हम अपने बेटे की शादी किसी अध्यापक की बेटी से ही करना चाहते थे, पर यदि आप जैसे आदर्श अध्यापक की बेटी है, तो सोने में सुहागा।''

''डिमांड?''

''कहते हैं, हमारे पास कोई कमी नहीं, जो आप खुशी से दे देंगे, ले लेंगे।''

मम्मी झूम उठी। पर मेरी तो हालत खराब हो गई। मन हुआ चीख पड़ूँ, मुझे किसी क्लास-टू, फ्लास-टू से शादी नहीं करनी है, सिर्फ रोहन से करनी है, पूरे दिन परेशान रही। फोन मिलाते-मिलाते थक गई, पर रोहन का फोन स्विच ऑफ था।

''हैलो किरन!'' शाम होते-होते उसका फोन खुद-ब-खुद आ गया।

''हाय रोहन।'' मैं बाग-बाग हो उठी ।

''तुम्हारी होनेवाली शादी की बहुत-बहुत मुबारकबाद।'' वह खुश था।

''पर तुम्हें कैसे पता?'' मैं चकित थी।

''तुम्हारे पापा बहुत परेशान थे। मैंने ही उन्हें उस लड़के के बारे में बताया और उसके घरवालों से मिलवाया।''

''पर क्यों, शादी तो मुझे तुमसे करनी है न!''

''पर तब, जब मैं भी तुमसे करना चाहूँगा।''

''पर ऐसा क्यों? कई बार तो हमने एक-दूसरे से प्रॉमिस किया। साथ जीने-मरने की कसमें खाईं, सपने देखे।''

''अब उन सब बातों का कोई मतलब नहीं। सपने अलग होते हैं, जिंदगी अलग होती है।''

''क्या मैं खूबसूरत नहीं हूँ?''

''बेशक, बहुत खूबसूरत हो।''

''क्या मेरे चरित्र में कोई कमी है?''

''कतई नहीं।''

''क्या मैं तहजीब में खोटी हूँ?''

''कतई नहीं।''

''क्या मैं एक कुशल गृहिणी बनने के लायक नहीं हूँ?''

''किरन, तुम हर तरह से योग्य हो, पर···।''

''पर क्या?''

''पर मैंने काफी ज्यादा पैसे जाया कर डॉक्टरी की पढ़ाई की है। मुझे किसी डॉक्टर लड़की से शादी करनी है या फिर दहेज में पचास लाख लेने हैं। बोलो, दे पाएँगे तुम्हारे पापा?''

मुझे तो जैसे साँप सूँघ गया। कुछ बोल न सकी।

''दैट्स ऑल। अब मेरे मोबाइल पर कभी फोन न करना। तुमने मुझे जो प्यार दिया, उसके लिए बहुत-बहुत शुक्रिया!'' कहकर उसने फोन काट दिया । (सा.अ.)

ग्राम : पुरुषोत्तम पुर
पोस्ट : सोनपुर, वाया गैंसड़ी
जिला : बलरामपुर-२७१२१० (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९९१९०२८१६५

शगुन

● पवन जैन

वह सफाई करने मुँह अँधेरे ही आ गई थी। बँगले के सामनेवाली सड़क पर फैला कचरा बता रहा है कि रात में जमकर आतिशबाजी हुई। क्यों न हो, लाला की इकलौती बेटी की शादी जो है। झाड़ू लगाते-लगाते कुछ अटका। झुकी, 'यह तो चेन है।' उठाकर देखा, 'यह तो सोने की चेन है, बिल्कुल नई, वजनदार भी है।' मन-ही-मन बुदबुदाने लगी—

'चलो अच्छा हुआ, जल्दी आने का इनाम मिल गया।'

'नहीं, किसी बाराती की होगी, दे देनी चाहिए।'

'क्या फर्क पड़ता है इन लोगों को, गिर गई तो गिर गई, कोई खोजने भी नहीं आया होगा।'

'क्या करेंगे इसका, हमारे किस काम की, न पहन सकते और न ही बेच सकते।'

'रख ले, काम आएगी, सोने की है। पड़ी मिली है, कोई चुराई तो नहीं है।'

'नहीं-नहीं, अपनी नीयत खराब नहीं करनी, चलो लाला को दिए देते हैं।'

कदम दरवाजे की ओर बढ़ते जा रहे। देखते ही लाला जोर से चिल्लाए, ''काम-धाम कुछ किया नहीं, सुबह से ही माँगने चली आई।''

''नहीं लाला, मैं माँगने नहीं, कुछ देने आई हूँ।''

''अरे वाह, शगुन देने आई है, रिश्तेदारों में नाम लिख लूँ।''

''लाला क्यों मजाक उड़ाते हो हम गरीबों का।'' चेन दिखाते हुए वह बोली, ''यह बाहर, कचरे में मिली।''

''अरे, यह तो कुँवर सा को द्वारचार में पहनाई थी।''

''यह लीजिए और पहना दीजिए उन्हें।'' गहरी साँस लेते हुए उसने कहा, ''मेरा चेन मेरे पास वापस।''

५९३ संजीवनी नगर, जबलपुर-४८२००२ (म.प्र.)
दूरभाष : ०७६१४०५४९७८

टुकड़े इस्पात के

● पूनम डोगरा

आज नौकरी का पहला दिन था। माँ के माथे के बल और गहरा गए थे।

''रात की नौकरी ठीक नहीं। जाने दे बिटिया, कोई और नौकरी ढूँढ़ ले।''

''कैसे जाने दूँ माँ, इतनी अच्छी तनख्वाह और कहाँ मिलेगी! कितनी मुश्किल से तो इतने बड़े कॉल सेंटर में जगह मिली है।''

ऋतु सब जानती-समझती थी। माँ की त्योरियाँ, पिता की लाचारगी···सब! पर करे भी तो क्या!

पिता की प्राइवेट नौकरी और उस पर आ धमकी बीमारी, पहले से ही सिकुड़े बजट को और सिकोड़कर रख दिया था। भाई की पढ़ाई, पिता की दवाई, राशन इत्यादि; सब खर्चे कतार से अपनी-अपनी जगह सतर खड़े दिखाई दे रहे थे।

एक बार तो रात के अँधेरे में घूमते निशाचरों के डर से मन डाँवाँडोल भी हुआ, परंतु दूसरे ही पल डर को दूर झटक, मन को उसने आश्वस्त कर लिया।

ऐसे लोगों के लिए रात क्या और दिन क्या!

एक तरफ गुंडे और दूसरी तरफ उसका कॅरियर, पलड़ा दूसरी तरफ का ही भारी पड़ा।

सब तैयारियाँ हो चुकी थीं। माँ ने उसका टिफिन, तो पिता ने उसका फोन फुल चार्ज कर दिया था।

ऋतु ने बैग में सब रखा—टिफिन, छोटा पर्स, और···और···बाकी सब हथियार भी।

घर से बाहर कदम रखने से पहले बैग एक बार टटोल लिया, सब अपनी जगह रेडी थे—पेपर स्प्रे, पिसी लाल मिर्च और एक छोटा तेज चाकू भी! इन सबसे लैस हो, हौसलों से अपनी कमर कसती हुई कूद पड़ी वह कर्मक्षेत्र में।

बी-१/१५२२, वसंत विहार
दिल्ली-११००७०

इंतजाम

● सुधीर द्विवेदी

जरूरी कागजात ढूँढ़ने के लिए ज्यों ही उसने अलमारी के नीचे झाँका तो बाबूजी का पुराना बक्सा देखते ही उसका दिल बल्लियों उछल पड़ा। आनन-फानन में वह बक्सा तोड़ने में जुट गया। उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि इतनी तेज आवाज से सब जाग जाएँगे। हुआ भी वही। पत्नी और बच्चे तेज आवाज सुन कमरे में आ पहुँचे।

ढक्कन खोलकर ज्यों ही उसने बक्सा पलटा, उसके पूरे शरीर को जैसे लकवा मार गया। धम्म से वह फर्श पर ढह गया। फटी-फटी आँखों से वह बाबूजी के बक्से को घूरे जा रहा था। लंबी बीमारी से जूझते बाबूजी के सिधार जाने के कई महीनों बाद आज पहली बार बक्सा उसके हाथ लगा था। एक-के-बाद एक उसे सबकुछ याद आने लगा। बाबूजी की अच्छी-खासी सरकारी नौकरी थी। उनके सहकर्मियों की शान-शौकत देखकर उसका मन कभी नहीं मानता था कि इतने मलाईदार विभाग में रहकर भी बाबूजी माल न चीरते हों। हालाँकि उसने बाबूजी के ईमानदारी के चर्चे स्वयं सुने थे, जब एक-दो बार किसी काम से वह उनके दफ्तर गया था। बचपन से लेकर अपनी अंतिम साँस तक बाबूजी इस विषय में रत्तीभर भी न पसीजे थे। पैसे माँगने पर गाहे-बगाहे मिलनेवाली फटकार से उसे खीझ तो होती थी। पर हर बार वह

खुद को यह सोचकर समझा लेता कि अगर पैसे जोड़ भी रहे हैं तो उसी के लिए ही न! उसके सिवाय और कोई संतान तो है नहीं, जो···! इसीलिए उसने कोई नौकरी या धंधा करने की जहमत तक न उठाई।

कंधे पर परिचित स्पर्श पाकर उसकी चेतना लौटी।

''मैं कहती थी न कि बुढ़ऊ सब खा-उड़ा रहे हैं। फूटी कौड़ी तक न मिलेगी, पर आप तो कहते थे कि बाबूजी···! यह इंतजाम करके गए हैं तुम्हारे बाबूजी! अपनी औलाद के लिए।'' जंग लगे बक्से को देख-देखकर पत्नी भी स्वर्गीय बाबूजी को रोते हुए कोसे जा रही थी। अब उससे सहन न हुआ।

''बाबूजी आप जानते थे कि आपके बाद हम सब रोटी तक के मोहताज हो जाएँगे। इसीलिए असहनीय दर्द के बावजूद आपने दवा नहीं खाई।'' हुसकते हुए उसने कपड़ों की परतों से झाँकती दवाइयों के पचासों अनखुले पैकेट को बटोरा और सिसकने लगा। पत्नी हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई।

वह, जो मृतक-आश्रित कोटे से बाबूजी की जगह नौकरी पा गया था, अब बिलख-बिलखकर खुद को कोसते हुए रोए जा रहा था।

१२८/८०९ वाई-ब्लॉक, किदवई नगर,
कानपुर-२०८०१२ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९५५४२२२२७६

कोट

● राधेश्याम भारतीय

रामप्रसाद के छोटे बेटे की शादी है।

अलग-अलग शहरों में बसे उसके बेटे अपने परिवार सहित गाँव आए थे। बच्चों से घर में मेले-सा वातावरण बन गया था।

बच्चे दादाजी को शहर की अनेक घटनाएँ सुना रहे थे, जिनमें उनका अपने मम्मी-पापा के साथ समुद्र तटों की सैर करना, मॉल से शॉपिंग करना, होटलों में खाना खाना···और भी न जाने क्या-क्या!

दादाजी उनकी बातें किसी रहस्यमयी कथा की तरह बड़ी उत्सुकतापूर्वक सुन रहे थे। ठीक वैसे ही जैसे कोई अबोध बच्चा किसी अनहोनी-सी रोमांचक घटना को सुना करता है।

इसी बीच उसे याद आया कि एक बार वह और पत्नी बड़े बेटे के पास गए थे। पर वहाँ चार दिन उसी कोठी की चारदीवारी में कैद होकर रह गए। न बेटे-बहू ने उन्हें घुमाने के लिए समय निकाला और न ही उन्होंने जिद की। वैसे मन कर रहा था कि समुद्र तट पर सैर की जाए। शरीर ही तो बूढ़ा हो रहा था; पर मन तो जवान था।

''दादाजी, आपको चाचू की बारात में पैंट-कोट पहनना चाहिए, पापा की तरह।'' एक पोते ने उनका ध्यान भंग करते हुए कहा।

''उस पर टाई भी लगानी चाहिए। हैंडसम लगेंगे दादाजी।'' दूसरे पोते ने भी अपनी बात जोड़ दी।

''बिटिया, तू भी कुछ बोल दे···।'' दादा ने पोती के सिर पर ममता भरा हाथ रखते हुए कहा।

''क्यों नहीं दादाजी, लड़केवाले हैं। सज-धजकर तो जाना ही चाहिए।'' पोती भी अपने मन की बात कह गई।

''दादू पहनोगे न कोट?'' सभी बच्चों ने एक स्वर में जिद सी करते हुए पूछा।

''बच्चो, मैंने तो जिंदगी भर कुरता-पाजामा पहनकर मास्टरी कर ली। हाँ, एक बार तेरे चाचा का कोट सेवानिवृत्ति के मौके पर पहना था, उस दिन मन बड़ा प्रसन्न था। सारा गाँव आया था स्कूल में। हर जुबाँ पर मेरी मेहनत और कर्तव्यनिष्ठा के चर्च थे।''

''क्या दादू, इतना पैसा लेते हो, जी लेते अपनी जिंदगी।'' पोता फिल्मी डायलॉग की तरह बोल गया।

यह सुन उसकी आँखों के सामने महीने का प्रथम सप्ताह घूम गया। वह किस तरह राशनवाले, दूधवाले, अखबार वाले; सभी को थोड़ा-थोड़ा पैसे देकर अगले महीने हिसाब चुकता करने की बात कहता। और अगले महीने भी वही हाल होता। बच्चों की पढ़ाई के लिए कर्ज ही काबू न आया कभी।

''कहाँ खो गए दादू! कुछ अपनी भी सुनाओ?''

''बेटे, मेरे पास क्या है सुनाने को। अब तो मन करता है, तुम्हारी सुनता रहूँ।'' बोलते हुए रामप्रसाद ने बच्चों की तरह चेहरे पर मस्ती के भाव लाते हुए कहा, ''और हाँ, तुम्हारे इसरार पर, आज कोट ही पहनूँगा। देखूँगा, किस बेटे का कोट फिट बैठता है।''

नसीब विहार कॉलोनी, घरौंडा, करनाल-१३२११४
दूरभाष : ०९३१५३८२२३६

इतिहास के कूड़ेदान से

● **लक्ष्मी नारायण अग्रवाल**

यों तो खूब ऊँची हवेली है, लेकिन वंश डूब ही गया समझो। धरमदास काज दुकान से उतरकर जाते उस नशेड़ी की झुकी पीठ पर नजर जमाए, बुजुर्ग लाला शिवदयाल सोच रहे थे—अपने ही दादा के खजाने से पुरानी किताब-कॉपियाँ चुराकर रद्दी में बेच जाता है नशे की खातिर। आज पुरानी फाइलों का यह गट्ठर बेच गया है।

लाला ने उत्सुकतावश गट्ठर के बीच से पतली-सी एक फाइल खींच ली। भोला नाम के किसी व्यक्ति के पुराने पत्र थे। खोलकर उन्हें पढ़ने लगे—

पहला पत्र

दिनांक : प्रथम आम चुनाव

आदरणीय नेताजी,

जैसा कि आपको पता है, स्वतंत्रता आंदोलन में मेरा बेटा आपके साथ लड़ा था; किंतु वह शहीद हो गया और आप बच गए। आशा थी कि आजादी के बाद सरकार हमारी कुछ सुध लेगी, लेकिन कोई नहीं आया। बेटे के बच्चों की शिक्षा का कुछ प्रबंध हो जाता तो बहुत अच्छा होता।

आपका एक वोटर

भोला

दूसरा पत्र

दिनांक : दूसरा आम चुनाव

आदरणीय नेताजी,

पाँच वर्ष बीत गए, किंतु शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं हुआ। अब तो मकान भी गिर गया है। एक छत का प्रबंध हो जाता तो अच्छा होता।

आपका वही वोटर

भोला

तीसरा पत्र

तारीख तीसरा आम चुनाव

आदरणीय नेताजी

और पाँच वर्ष बीत गए। न शिक्षा का अता-पता है, न सिर छुपाने की छत का। झोंपड़ी भी बाढ़ में बह गई। एक टुकड़ा खेत था, उसकी फसल पर आपकी पार्टी के बाहुबलियों ने कब्जा कर लिया है। अब खाने के भी लाले पड़ गए हैं। हो सके तो एक कटोरा और शहर तक जाने का प्रबंध कर दें। अपने गाँव में तो भीख नहीं माँग सकता न।

आपका हताश वोटर

भोला

चौथा पत्र

दिनांक : चौथा आम चुनाव

आदरणीय नेताजी

कटोरा तक न दिला सके। बदकिस्मती यह कि अपने ही गाँव में हथेली फैला, भीख माँगकर गुजारा करना पड़ रहा है। कल गाँव में पहली बार राशन आया था। जमींदार, दरोगा और आपकी पार्टीवालों ने रातभर जश्न मनाया। लाठी टेककर भी चलने की शक्ति नहीं रह गई है। कल रात के जश्न की झूठन से आज का दिन तो निकल गया; पर कल क्या होगा?

आपका अभागा वोटर

भोला

पाँचवाँ पत्र

दिनांक : पाँचवाँ आम चुनाव

आदरणीय नेताजी

आखिरी खत लिख रहा हूँ। हो सके तो दो गज कफन भेज दीजिए, ताकि अपने जुझारू बेटे के पास नंगा न जाना पड़े । बिना कफन गया तो बेटा देश के बारे में क्या सोचेगा। अंतिम प्रार्थना है कि कफन भेज दें। मैं आपको वचन देता हूँ कि मैं और मेरा शहीद बेटा पुन: इस देश में जन्म लेकर आप जैसों को कष्ट नहीं देंगे।

अलविदा

भोला

आगे कोई और पत्र इस फाइल में नहीं था। उसके आखिरी कवर की भीतरी तह पर लाला की आँखों से दो आँसू टपक पड़े। उन समेत फाइल को बंद कर वह दो पल के लिए आँखें मूँदने को विवश हो गया। धरमदास का वंश डूबने के गम में? नहीं।

४-७-१२६, ईसामिया बाजार, हैदराबाद-५०००२७
दूरभाष : ८१२१३३०००५

अपनी कमाई

● अनिता ललित

''मुन्नू! तो तुमने चुराए थे यहाँ से पचास रुपए? बोलो! बोलते क्यों नहीं?''

''शीला! तुमने यही सिखाया अपने बेटे को कि जिस थाली में खाए, उसी में छेद करे! शर्म आनी चाहिए! मैं तो इसे अपने रौनक जैसा ही मानती थी। बिना किसी रोक-टोक के घर में आने देती थी। उसके साथ खेलने देती थी। मगर इसने तो क्या रंग दिखाया···!''

सीमा गुस्से में तमतमाई हुई थी! हुआ यों था कि कल सीमा ने जल्दी-जल्दी में पचास रुपए का एक नोट अपनी दराज में रख दिया था, जो आज उसे नहीं मिल रहा था। वह किसी कार्यवश बाहर आई तो उसने अपने ग्यारह-बारह वर्षीय बेटे रौनक और उसके हमउम्र, नौकरानी शीला के बेटे मुन्नू को बाहर गेट पर खड़े होकर आइसक्रीम खाते हुए देख लिया। मुन्नू बहुत खुश लग रहा था। आइसक्रीम मुँह में लगाए-लगाए ही उसने बड़ी शान से, अपनी जेब से पचास रुपए का नोट निकाला और आइसक्रीम वाले को दिया।

अब तो सीमा का पारा सातवें आसमान पर था। वह जो मुँह में आए, बोले जा रही थी। मुन्नू सिर झुकाए खड़ा था। उसकी आइसक्रीम पिघल-पिघलकर उसके कपड़ों पर टपकती जा रही थी। शीला चुपचाप नजरें झुकाए खड़ी, कनखियों से उसको देख रही थी। आज बेटे ने उसके स्वाभिमान को चोट पहुँचाई थी, उसे कहीं का नहीं छोड़ा था। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि उसका मासूम, होनहार, लाडला बेटा, जो हर बात में उसका इतना खयाल रखता है, उसको इस तरह दुःख भी पहुँचा सकता है।

सीमा फिर एक बार दहाड़ी, ''रौनक, खबरदार! जो आज के बाद इस चोर के साथ खेले तो! इसने मेरी दराज में से रुपए···''

''माँ···!''

रौनक ने बीच में बोलने की कोशिश की। माँ को इतने गुस्से में देखकर उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई थी। डर के मारे उसके मुँह से आवाज नहीं निकल रही थी। किसी तरह हिम्मत करके, थूक गटककर रुआँसी आवाज में वह फिर बोला, ''सॉरी माँ! आज मुन्नू का 'हैप्पी बर्थ डे' है। मेरे पास उसको देने को कोई गिफ्ट नहीं था, तो मैं उसको आइसक्रीम खिलाना चाहता था। आपकी दराज से पचास रुपए मैंने निकाले थे।'' मगर मुन्नू जिद कर रहा था कि आज मैं नहीं, वह मुझे आइसक्रीम खिलाएगा, वह भी अपनी कमाई के पैसों से···''

''बड़ा आया अपनी कमाई वाला! कौन सी कमाई? कहाँ की कमाई? इसके स्कूल की फीस तक तो हम भरते हैं! मुझे बेवकूफ समझ रखा है क्या?'' बीच में ही सीमा फिर चिल्ला पड़ी।

''ये रहे तुम्हारे रुपए माँ!'' जल्दी से रौनक ने अपनी जेब से पचास का नोट निकालकर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, ''आइसक्रीम वाले को मुन्नू ने जो रुपए दिए, वे उसी के थे। वही रुपए, जो पापा ने आज सुबह जूते पॉलिश करने पर उसे ईनाम में दिए थे।''

१/१६ विवेक खंड
गोमतीनगर, लखनऊ-२२६०१०

डिजिटल संतोष

● सीमा स्मृति

''स्वामी सर, लंच कर लीजिए।'' मैंने टिफिन खोलते हुए कहा।

''आया मैडम।''

''सर, सब्जी लीजिए।'' मैंने स्वामी सर को रोज की तरह सब्जी आगे बढ़ाते हुए कहा।

''अरे नहीं मैडम, आज नहीं, आपकी सब्जी नहीं ले सकता।''

''क्यों सर?''

''आज अमावस्या है, आज प्याज-लहसुन नहीं खाता हम लोग।''

''क्यों सर?''

''आज तर्पण करना होता है। बड़े-बूढ़े लोग, जो चला गया भगवान् के पास, उनके लिए पंडितजी को बुलाकर, पूजा करना मतलब तर्पण करना होता है।''

''अच्छा! आज आपने पंडितजी को बुलाया होगा।''

''अरे नहीं मैडम, यहाँ गुड़गाँव में पंडित लोग बहुत पैसा लेता है, एक बार का एक हजार रुपए लेता है। चैन्नई में पंडित बुलाता हम लोग हर महीने। यहाँ तो ऑफिस में ही यू-ट्यूब से तर्पण-पूजा डाउनलोड किया और फोन में ट्रांस्फर किया। देख-देखकर पूजा कर लिया। फ्री में तर्पण हो गया।''

जी-११, विवेक अपार्टमेंट, श्रेष्ठ विहार, दिल्ली-११००९२
दूरभाष : ०९८१८२३२०००

ऐसे शिष्य

● शील कौशिक

देशमुख साँझी सामाजिक संस्था के सक्रिय कार्यकर्ता थे, उनके प्राध्यापक पद से सेवानिवृत्त होने के तीसरे दिन ही सभा बुलाई गई, जिसमें सर्वसम्मति से उन्हें संस्था का अध्यक्ष बनाया गया। पदभार सँभालते ही उन्होंने काफी समय से लड़कियों का कॉलेज बनाने की लंबित माँग के बारे में चर्चा की। तय हुआ कि कॉलेज निर्माण के लिए खर्च होनेवाली २५ लाख रुपए की राशि शहर के दानी और धनाढ्य लोगों से चंदे के रूप में एकत्र की जाए। इस कार्य के लिए चार लोगों की समिति बनाई गई, जिसके वे स्वयं भी सदस्य थे।

''सर्वप्रथम, कॉटन मिल के मालिक प्रभुदयालजी के यहाँ से शुरुआत की जाए। प्रभुदयाल मेरा शिष्य भी रहा है, मुझे पूरा विश्वास है कि वह मेरा मान अवश्य रखेगा।'' कहकर देशमुख ने ५० हजार की रसीद पहले ही काटकर रख ली।

प्रभुदयालजी ने चारों की खूब आवभगत की और फिर पूछा, ''कहो गुरुजी! कैसे आना हुआ?''

''देखो प्रभु! यह तो तुम भी जानते हो कि शहर में लड़कियों के कॉलेज की कितनी आवश्यकता है, बारहवीं कक्षा के पश्चात् लड़कियों के माँ-बाप दूर-दराज के इलाकों में उन्हें पढ़ने भेजने में संकोच करते हैं, परंतु कॉलेज बनाने के लिए कम-से-कम २५ लाख रुपए तो चाहिए ही।'' देशमुखजी आगे कुछ और कहते, प्रभुदयाल उठकर अंदर चले गए। जब वे काफी समय तक वापस न आए तो वे चारों एक-दूसरे की ओर देखने लगे। संशय के बादल घिर आए।

''उहँ! थोड़ी देर में नौकर आकर कहेगा, फिर किसी दिन आना, मालिक को आवश्यक कार्य से बाहर जाना पड़ रहा है।'' एक बोला।

''लगता है, सिर मुँड़ाते ही ओले पड़े, वाली कहावत आज चरितार्थ होनेवाली है।'' दूसरे ने कहा।

''प्रभु से ऐसी उम्मीद न थी।'' देशमुख की आँखों में चिंता साफ झलक रही थी। तभी सामने से प्रभुदयालजी आए और देशमुख के हाथों में चैक थमाने लगे।

''रुको, कितने दे रहे हो ? तुमसे तो मैं ५० हजार रुपए से कम न लूँगा···ये लो, मैं तो पहले से ही रसीद बनाकर···''

''ठीक है, पहले आप यह चैक तो पकड़ो; आवश्यकता होगी तो और दे दूँगा।'' प्रभुदयाल ने विनम्रता से कहा। देशमुख ने चैक हाथ में पकड़कर चश्मे के भीतर से झाँका और पढ़ा। एक बार फिर पढ़ा, पच्चीस लाख रुपए, कुछ बोलने के लिए उनके होंठ खुलें, इससे पहले ही प्रभुदयाल बोले, ''आप मेरे आदर्श गुरु रहे हैं और मैं नहीं चाहता कि इस उम्र में मेरे गुरु इस नेक कार्य के लिए दर-दर भटककर चंदा इकट्ठा करें।''

यह सुनकर गुरुजी अपनी जगह से उठे और उसे आलिंगनबद्ध किया, उसकी पीठ थपथपाई और अश्रुपूरित नेत्रों से कहा, ''कहाँ मिलते हैं ऐसे शिष्य आजकल?''

म. नं.-१७, सेक्टर-२०, सिरसा-१२५०५५ (हरियाणा)
दूरभाष : ९४१६८४७१०७

प्रतिमा विसर्जन

● लता अग्रवाल

''बा बा! हमने माँ का पूजन किया, फिर इन्हें पानी में क्यों डुबो दिया?''

''श···श···ऐसा नहीं कहते, बेटी। इसे 'विसर्जन' कहते हैं।''

''वो क्या होता है बाबा?''

''यह एक प्रथा है मेरी बच्ची। हम देवी माँ को आमंत्रित करते हैं, नौ दिन उत्सव मनाते हैं। फिर दसवें दिन उन्हें उनके घर भेज देते हैं। इसे विसर्जन कहते हैं।''

''अच्छा··· ! समझ गई, यह एक परंपरा है ! माँ को भी समझाऊँगी, रोया न करें, जब से अस्पताल से आई हैं, दु:खी रहती हैं। बताऊँगी उन्हें कि मेरी बहन का भी विसर्जन किया है। दादी कहती है न, बेटी देवी का रूप है।''

''बाबा!''

''हाँ बेटी!''

''क्या देवी केवल पूजन और विसर्जन के लिए ही होती हैं, क्या उन्हें घर में नहीं रखा जा सकता?''

७३ यश विला, भवानी धाम, फेस-१
नरेला शंकरी, भोपाल-४६२०४१

पिता

● राम निवास बाँयला

अंजू मैडम की अश्रुधारा गोदी में बैठे तीसरी कक्षा के छात्र विवेक के हृदय में उतर रही थी। साथ से निकलते हुए गोविंद सर ने देखा तो टोका, ''अरे वाह! सदा दुत्कारी जीव और ये आत्मीयता? सुखद आश्चर्य! पर मैडम, माजरा क्या है?''

अपनी सुबकाई को बड़ी मुश्किल से रोककर अंजू मैडम बताने लगीं, ''सर! कक्षा कार्य में विवेक द्वारा पिता पर लिखे तीन वाक्यों ने तड़प-तड़पकर मरते मेरे पिताजी की दुर्दशा की याद दिला दी।''

गोविंद सर जानना चाहते थे कि आखिर उन तीन वाक्यों में उस अबोध बालक ने क्या लिख दिया? उनकी उत्सुकता शांत करने को अंजू मैडम ने विवेक द्वारा लिखे उन तीन वाक्यों को पढ़ा—

''पिता मेरे लिए एक खौफ है। उसकी लाल-लाल आँखों से डर लगता है।

''एक दिन मुझसे उसकी सफेद पाउडर की पुड़िया, जिसे वह बहुत कीमती कहता है बिखर गई। उसके बाद से तो यह खौफ हर दिन बढ़ता ही चला आ रहा है।''

ग्राम : सोहनपुरा
पोस्ट : पाटन
जिला : सीकर-३३२७१८ (राजस्थान)
दूरभाष : ९५१०१९०९८७

दरकते रिश्ते

● सुनीता त्यागी

पिता की असमय मृत्यु के पश्चात् सुमन के विवाह में लिये गए कर्ज का सारा बोझ नीरव के कंधों पर आ गया था। जैसे-तैसे कर्ज तो उतर गया, पर वह पूरी तरह कंगाल हो चुका था। जब से जीजाजी की पदोन्नति हुई, सुमन ने भी गाँव आना बहुत कम कर दिया था। एक वही तो थी, जिससे वह अपनी परेशानी साझा कर लेता था।

कुछ दिनों से नीरव को उसकी बहुत याद आ रही थी। पत्नी से गाय के दूध की कुछ मिठाई बनवाई और लेकर बहन के घर पहुँच गया।

किट्टी पार्टी चल रही थी। सारी सखियाँ तंबोला खेलने में मगन थीं। जीर्ण-शीर्ण कपड़ों में पहुँचे भाई को ऊपर से नीचे तक देखकर सुमन के माथे पर सलवटें आ गईं। उसने नीरव को ले जाकर अंदर बिठा दिया। सहेलियाँ प्रश्न भरी निगाहों से देख रही थीं।

''भाई का सर्वेंट है, कुछ काम से आया है।'' खींसे निपोरते हुए वह सहेलियों की तरफ मुसकरा दी।

नीरव ने सब सुन तो लिया था, फिर भी अपमान का घूँट पीकर अनजान बन सोचता रहा, 'जब आ ही गया हूँ तो सबसे मिलकर ही जाऊँगा।'

पार्टी समाप्त हो चुकी थी। सुमन ने भाई की दशा देखकर उसे सलाह दे डाली, ''देख भाई! तू इस तरह फटेहाल यहाँ न आया कर! मेरी बेइज्जती होती है। तेरे जीजाजी अब बड़े अफसर हो गए हैं। सोसाइटी में हमारी कुछ इज्जत है। इस बार तो मैंने सँभाल लिया, पर हर बार नहीं। ले यह किराया और चाय पीकर अभी लौट जा। और हाँ, ये पचास रुपए रख ले, कपड़े धुलवा लेना भाभी से और देख! कोई परेशानी हो तो हम फोन पर भी तो बात कर सकते हैं न।''

नीरव, जो बड़ी हसरत लिये बहन से मिलकर अपने सुख-दुःख बाँटने आया था, भारी मन से एक ही बात कह पाया, ''ठीक है बहना! चलता हूँ। मैं सुदामा बनकर तेरे घर आया था, पर तू कृष्ण न बन सकी।'' और साथ लाए मिठाई के थैले को बगल में दबाकर भारी कदमों से बाहर निकल गया।

२६२/६, जागृति विहार, मेरठ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०८५३३९०६२८८

कभी माफ मत करना...

● विनीता राहुरीकर

''कैसे हो राजाराम? बहुत दिनों से आए नहीं?'' राजाराम को देखते ही कब्बन मियाँ ने बड़े उत्साह से पूछा, ''बाबा कैसे हैं आजकल, निकलते नहीं क्या घर से।''

''ठीक हैं चचा, थोड़ा काम में फँसा हूँ। बाद में मिलता हूँ।'' राजाराम बिना कब्बन मियाँ की पूरी बात सुने ही तेजी से आगे बढ़ गया।

कब्बन मियाँ के दिल को ठेस लगी। पैंसठ साल से वे इस मोहल्ले में रह रहे हैं। इसी मिट्टी में पैदा हुए, खेले, पढ़े, नौकरी की और रिटायर हुए। यह मोहल्ला नहीं, उनका घर है। हर सुख-दुःख में यह मोहल्ला एक भरे-पूरे परिवार की तरह हमेशा उनके साथ रहा। सारे बच्चे उनकी गोद में खेलकर बड़े हुए।

तभी सामने से पिंकी गुजरी। चार घर छोड़कर रहती है। आठ बरस की पिंकी उनकी आँख की पुतली है। खूब कंधे पर बिठाकर उसे दशहरे की आतिशबाजी दिखाई है। पिंकी भी दादाजी-दादाजी कहकर उनसे खूब लाड़ करती। स्कूल से आकर कब्बन मियाँ और उनकी बीवी के पास ही सारा दिन रहती। बेऔलाद कब्बन मियाँ और उनकी बीवी ने सारा प्रेम इन्हीं बच्चों पर लुटाया था। यही उनकी औलाद और जीने का सहारा है।

''अरे पिंकी, बेटा आ, आजा देख, तेरे लिए दादी ने मिठाई रखी है।'' कब्बन मियाँ ने बड़े लाड़ से उसे हाथ बढ़ाकर पास बुलाया।

लेकिन पिंकी ने उनकी ओर देखा तक नहीं और भाग गई। कब्बन मियाँ की आँखें भर आईं। हवा का बदलता रुख वह कई दिनों से देख रहे थे। लोग उनसे कटने लग गए थे। हमउम्र तो फिर भी दुआ-सलाम कर लेते, पहले की तरह, लेकिन उन्हीं की गोद में खेले बच्चे उनसे कतराते, उन्हें नजरअंदाज कर चले जाते। कुछ की आँखों में अजीब अपरिचित भाव आ जाते। मियाँ अपने ही घर में अलग-थलग पड़ गए। जवान पीढ़ी अपने बच्चों को उनसे दूर रखती। मियाँ समझते थे, जानते थे, ये सब सुदूर देशों से आनेवाली जहरीली हवा का नतीजा है। इसमें इन बच्चों का कोई दोष नहीं है। मियाँ खुद ही शर्मिंदा होते थे, ऐसी खबरों को पढ़कर। इनसानियत के दुश्मन, न खुद चैन-अमन, मुहब्बत से रहते, न हमें रहने दे रहे। आए दिन आग भड़काते रहते हैं। नौजवानों को बरगला रहे हैं।

मियाँ अंदर-ही-अंदर टूटते-घुलते जा रहे थे। कभी खुदा का शुक्रिया करते कि अच्छा हुआ, उन्हें बेऔलाद ही रखा। कहीं उनकी औलाद भी...नमाज का वक्त हो गया था। लेकिन आज नमाज पढ़ने में भी उनका मन नहीं लगा। दुआ के लिए उठे हाथ नीचे लटक गए।

''अल्लाह, ये सब क्या हो रहा है। मेरी जन्नत तो मेरा घर और मोहल्ला ही है। मरने के बाद जन्नत में जाकर मैं क्या करूँ। जब मेरी अपनी ही कौम के लोगों ने जीते जी मुझे दोजख में डाल दिया है। ये हैवान तो जहरीली आँधी बनकर आते हैं और वतन की खुशनुमा हवा में नफरत का जहर भर देते हैं। खुदा, इन्हें कभी माफ मत करना। ये इनसानियत के ही नहीं, तेरे भी दुश्मन हैं। इन्होंने मुझसे मेरा घर छीन लिया, मेरा परिवार छीन लिया। मेरी ही मिट्टी से मुझे बेगाना और गुनहगार बना दिया। जिन आँखों में मेरे लिए मोहब्बत और सम्मान झलकता था, उन्हीं आँखों में मेरे लिए नफरत और गुस्सा भर दिया। अल्लाह इनसानियत के इन दुश्मनों को दोजख में भी जगह मत देना।''

और कब्बन मियाँ जमीन पर गिरकर फूट-फूटकर रो दिए।

रोशनी

● सीमा जैन

दीये और तेल खरीदकर घर जा रही हूँ। धनतेरस का दिन है। जाकर पहले खाना बनाना है, फिर दीये जला लूँगी। बेटे को बुखार है। माँ इतनी कमजोर है कि उससे कुछ काम नहीं हो पाता।

घर पहुँची तो पड़ोसन रजिया मुन्नी को गोद में लिये बैठी थी। मुझे देखकर बोली, ''आज भी देर कर दी, तेरी मालकिन को दया नहीं आती क्या तुझ पर?''

थकी आवाज में मैंने कहा, ''त्योहार के दिन काम ज्यादा रहता ही है। फिर मेहनताना भी ठीक-ठाक मिल जाता है, वह भी समय पर। ये भी क्या कम है आज के जमाने में!''

''अच्छा ठीक है। मैंने आटा लगा दिया है और भाजी काट दी है। ला, दीये में पानी मैं डाल देती हूँ। तू इस मुन्नी को सँभाल, कब से रो-रोकर हलकान हुए जा रही है।'' रजिया बोली।

मैं सोच रही थी—रजिया नहीं होती तो मैं कैसे काम पर जा पाती? इसके भरोसे ही तो छोड़ जाती हूँ, बेटे, मुन्नी और माँ को। रजिया दीये में पानी डालकर बोली, ''अब मैं जा रही हूँ, मुझे भी रोटी बनानी है।''

''रजिया, देख न बाहर कितनी रोशनी है।''

''हाँ, तू भी कर लियो अपने दरवज्जे की रोशनी, दीये भीग रहे हैं अभी।''

पर मेरे मन में तो कुछ और ही चल रहा था। मैंने जल्दी से डिब्बे में से गुड़ का टुकड़ा निकाला और बोली, ''रजिया जरा रुक!''

''अब क्या हुआ?'' रजिया जाते-जाते ठिठक गई।

जवाब में मैंने रजिया के मुँह में गुड़ का टुकड़ा डाल दिया और बाँहें फैलाकर बोली, ''दरवज्जे पर रोशनी तो वे चार दीये करेंगे ही, पर असली रोशनी तो मेरी सखी के दिल में है।''

२०१, संगम अपार्टमेंट, ८२
माधव नगर (विजय नगर)
ग्वालियर-४७४००९ (म.प्र.)

कपूर

● सविता मिश्रा

''क्या हुआ बेटा? तेरी आवाज क्यों काँप-सी रही है? जल्दी से बता''हुआ क्या?''

''माँ, वो गिर गया था सुबह-सुबह।''

''कैसे, कहाँ गिरा, ज्यादा लगी तो नहीं? डॉक्टर को दिखाया! क्या बताया डॉक्टर ने?''

''न माँ, ज्यादा तो नहीं लगी, पर डॉक्टर कह रहे थे कि माइनर ऑपरेशन करना पड़ेगा। नाक में अंदरूनी चोट है।''

''ऑपरेशनऽऽ''

''अरे माँ, परेशान होनेवाली बात नहीं है।''

''सुन, अभी मत कराना ऑपरेशन। मैं तुरंत चलती हूँ, शाम तक पहुँच जाऊँगी।''

प्रभु को याद करती हुई मानसी फोन रखते ही रो पड़ी। तुरंत ही बेटे के पास जाने की तैयारी में जुट गई।

अभी दो साल पहले ही मिक्कू के पैरों का ऑपरेशन हुआ था। बस में बैठ वह सोचने लगी—फिर दो-तीन बार और दुर्घटना हुई और अब ये नाक पर चोट! भगवान्, तू इस तरह क्यों बार-बार परीक्षा ले रहा है मुझ गरीब की! सोचते-सोचते साड़ी के पल्लू से रास्ते भर अपने आँसू पोंछती रही। घर पहुँचते ही मिक्कू को साथ ले, अस्पताल पहुँची। बरामदों में पड़े कराहते हुए, रोते और दर्द से तड़पते हुए मरीजों और उनके तीमारदारों को देख वह भौंचक रह गई। उसने हँसते हुए उसके साथ चल रहे मिक्कू की ओर देखा। सोचने लगी—मुझे तो काजल की लकीर सा हल्का धब्बा ही दिया प्रभु ने। इन सब मरीजों के जीवन में तो काली रात का अँधेरा भर रखा है। तू बड़ा दयालु है भगवान्, यों ही कृपा बनाए रख।

अपने आँसू पोंछ, वह मुसकराती हुई डॉक्टर के कैबिन में घुस गई।

फ्लैट नंबर-३०२, हिल हाउस, खंदारी अपार्टमेंट,
खंदारी, आगरा-२८२००२ (उ.प्र.)

कैनवस

● शोभा रस्तोगी

कैनवस सैट कर उसने अंदर की दुनिया के कपाट खोले। चित्र बनाना शुरू किया। पहले-पहल जो चित्र बना, वह फसलविहीन खेतों के बीच पेड़ों पर लटकी किसानों की लाशों का था। इस चित्र को बनाते हुए उसकी कूची कई बार काँपी। नमी से नजर में धुँधलापन छाया रहा।

उसने दूसरा कैनवस उठाया और चित्र बनाने लगा। अबकी दफा सामूहिक बलात्कार उपरांत खून के आँसू बहाती, कटी-फटी युवती का चित्र बना। कूची फिर कई मर्तबा काँपी और नजर धुँधलाई।

हताश हो, तीसरा कैनवस उठाया और चित्र बनाना प्रारंभ किया। इस बार जो चित्र बना, उसमें अनायास ही लाल रंग का इस्तेमाल भारी मात्रा में हुआ। आतंकवादियों द्वारा निर्दोष लोगों के कत्लेआम का लोमहर्षक चित्र उसके सामने था। एक बार पुन: धुँधलके से नजर भर उठी और कूची तो बार-बार काँपी ही।

कूची के लगातार कंपन और नजर में छानेवाली बार-बार की धुंध ने उसकी तलाश को विस्तार दिया। उसने एक और कैनवस उठाया। उसे गहरे काले रंग से पोता। देश की गरिमामयी संसद् के भीतर का चित्र खींच दिया। इसमें सफेदपोश नेता एक-दूसरे पर चप्पल-जूते और कुरसियाँ फेंक रहे थे। यह चित्र बनाते हुए न उसकी नजर धुँधलाई, न कूची ही काँपी, एक दफा भी नहीं।

पहले के तीनों चित्रों को इस आखिरी चित्र के पीछे सेट करना उसे ठीक लगा।

छूत के डर से

● पवित्रा अग्रवाल

बरतन साफ करते हुए लता की नजर कांता भाभी पर पड़ी, जो बहुत खाँस रही थीं।

''क्या हुआ भाभी, तबीयत ठीक नहीं है?''

''हाँ, तबीयत खराब है, रातभर तेज बुखार चढ़ा रहा है, साहब की तबीयत भी ढीली है, लगता है, उन्हें भी बुखार आएगा।''

''हाँ भाभी, आजकल फ्लू बहुत फैल रहा है। मैं बरतन माँजकर जा रही हूँ, अब तीन-चार दिन नहीं आऊँगी।''

''लता, ये क्या कह रही है? मेरी तबीयत खराब है, उस पर आज तीन-चार मेहमान भी आ रहे हैं, इस समय मैं तुझे छुट्टी नहीं दे सकती।''

''पर भाभी, मुझे छुट्टी चाहिए।''

''क्यों? कहीं जा रही हो?''

''नहीं, जा तो कहीं नहीं रही···पर···पर क्या? आप सबको फ्लू हो रहा है। सुना है, यह एक से दूसरे को लगता है। मुझे भी हो गया तो··· ?''

''अरे, ऐसे कैसे हो जाएगा?''

''भाभी, पिछले बरस जब मुझे सर्दी-खाँसी हुई थी तो आपने कहा था, यह इंफेक्शन है। हमें भी लग सकता है, कुछ दिन काम पर मत आओ, कहा था न?''

''हाँ, कहा तो था, पर तब मेरे पास दो कामवालियाँ थीं। तू आजा, कुछ नहीं होगा।''

''तो क्या यह बीमारी हमसे आपको तो लग सकती है, पर आप से हमको नहीं लगेगी?''

घरौंदा, ४-७-१२६, इसामियाँ बाजार, हैदराबाद-५०००२७
दूरभाष : ०९३९३३८५४४७

इनसानियत

● पवन चौहान

बस रुकते ही फटे-पुराने कपड़े पहने, वह बूढ़ा अपनी काँपती टाँगों के साथ बड़ी मुश्किल से बस के अंदर चढ़ पाया। अंदर पहुँचते ही उसने पूरी बस में नजर दौड़ाई, लेकिन उसे कहीं भी अपने लिए खाली सीट दिखाई नहीं दी। बस में सिर्फ एक वही था, जो खड़ा हुआ था। चलती बस में खड़ा होना उसके लिए मुश्किल हो रहा था। वह बार-बार अपने काँपते हाथों से कभी सीट को तो कभी बस की छत वाली रॉड को मजबूती से पकड़ने की कोशिश करता। जरा सी ब्रेक लगने मात्र से ही उसकी दाईं टाँग बाईं टाँग का स्थान ले लेती थी। बस में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं था, जो यह कह सकता, 'बाबा, यहाँ आइए और मेरी सीट पर बैठ जाइए।' सीट देने के बजाय सभी उसे देख नाक-भौंह सिकोड़ रहे थे।

सफर थोड़ा लंबा था। अत: उसने बस के फर्श पर बैठना ही मुनासिब समझा। बूढ़े की तरसती आँखें सीट के लिए अभी भी लोगों के चेहरों को पढ़ रही थीं। बूढ़े के फर्श पर बैठे होने के कारण परिचालक बेकार में ही परेशान हो रहा था। वह बस के आगे-पीछे आते-जाते बूढ़े को तरह-तरह की बातें सुनाता जाता, लेकिन बूढ़ा चुपचाप उसकी और अन्य लोगों की तिरस्कृत नजरों का सामना किए जा रहा था।

तभी अगले स्टेशन पर एक जवान व खूबसूरत युवती ने बस में प्रवेश किया तो लोग उसकी समीपता पाने के लिए तरस उठे। इतने में एक नौजवान झट से खड़ा होकर बोला, ''मैडम, कृपया यहाँ बैठ जाइए।'' युवती की एक नजर युवक पर, तो दूसरी बूढ़े व्यक्ति की ओर घूमी। वह बोली, ''बाबा, आप इस सीट पर बैठ जाइए। मुझसे ज्यादा आपको इसकी जरूरत है।'' यह कहकर युवती ने युवक पर इनसानियत का तमाचा जड़ दिया। यह देख बाकी लोगों की निगाहें जमीन में गड़ चुकी थीं।

गाँव व डा. महादेव, तहसील : सुंदरनगर,
जिला : मंडी-१७५०१८ (हि.प्र.)
दूरभाष : ०९८०५४०२२४२

पहला प्रेम-पत्र

● उषा छाबड़ा

''हैलो, तुम्हें काम तो याद है न!'' मधुरिमा ने कहा।

''कौन सा काम?'' उधर से मुकेश की आवाज आई।

''अरे! मैं कितने दिनों से कह रही हूँ, पर तुम हो कि···। आज शाम को कार्यालय से जब मैं घर पहुँचूँ तो काम हुआ मिलना चाहिए।'' यह कहकर मधुरिमा ने फोन रख दिया।

शाम को घर पहुँचते ही मुकेश से उसने पूछा, ''काम हुआ?''

''दिनभर क्लाइंट्स आते रहे मधुरिमा।'' मुकेश धीमी आवाज में बोला, ''यकीन मानो, समय बिल्कुल नहीं मिला। तुम चाय-नाश्ता लो, मैं···।''

''चाय-नाश्ता···खाना सब बाद में, पहले मेरा काम।'' वह गुस्से में बोली और दूसरे कमरे में जा लेटी। मुकेश मनुहार करता हुआ वहीं जा पहुँचा; लेकिन मधुरिमा ने कठोर अंदाज में फरमान सुनाया, ''आज कोई बहाना, कोई चापलूसी नहीं।''

थक-हारकर मुकेश ने तह किया एक कागज जेब से निकालकर उसकी ओर बढ़ा दिया। मधुरिमा ने आशंकित निगाह एक बार उस कागज पर डाली, फिर झपटकर उसे छीन लिया। 'बदमाश कहीं के!' वह बुदबुदाई और लेटे-लेटे ही खोलकर उसे पढ़ने लगी।

'मधुरिमा, तुम उन दिनों कॉलेज में नई-नई दाखिल हुई थीं, मैं सीनियर था। तुम पहली ही नजर में मुझे भा गई थीं। मैं इसी फिराक में रहने लगा कि एक बार तुम्हारी झलक मिल जाए। तुम्हें तो पता ही है कि मैं संकोची हूँ। कुछ बोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाता हूँ। यह झिझक आज भी मुझमें है। कॉलेज से निकलकर मैं काम-काज में बिजी हो गया और तुम्हारी याद भी खो-सी गई। कभी-कभी मन में आता कि तुमसे मिलूँ, लेकिन हिम्मत नहीं जुटा पाया। चार साल बाद, न जाने कहाँ से कोई रिश्ता लेकर आया। फोटो देखी तो मैं खुशी से झूम उठा। मैंने तुरंत हामी भर दी और हमारी शादी हो गई।

'मधुरिमा शादी हुए भी कितने वर्ष बीत गए! बच्चों के जन्म के बाद तो हमारा एकमात्र उद्देश्य उनकी अच्छी परवरिश रह गया था। साथ रहकर भी हम अजनबी से बन गए। तुमने किस तरह मेरे साथ इतने वर्ष बिता दिए, कुछ पता ही नहीं चला। कई ऐसे मौके आए, जब तुमने मुझे सहारा दिया। हर कदम पर मेरे साथ खड़ी रहीं। आज जब तुमने कहा कि मैं तुम्हें पत्र लिखूँ तो समझ में नहीं आया कि कहाँ से शुरू करूँ? तुम्हें लेकर ढेर सारी बातें जो मेरे जेहन में हैं, कैसे इस एक पत्र में समेट दूँ! बस मैं यही कहना चाहता हूँ कि तुमने परिवार को अच्छे से सँवारा।'

मधुरिमा पत्र पढ़ते-पढ़ते रोने लगी। मुकेश कभी मुँह से अपनी बात नहीं कहता था, लेकिन हर छोटी-बड़ी बात में उसका प्यार तो झलक ही जाता था। उसकी जिद पर, मुकेश ने शादी के तीस साल बाद यह पहला पत्र उसे लिखा था।

८२, जुपिटर अपार्टमेंट्स,
डी ब्लॉक, विकासपुरी, नई दिल्ली-११००१८
दूरभाष : ९८९९७२४८७२

बेटी-बेचवा

● पूर्णिमा शर्मा

शकट का बायना ननद को देने गई तो उसकी खुशी चेहरे से छलक रही थी, मानो कुबेर का खजाना हाथ लग गया हो! एकांत मिलते ही मैं खुद को रोक नहीं सकी, ''दीदी, आज कोई लॉटरी लग गई क्या, जो आप···''

बात पूरी नहीं कह पाई थी कि दीदी ने मेरे हाथ में तीन-चार तसवीरें रख दीं, जो एक सुंदर-सलोनी किशोरी की थीं और जो शायद विदेशी थीं। एक तसवीर में वह मृगनयनी केक काट रही थी, दूसरी में अपनी माँ को केक खिला रही थी और तीसरी में एक सज्जन, जो शायद उस किशोरी के पिता लग रहे थे, उसके कंधे पर एक हाथ रखे दूसरे हाथ से उसे कार की चाबी पकड़ा रहे थे! लड़की का चेहरा आश्चर्य मिश्रित खुशी से दमक रहा था!

''दी, यह मिष्ठी है ना?''

दीदी मुसकरा उठी। एक अनकहे गर्व के साथ! मिष्ठी, उनकी सौत की पोती थी और आज जिस पायदान पर वह पहुँच सकी है, वहाँ तो उसकी सगी दादी भी नहीं पहुँचा सकती थी! सुनंदा दी, मेरी ननद, एक दुहाजू को ब्याही गई थीं, क्योंकि उनकी पीठ में कूबड़ था! जीजाजी ने उनसे शादी इसी शर्त पर की थी कि वह अपनी सौत की तीनों संतानों को पालेंगी और अपने बच्चे के लिए नहीं कहेंगी! दीदी ने भी नौकरी न छोड़ने की अपनी शर्त रखी थी और साधारण रस्म के साथ उनकी शादी चार जनों की उपस्थिति में कर दी गई!

तीनों बच्चों की शादी उन्होंने अपनी नौकरी से कर्जा लेकर की थी, लेकिन 'सौतेली माँ' का ठप्पा उनके माथे से कभी नहीं मिट सका; बल्कि एक लांछन और लग गया था! दरअसल, छोटे बेटे की पत्नी एक बच्ची को जन्म देने के दस दिन बाद चल बसी थी। बड़े बेटे से दो बेटियाँ और बेटी से भी दो बेटियाँ थीं तथा अब पाँचवीं बेटी का खर्चा उठाने की कुव्वत परिवार में किसी में नहीं थी! दूरदर्शी दीदी ने उस नन्ही-सी जान को बिना किसी से पूछे अपनी भतीजी को देकर उसकी गोद भरी थी। सुदूर ऑस्ट्रेलिया में बसी भतीजी के पास पैसा बेशुमार था, पर औलाद नहीं थी!

मुझे सोच में डूबे देख दीदी हँसकर करुण स्वर में बोलीं, ''सौतेली माँ के साथ-साथ 'बेटी-बेचवा' का लांछन भी सहा, क्या फर्क पड़ता है मुझे? मेरी बच्ची जिंदा है और सुखी भी।''

बी-१५०, जिगर कॉलोनी, मुरादाबाद (उ.प्र.)
दूरभाष : १५९०-२४३५२१४

बुरी नज़र

● राजेंद्र वामन काटदरे

हार्निया के ऑपरेशन के बाद स्वास्थ्य लाभ ले रहे दिवाकरजी से मिलने मैं उनके घर पहुँचा। शहर के दूसरे छोर पर रहनेवाले उनके बड़े भाई और भाभी भी वहाँ बैठे हुए थे। मेरे पहुँचने के कुछ समय बाद वे चले गए।

इधर उन्होंने कदम घर के बाहर रखे ही होंगे कि दिवाकरजी की पत्नी ने उन्हें कोसना शुरू कर दिया, ''देखी नौटंकी? कैसी चिकनी-चुपड़ी बातें कर रहे थे। कैसी चिंता जता रहे थे। अरे, सब इन्हीं का किया-धरा तो है। इनसे हमारा सुख देखा नहीं जाता। बस इन्हीं की नजर लग गई है।''

मैं सन्न रह गया। बेचारे बीमार दिवाकरजी क्या सोचते होंगे! उन्हें समझाते हुए बोला, ''ऐसे क्यों कहती हैं, भाभीजी, वे तो इनके बड़े भाई-भाभी हैं। भला वे क्यों इनका बुरा चाहेंगे?''

''आप नहीं जानते इन्हें। पिछले साल, जब से हमने नई कार खरीदी है न, तभी से इन्हें बात चुभ रही है। हमें तो पक्का यकीन है कि हो न हो, इन्हीं की बुरी नजर लग गई है।'' ''वरना मुझे इतना बड़ा ऑपरेशन क्यों कराना पड़ता।'' अबकी बार दिवाकरजी बोले।

''लेकिन भाभी, छह महीने पहले ही उनका भी तो अपेंडिसाइटिस का ऑपरेशन हुआ था। ये नजर-वजर··· ।'' मैंने फिर समझाने की कोशिश की।

''वोई तो, बुरे कर्मों का बुरा नतीजा। दूसरों के बारे में बुरा सोचेंगे तो बुरा ही होगा। भगवान् सब देखता है और यहीं पर सजा देता है।'' भाभी अपनी रौ में और कुढ़ते हुए बोलीं।

२०२, सी-३, स्वास्तिक पार्क, आजाद नगर, कोलशेत,
ठाणे-४००६०७ (महाराष्ट्र)
दूरभाष : ९६९९२६९८४९

जरूरत

● सीमा सिंह

शूटिंग की तैयारी थी। सेट लग चुका था। बस निर्देशक महोदय के आने की प्रतीक्षा थी। उनके आते ही सब सचेत हो उठे।

''सब रेडी है?'' आते ही अपने असिस्टेंट से पूछा।

''जी सर!'' उसने मुस्तैदी से उत्तर दिया।

''एक बार सीन ब्रीफ करो।''

''जी, सीन है, माँ-बाप का लाड़ला बेटा रूठ गया है, तो माता-पिता तरह-तरह की खाने-पीने की चीजें लाकर उसको मना रहे हैं और बच्चा गुस्से में फेंक रहा है।''

''और वह बाल कलाकार? उसका क्या हुआ? अस्पताल से छुट्टी मिल गई?''

''नहीं सर, पर दूसरे बच्चे का इंतजाम कर लिया है! यहीं पास की बस्ती से अरेंज किया है। बच्चे के सिर्फ दो सीन हैं, दो सौ रुपए रोज पर बुलाया है।''

''काम कर सकेगा?''

''जी सर, मैंने सब समझा दिया है।''

''ओके, चलो फिर। लाइट, कैमरा, एक्शन!''

''कट, कट, कट!''

''हाथ से रखना नहीं है, उठाकर फेंकना हैं।'' असिस्टेंट ने झुँझलाहट काबू करते हुए कहा, ''पहले केक और पेस्ट्री हाथ मारकर दूर गिराओ,

फिर दूध का गिलास गिरा दो। ठीक?''

''चलो, फिर से,'' डायरेक्टर ने खीजकर कहा, ''एक्शन!''

''ओहो! कट! कट! कट! अबे, तुझको समझाया था न? फेंक दे, नीचे गिरा दे! ये इतना सँभालकर क्यों रख रहा है?''

बच्चे ने सुबकते हुए कहा, ''उन अंकल ने कहा था कि शूटिंग के बाद खाने का सारा सामान मैं घर ले जा सकता हूँ।''

१११/३९ अशोक नगर, कानपुर-२०८०१२
दूरभाष : ८९४८६१९५४७

लिफ्ट

● **सुमित प्रताप सिंह**

कोटला फ्लाईओवर के निकट लिफ्ट माँगते स्कूल की ड्रेस में खड़े उस लड़के को देखकर बाइक में ब्रेक लग गए। उसे बिठाकर आगे बढ़ा तो याद आया कि कुछ दिनों पहले भी उसे लिफ्ट दी थी। पूछा तो कहने लगा, ''महारानी बाग में रहता हूँ। फीस भरने की आज आखिरी तारीख है, वही लेने के लिए पंजाबी बाग जा रहा हूँ।''

''वहाँ क्यों?'' मैंने पूछा।

''वहाँ मौसी है मेरी।''

''तो मौसी उठा रही हैं तुम्हारी पढ़ाई का खर्चा?''

''नहीं अंकल। दरअसल, दादाजी की तबीयत अचानक ज्यादा खराब होने की खबर पाकर मम्मी-पापा को सवेरे-सवेरे गाँव चले जाना पड़ा।''

''महारानी बाग से कोटला फ्लाईओवर तक कैसे पहुँचे?''

''ऐसे ही, लिफ्ट लेते-लेते।''

''नाम क्या है तुम्हारा?''

''तेजस।''

नाम सुनते ही मुझे सबकुछ याद आ गया। गुस्से में बाइक एकाएक सड़क के किनारे जा रुकी। उससे उतरकर उसे डाँटते हुए मैं बोला, ''तुझे महीने में कितनी बार स्कूल की फीस भरनी पड़ती है बे?'' यह सुन लड़का एकदम से सकपका गया।

''पिछले हफ्ते भी तूने यहीं से लिफ्ट ली थी। तब भी यही बहाना मारा था।''

अब वह सीधा खड़ा न रह सका। आँखों से आँसू गिरने लगे। बोला, ''सही बात यह है अंकल कि पंद्रह दिन पहले किसी जेबकतरे ने मेरा पर्स मार लिया। बस का मंथली पास भी उसी में चला गया और जेब-खर्च के पैसे भी। घर से अब महीने के आखिर में ही पैसे मिलेंगे, तभी मंथली पास बनवा पाऊँगा और जेब-खर्च भी।''

''चल बैठ।'' उसकी बात सुन मैं बाइक स्टार्ट करके बोला, ''तीस तारीख तक इसी समय कोटला के पुल पर मिलते रहना, किसी और से लिफ्ट माँगने की जरूरत नहीं है। ठीक?''

उसने गरदन हिलाकर हथेली से अपने दोनों गाल पोंछे और पीछे की सीट पर बैठ गया।

ई-१/४, डिफेंस कॉलोनी पुलिस फ्लैट्स
नई दिल्ली-११००४९

भविष्य

● **उपमा शर्मा**

''प्रोफेसर साहब, जल्दी ही मेडिकल-काउंसिल की इंस्पेक्शन होनेवाली है। आपके विभाग में मरीजों की संख्या काफी कम है। कॉलेज काउंसिल के स्टैंडर्ड पर खरा नहीं उतरा तो मान्यता रद्द हो जाएगी। हम सबका भविष्य खतरे में पड़ जाएगा।'' विभाग प्रमुख से कॉलेज के डीन ने कहा।

''जी सर, लेकिन करें क्या? मेडिकल-कैंप भी लगवाए, पर खास लाभ नहीं हुआ। अब मरीज समझदार हो गया है, स्टूडेंट्स से इलाज नहीं करवाना चाहता।''

''तो इलाज डॉक्टर्स से करवाइए।''

''डॉक्टर स्ट्रैंथ तो पहले ही कम है। वे भी इलाज में लगे रहेंगे तो स्टूडेंट्स को पढ़ाएगा कौन?''

''फिर क्या हल है?''

''कॉलेज मैनेजमेंट से कहिए, नए डॉक्टर भरती करें। अच्छे डॉक्टर होंगे तो ही मरीज आएँगे।''

''लेकिन इससे तो बजट बिगड़ जाएगा।''

''बजट बढ़ाने के लिए स्टूडेंट्स पर नए चार्जिज लगाएँ। आखिर सब उन्हीं के भविष्य के लिए ही तो कर रहे हैं।''

''आपकी बात मैनेजमेंट तक पहुँचा दूँगा। फिर भी मरीज बढ़ाने का कोई और उपाय?''

''रोजाना पाँच-सात फर्जी मरीज दाखिल हुए दिखा देते हैं। इसी तरह कागजों में बैड भर देते हैं। काउंसिल को सत्तर परसेंट बैड-ऑक्यूपेसी ही तो चाहिए।''

''इंस्पेक्शन के वक्त क्या करेंगे?''

''तब मजदूरों, भिखारियों, रिक्शावालों को दिहाड़ी पर लाकर लिटा देंगे।'' प्रोफेसर ने मुसकराते हुए कहा।

बी-१/२४८, यमुना विहार, दिल्ली-११००५३

श्राद्ध

● **विरेंदर 'वीर' मेहता**

कार शहर को पीछे छोड़ अब बाहरी रास्ते पर दौड़ रही थी। सुबह बेटे से हुई बहस के बाद उनकी हिम्मत नहीं हो रही थी कि उससे पूछे कि वह उन्हें कहाँ लेकर जा रहा है। सुबह की बातें एक बार फिर उनके कानों में गूँजने लगी थीं—

'ओह बाऊजी, आप समझ क्यों नहीं रहे हैं? ये फॉरेन है, यहाँ श्राद्ध जैसे ढकोसले करने का लोगों के पास समय नहीं है।' बेटा झुँझलाहट में था।

'लेकिन बेटा, अपने पितरों की मुक्ति के लिए यह जरूरी है।'

'आप भी वर्षों से कैसे आडंबरों को ढोए चले जा रहे हैं, बाऊजी। अब यहाँ के लोग यह सब नहीं करते तो क्या उनके पूर्वजों की मुक्ति नहीं होती।'

'पर बेटा, यह सब हमारी आस्था और परंपरा···'

'बस बाऊजी!' बेटे ने उनकी बात बीच में ही काट दी थी, 'रहने दीजिए, सुबह-सुबह यह बहस। मुझे और भी कई जरूरी काम हैं।'

'बाऊजी, बाहर आइए।' कार एक ऊँची आलीशान इमारत के बाहर खड़ी थी और बेटा उन्हें बाहर बुला रहा था।

'वृद्धाश्रम!' बेटे-बहू से जुड़े जीवन के सारे लम्हे एक क्षण में उनकी आँखों में गुजर गए। सुबह हुई बहस के बाद बहू का बेटे को अंदर बुलाकर कुछ समझाने का रहस्य अब उनकी समझ में आ गया था। उनकी आँखें नम होने लगी थीं।

''लगता है, आप अभी तक नाराज हैं।'' बेटा कह रहा था और वे विचारमग्न थे।

''अरे बाऊजी, यह देखिए, इस इमारत की ओर। यह है, 'पैरालाइसिस होम' और इस बार हम अपने पूर्वजों का श्राद्ध यहाँ रहनेवाले लाचार लोगों की सेवा करके मनाएँगे। बाऊजी! आपकी बहू का कहना है कि जरूरतमंदों और बीमारों की सेवा करना भी तो एक तरह का धर्म और पुण्य···।'' बेटा अपनी बात कहे जा रहा था और बाऊजी की नम आँखों में कुछ देर पहले अपनी बहू को गलत समझ बैठने के प्रायश्चित्त-स्वरूप कुछ आँसू आशीर्वाद के ढलक आए थे।

एफ-६२, विकास मार्ग, लक्ष्मी नगर,
ईस्ट दिल्ली-११००९२
दूरभाष : ९८१८६७५२०७

वर्किंग गर्ल

● **माला वर्मा**

''मैं एक वर्किंग गर्ल हूँ, इतना तो आपको पता ही है, सो वीकेंड का सेटरडे मेरे लिए फुल रेस्ट का होगा, उस दिन मैं किसी को इंटरटेन नहीं कर सकती; रहा संडे, तो उस दिन मैं यह तय करूँगी कि मुझे किस मॉल में शॉपिंग करनी है तथा कहाँ किस रेस्तराँ में खाना-पीना।''

मिस्टर व मिसेज सिन्हा, जो अपने बेटे के लिए लड़की पसंद करने आए थे, उसकी बात सुनकर अचंभित रह गए। उन्होंने तीखी नजरों से उस लड़की को घूरा, फिर पास बैठे बेटे की ओर प्रश्नवाचक निगाह डाली।

बहुत जल्द बेटे ने चुप्पी तोड़ी, ''अगर सेटरडे को मेरे परिवार से कोई आया तो मैं उनकी आवभगत कर लूँगा, पर तुम्हारे मायके से कोई आया तब तुम क्या करोगी? इंटरटेन करोगी या घर वापसी का आदेश दोगी?''

लड़की चुप थी, बोलती भी क्या, उसके मायके वाले तो वहीं उपस्थित थे, ऊहापोह वाली स्थिति थी और जुबाँ बंद।

चाय-पानी धरा रह गया और सिन्हा परिवार उठ गया, चलते-चलते उनके बेटे ने फिर कहा, ''यहाँ आकर हमने भूल की, लेकिन अच्छा हुआ, जो तुमने अपने मन की बात कह दी। अपनी ये स्पष्टवादिता आगे भी बरकरार रखना, ताकि कोई दूसरा गुमराह होने से बच जाए।''

हाजीनगर, २४, परगना उत्तर, प. बंगाल-७४३१३५
दूरभाष : ०९८७४११५८८३

मज़बूत कंधे

● सुधा भार्गव

सुर के परलोक सिधारने के बाद कमली की सास उसके पास आकर रहने लगी थी। पति की कमाई ज्यादा तो न थी, मगर कमली के सुघढ़ गृहिणी होने के कारण गृहस्थी की गाड़ी ठीक से चल रही थी। सास के आने से खर्चा बढ़ गया। इसकी भरपाई करने के लिए उसने चौका-बरतन करनेवाली को हटा दिया और यह काम सास के जिम्मे कर दिया। सास इस कार्यभार से खुश हुई—चलो, मेरा मन भी लगा रहेगा और दो पैसे की बचत भी हो जाएगी।

धीरे-धीरे खाना बनाने का भार भी सास के कंधों पर डाल दिया। घर में कैद रहनेवाली कमली के अब पर निकल आए। वह घड़ी-घड़ी चंचल चिड़िया की तरह एक घर से दूसरे घर मेल-मिलाप करने निकल जाती।

सास को आँखों से कम दिखाई देता था, इसलिए खाना बनाते समय वह हड़बड़ा जाती। कभी नमक ज्यादा पड़ जाता तो कभी सब्जी जल जाती। बेटा तो चुप रहता, पर कमली मीन-मेख निकालने में कोई कसर न छोड़ती।

इस किरकिरी से तंग आकर सास दुखी हो उठी और एक सुबह उदासी में डूबी वह बेटे-बहू के पास आ बैठी। बेटा उस समय अखबार पर नजर गड़ाए चाय की चुस्कियाँ ले रहा था।

माँ का उतरा चेहरा देख इतना तो वह समझ गया कि माँ कुछ कहना चाहती है, पर क्या कहना चाहती है, न समझ पाया। प्रश्न भरी निगाहों से उसने उसकी ओर ताका।

''बेटा, अब बूढ़ी हड्डियों में इतनी ताकत नहीं कि हर काम को ठीक से सँहाल सकूँ।''

''मेरी हड्डियों में भी इतनी ताकत नहीं कि पूरा घर सँभाल सकूँ। मेरी जान को तो हजार काम हैं।'' कमली चाय पीते-पीते उबल पड़ी।

''बहू, तेरी हड्डियों में ताकत नहीं, मेरी हड्डियों में ताकत नहीं, पर मेरे बेटे के कंधे तो मजबूत हैं।''

''इन्हें इतना समय कहाँ कि बाहर भी काम करें और घर में भी।''

''मैं कई दिनों से देख रही हूँ कि अखबार पढ़ने और चाय की चुस्कियाँ लेने में तुम लोगों को आधा घंटा लग जाता है। यह सब जल्दी निबटाकर थोड़ा समय तो घर के काम के लिए निकाला ही जा सकता है। क्यों बेटा, कुछ गलत कह रही हूँ?''

बेटे का मन अखबार से उचाट हो गया। उसने उचककर रसोई में झाँका। कँपकँपाती ठंड में नल के नीचे झूठे बरतनों का पहाड़ उसकी माँ का इंतजार कर रहा था।

उसने माँ पर भरपूर निगाह डालते हुए गहरी साँस ली और रसोई की तरफ बढ़ गया।

जे ब्लॉक, ७०३ स्प्रिंग फील्ड,
सरजापुरा रोड, बंगलुरु-५६०१०२ (कर्नाटक)

डी.एन.ए. की गवाही

● शोभना श्याम

''माँ म, आज आपको बताना ही होगा कि आपने पापा को क्यों छोड़ा?''

''सुहानी, यह अचानक तुझे क्या हो गया है, दो महीने से तूने यही रट लगाई हुई है। मैंने तुझे बचपन में ही बता दिया था कि वे अच्छे व्यक्ति नहीं थे।''

''यही तो जानना चाहती हूँ, उनमें क्या बुराई थी? आपको मारते थे? बदचलन थे? जुआ···शराब? उनमें कौन सी बुराई थी आखिर?''

''मेरी बच्ची! बरसों पहले जब मैंने तुझे बताया था, तब तो तुमने पलटकर नहीं पूछा, अब आखिर क्या हो गया?''

''क्योंकि अब मैं उनसे मिली हूँ।'' सुहानी की आवाज काँप रही थी, आँखें लाल हो रही थीं, ''मैंने आपको बताया था न कि हमारे कॉलेज में जो नए प्रोफेसर आए हैं, वे बहुत देखे हुए से लगते हैं और उनकी आदतें, उनकी चाल-ढाल, बातचीत का लहजा सब मुझसे मिलता है? वह पापा ही हैं और वे बहुत अच्छे हैं। सारे स्टूडेंट्स उनको पसंद करते हैं, मुझे तो उनमें कोई बुराई नजर नहीं आई, वे अब भी मुझे बहुत प्यार करते हैं।''

''अब भी, नहीं, अब ही कह सुहानी। मैं तेरा दिल तोड़ना नहीं चाहती थी। मैं तो पहले ही दिन समझ गई थी, लेकिन···।''

''लेकिन क्या मॉम, क्यों आपने मुझे मेरे पापा के प्यार से दूर रखा? क्यों आपने अपनी निजी नफरत का भार मेरी जिंदगी पर डाले रखा, माना

आपने मुझे हर खुशी देने की कोशिश की, लेकिन एक लड़की के लिए पापा तो पापा ही होते हैं न, आपने क्यों वह जगह खाली रखी?''

''सुहानी! मेरी बच्ची! जैसे मुझ पर अब तक विश्वास करती आई है, वैसे ही करती रह, मत खोल इस नफरत की पोटली को, कहीं···''

''जो होगा, देखा जाएगा मॉम, लेकिन आज मैं जानकर ही रहूँगी।''

''तो सुन, आज तुझसे अपनी चाल-ढाल, व्यवहार, आदतें मिलती दिखी तो उनका प्यार तुझ पर उमड़ आया, लेकिन तेरे जन्म के समय संयोग से किसी और से शक्ल मिलती देखकर तुझे अपनी बेटी मानने तक से इनकार कर दिया था, इसी 'अच्छे' आदमी ने, तेरी और मेरी दोनों की गरिमा और रिश्ते को शक के पैरों तले कुचल दिया था, इसी अच्छे आदमी ने, तेरे साथ किए इस अन्याय के लिए तू माफ कर सकती है तो कर, लेकिन मैं तेरे अस्तित्व पर नाजायज का ठप्पा लगानेवाले इस अच्छे आदमी को कभी माफ नहीं करूँगी, कभी नहीं···''

''मॉम···मुझे मा···फ कर दो। मैं आज के बाद उस आदमी की शक्ल भी नहीं देखूँगी। मुझे भी यह डी.एन.ए. की गवाही मंजूर नहीं।''

उसका प्रश्न

● **शराफत अली खान**

दीवार पर भगवान् श्रीकृष्ण का मनभावन कलेंडर देखकर उसने सिर पर आँचल डाला और तत्परता से दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना के स्वर में आँखें मूँदकर बुदबुदाने लगी, ''हे भगवान्, मेरी लाज रखना!'' इतने में उसके कंधे पर हाथ रखकर वह मुसकराया, ''कुसुम, तुम लाज की बात कर रही हो? जानती हो तुम क्या हो। मैंने तुम्हें आज सबकुछ पाने के लिए ही तो बुलाया है, खरीदी है तुम्हारी आज की रात···।''

उसने डबडबाई आँखों से घूमकर उसकी ओर देखा, ''मैं मजबूरी में अपना जिस्म बेचती हूँ, आत्मा नहीं, मेरी आत्मा पवित्र है।''

''और मैं भी तुम्हें चाहता हूँ दिल से, मुहब्बत करता हूँ तुमसे।''

''नहीं-नहीं, मनुष्य इच्छाओं से मोहब्बत करता है। उसकी चाहत उसकी कामना में छिपी है।''

''मगर मैं तुम्हें हर रोज एक नए पति से मुक्ति दिलाना चाहता हूँ। इस कलंक को मिटा देना चाहता हूँ। शादी करना चाहता हूँ तुमसे।''

''ये कलंक और मुक्ति की बातें अब मुझे जख्मी नहीं कर पातीं। शादी और मोहब्बत की ये बातें कुँवारी लड़कियों को फुसलाने के लिए कही जाती हैं। मुझ जैसी वेश्या से दिल बहलाने के लिए नहीं।''

''देखो, तुम समझ नहीं रही हो मुझे। मैं तुम्हें दिल से चाहता हूँ और तुम्हारा दिल भी जीतना चाहता हूँ।''

''तुम मेरा दिल जीतकर क्या करोगे आज के अर्जुन, अपने भाइयों में फिर से बाँट दोगे न?''

३४३, फाइक एन्क्लेव, फेज-२, पो.
रूहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली-२४३००६ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९०१२१७४२९७

काले अंगूर

● **कुणाल शर्मा**

''ऐसे बिस्तर पर कब तक पड़े रहोगे, जाकर डॉक्टर को क्यों नहीं दिखा आते?'' वह चूल्हे पर पतीली चढ़ाते हुए बोली।

''पल्ले पैसा नहीं है, फेरी लगाए भी चार दिन हो गए। कुछ पैसा कमाऊँ तो डॉक्टर के पास जाऊँ।'' वह थोड़ा खीझते हुए बोला।

साड़ी के पल्लू में लगी गाँठ खोलकर वह कुछ नोट उसकी ओर बढ़ाती हुई बोली, ''शरीर नहीं चलेगा तो गुजर-बसर भी दूभर हो जाएगा। अब जाकर दिखा आओ।''

उसने चारपाई से उठकर साइकिल बाहर निकाली ही थी कि उसकी बेटी भी साथ जाने की जिद करने लगी। उसने उसे साइकिल पर आगे बिठाया और डॉक्टर को दिखाने निकल पड़ा।

क्लीनिक पर डेढ़ सौ रुपए फीस, वह हाथ में परची थामे डॉक्टर के कैबिन में दाखिल हुआ। डॉक्टर ने उसे चेक किया और बोला, ''भइया, ये दवाइयाँ ले लेना और हाँ, तुम्हारा ब्लड प्रेशर बहुत कम है, पहले जाकर एक गिलास जूस पियो, वरना बिस्तर से उठना मुश्किल हो जाएगा।''

वह क्लीनिक से बाहर निकल आया। कमजोरी के कारण वह खड़ा भी नहीं हो पा रहा था। उसने साइकिल उठाई और जूस की दुकान की ओर बढ़ गया। दुकान तक पहुँचते-पहुँचते उसकी साँस फूल गई थी। उसमें रखे काले अंगूरों को देखकर बेटी बोली, ''पापा, पापा! काले अंगूर खाने हैं!''

जेब में हाथ डाला तो दस-दस के तीन सिकुड़े हुए नोट हाथ लगे।

''बेटे, आज पैसे नहीं हैं, फिर ले लेंगे।'' बच्ची के सिर पर हाथ फेरते हुए वह बोला।

''ठीक है पापा!'' दबी आवाज में बच्ची बोली और चुपचाप उसका हाथ पकड़कर खड़ी हो गई। उसने एक नजर 'चर्र-चर्र' करती जूस की मशीन पर डाली और फिर बच्ची की ओर देखा। वह अभी भी काले अंगूरों को देख रही थी। जेब से पैसे निकालकर वह दुकानदार की ओर बढ़ाते हुए बोला, ''भइया, एक पाव काले अंगूर देना।''

दुकानदार से लेकर अंगूर का लिफाफा उसने बच्ची को थमाया और साइकिल पर बैठाकर उसे पैदल ही खींचते हुए घर के लिए चल दिया।

१३७ पटेल नगर (जंडली), अंबाला सिटी-१३४००३ (हरियाणा)
दूरभाष : ९७२८०७७७४९

दो, और दो

● सत्य शुचि

उस दिन पिताजी का महाकाय शरीर हास्यास्पद-सा लग रहा था और पिताजी अभी प्रथम फ्लेट में अपने तीसरे बेटे के बरबक्स जाने-अनजाने में गिरे भी ऐसे कि वह बेहोश हो गए।

इसी दरम्यान फ्लेट नंबर दो-तीनों से फोन पर उसके दोनों भाई नमूदार हुए और क्षणों में ही अपनी जवाबदारी पर सघन चुप्पी साधे वह दोनों गेट के समीप खड़े-खड़े मूकदर्शक से हालात को बारीकी से आँकने लगे थे। कुला जमा, फिलहाल एक गंभीर समस्या यह उठी कि गेट से पिताजी को बाहर कैसे निकाला जाए। जबकि निष्कर्षत: गेट पिताजी के मार्ग में बाधित रोड़ा था।

मगर यहाँ गौरतलब है कि पिताजी को अस्पताल ले जाना अति आवश्यक समझा गया और लिहाजा एक साँस में ही तीसरे बेटे ने एकबारगी दरी समेट पिताजी को कमरे में मूर्च्छित अवस्था में घसीटा-खींचा भी था, परंतु कदाचित् गेट एकाध इंच सँकरा सा था, जिस कारण पिताजी की निकासी नहीं हो पा रही थी और मजे की बात है कि देखते-देखते वहाँ से दोनों अग्रज फटाक् से विलोपित हो चुके थे।

और तभी पसीने से भीगे बेटे ने अपनी सूझ-बूझ से एक कारपेंटर को बुलवाया तत्पश्चात् आनन-फानन में वह गेट को चौखट से पृथक् कर चुका था। ऐसी नाजुक परिस्थितियों में बेटे को जरा साँस-में-साँस आई।

फिर भी तत्परता से गली-मोहल्ले में सफाई करनेवाले दो दलितों की मदद से पिताजी को ऑटो में बैठाया गया और फुरती से ऑटो चल पड़ा था, अस्पताल की ओर!

''...जाहिर तौर पर ये गैर लोग संकटमोचक से आज उसके तईं अपनों से कहीं ज्यादा मददगार निकले...काश! ये लोग अपने ही खून से होते...!'' और वह क्रोध की एक तरंग से भीतर-ही-भीतर जल-भुनकर रह गया।

साकेत नगर, ब्यावर-३०५९०१, (राजस्थान)

टिप

● संतोष सुपेकर

हर दो-चार दिन में महँगे, शानदार, एवरफ्रेश सेंटर से खाने का कुछ-न-कुछ सामान खरीदना मेरी आदत में शुमार होता जा रहा था। हर बार वहाँ से बाहर निकलते समय एक दस-बारह वर्षीय बच्चे को दो-तीन रुपए दे दिया करता था। फटे कपड़े, टूटी चप्पलें, हालात और कड़ी धूप से झुलसा तन एवं सूनी आँखें लिए वह लड़का बड़ा अजीब है। कभी खुद किसी से माँगता नहीं है, जो कोई कुछ दे दे, चुपचाप ले लेता है। इसलिए आने-जाने वाले उसे झिड़कते नहीं हैं, वरन् कुछ दे ही जाते हैं। मुझे तो उससे एक विशेष लगाव, मोहब्बत सी हो चली थी, तभी तो हर दो-तीन के अंतराल से, दफ्तर से आते समय, कार का स्टेयरिंग जैसे अपने आप उस स्टोर की तरफ मुड़ जाता था। लगता था कि मैं वहाँ कुछ खरीदने नहीं बल्कि उस बच्चे को कुछ देने ही जा रहा होऊँ।

परसों वहाँ एक अजीब घटना घटी। महँगे चॉकलेट, ब्रेड तथा फ्रोज़न मटर खरीदकर जैसे ही मैं उस स्टोर से बाहर निकला, आशा के विपरीत उस बच्चे ने पीछे से मेरी कमीज खींची, ''अरे...रे रे...क्या कर रहा है? दे तो रहा हूँ तेरे को, जरा सा सब्र तो कर...'' रोषयुक्त आश्चर्य से मैं उसकी ओर पलटा ही था कि उसके हाथ में सौ रुपए का नोट देखकर हैरान रह गया, ''बाबू, आज कुछ चइए नई, कुछ लाना है। तू मदद कर न पलीज। ले...ये, ये...सौ रुपए का नोट ले और अंदर से मेरे को भुने काजू का एक पैकिट ला दे। मेरको तो वाँ कोई अंदर जाने नी देगा, पर तू तो जा सकता है बाबू। पलीज ला दे नी, भुने काजू खाने का भोत मन हो रिया है, और हाँ...।'' सौ का नोट जबरन मेरी हथेली में ठूँसते हुए वह बोला, ''इसमें से पाइसा बच जाए तो वापस मत देना मेरेको...रख लेना...पलीज।''

३१, सुदामा नगर, उज्जैन-४५६००१ (मध्य प्रदेश)
दूरभाष : ०९४२४८१६०९८

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का दिसंबर अंक प्राप्त हुआ। सदा की तरह यह अंक भी पठनीय और संग्रहणीय है। 'प्रतिस्मृति' के अंतर्गत प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और साहित्यकार शंकरदयाल सिंह की कहानी 'मंदिर की देहरी' बहुत ही करुण और मार्मिक है। विद्याविंदु सिंह की 'पुरस्कार' एक अच्छी कहानी है, परंतु बीच में बोझिलता का शिकार हो गई है। अंत अच्छा है। लघुता में कहानी रोचक होते हुए भी फिल्मी अधिक लगती है। अंक का सबसे अच्छा लेख डॉ. कमल किशोर गोयनका का 'प्रेमचंद : शोध की नई दिशाएँ' है। प्रेमचंद के बारे में जो जानकारियाँ दी गई हैं, वे नई और ज्ञानवर्धक हैं। प्रेमपाल शर्मा का यात्रा-संस्मरण 'महाकाल की नगरी उज्जयिनी में दो दिन' बहुत रोचक और संग्रहणीय है। यह मात्र यात्रा-संस्मरण नहीं है, बल्कि एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दस्तावेज है, जो प्रामाणिकता के साथ उज्जयिनी नगर की स्थापना से लेकर आधुनिक काल तक की विस्तृत जानकारी देता है। इनके यात्रा-संस्मरणों की यह विशेषता होती है कि वह एक कहानी की तरह यात्रा को आगे बढ़ाते हैं। वह केवल यात्रा के समय दिखनेवाले पेड़, पहाड़, खेत और मैदानों का विवरण नहीं देते, बल्कि उनकी विशेषता भी बताते चलते हैं। इसी प्रकार वह रास्ते में मिलनेवाले व्यक्तियों के बारे में भी जिक्र करते चलते हैं। अन्य लेख, कविताएँ और कहानियाँ भी अच्छी हैं। स्थानाभाव के चलते प्रत्येक रचना के संबंध में लिखना संभव नहीं है।

—राकेश भ्रमर, जबलपुर (म.प्र.)

'साहित्य अमृत' का दिसंबर अंक मिला। सभी रचनाएँ उच्च स्तर की हैं। संपादकीय में विमुद्रीकरण पर अपनी राय से अवगत कराते हुए सुझाव भी दिए हैं। डॉ. कमल किशोर गोयनका द्वारा रचित 'प्रेमचंद : शोध की नई दिशाएँ' लेख बहुत पसंद आया। प्रेमचंद-साहित्य से प्रभावित अनेकों 'प्रगतिवादी' लेखक इन्हें अपनी विचारधारा (साम्यवाद) का एक टेंपलेट मानकर प्रचारित करते हैं, लेकिन इनकी रचनाएँ तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों, छुआछूत और कृषक समस्याओं पर भी प्रकाश डालती हैं। गोयनकाजी का प्रेमचंद साहित्य पर शोधकार्य अति प्रशंसनीय है। गोपाल चतुर्वेदी के लेख 'आज की मुखौटा सदी' में लेखन ने समाज में व्याप्त आडंबरों का पर्याय मुखौटा रूप में प्रस्तुत किया है। लोक व्यवहार हो, राजनीति हो या गृहस्थ जीवन, व्यक्ति अपने आपको ऐसा दिखाना चाहता है, जैसा लोग उसे देखना चाहते हैं। इसी विषय पर चतुर्वेदीजी ने अपनी कलम का कमाल दिखाया है। निश्चय ही वे व्यंग्य विधा के रत्न हैं।

—बी.डी. बजाज, दिल्ली

'साहित्य अमृत' का दिसबंर अंक प्राप्त हुआ। कहानियों में रजनी मोरवाल की 'छत की आस', वासुदेव की 'सुधा आज भी रोती है', रश्मि कुमार की 'अपना-अपना सूरज' बेहद पसंद आईं। प्रेमपाल शर्मा का यात्रा-संस्मरण 'महाकाल की नगरी उज्जयिनी में दो दिन' काफी जानकारी से भरा और रोचक है, जिसको पढ़कर मेरा मन उत्साहित हो गया। उन्होंने छोटी-से-छोटी हर घटना को अपनी पैनी दृष्टि से निकालकर बड़ी गंभीरता एवं आनंदमयी अंदाज में पेश किया है। इस अंक की लगभग सभी रचनाएँ अच्छी हैं।

—तुलसी देवी तिवारी, बिलासपुर (छ.ग.)

'साहित्य अमृत' का दिसंबर अंक प्राप्त हुआ। पूर्व की तरह यह अंक भी ज्ञान से भरा हुआ और प्रशंसनीय है। संपादकीय ने मोदी सरकार द्वारा उठाए गए ऐतिहासिक कदम 'नोटबंदी' से हो रही जन असुविधाओं को उजागर किया है। रजनी मोरवाल की 'छत की आस', बलदेव कृष्ण कपूर की 'वापसी', बीना सिद्धेश की 'एक नया सवेरा' और विपुल ज्वाला प्रसाद की 'भरा-भरा घर' कहानी बहुत भावपूर्ण लगीं। कमल किशोर गोयनका का लेख 'प्रेमचंद : शोध की नई दिशाएँ' अच्छा लगा, क्योंकि प्रेमचंद के बारे में जो जानकारियाँ दी गई हैं, वे नई और ज्ञानवर्धक हैं। प्रेमचंद इतने अच्छे लेखक थे, कि हिंदी जगत् से जुड़ा शायद ही कोई व्यक्ति होगा, जो उनसे अपरिचित हो। प्रेमपाल शर्मा का यात्रा-संस्मरण 'महाकाल की नगरी उज्जयिनी में दो दिन' पढ़कर ऐसा लगा, जैसे मैं खुद ही यात्रा कर रही हूँ।

—डॉ. स्मिता, अजमेर (राज.)

साहित्य अमृत का दिसंबर अंक प्राप्त हुआ, पढ़कर बहुत अच्छा लगा। हर माह की तरह यह अंक भी अपने आप में ज्ञान से भरा है। संपादकीय में देश में नोटबंदी से हो रही समस्याओं का वर्णन किया गया है। ग्युंटर ग्रास द्वारा लिखे गए साहित्य के विश्व परिपार्श्व 'हम सतत परिवर्तनशील प्रवाह में हैं' लेख में आजकल हो रहे बदलावों का वर्णन है। लेखक का काम सिर्फ लिखना ही नहीं होता, बल्कि अपने अनुभवों या भावों से पाठकों को परिचित कराना होता है। प्रेमपाल शर्मा का यात्रा-संस्मरण 'महाकाल की नगरी उज्जयिनी में दो दिन' जानकारी और पठनीयता से भरपूर है। विद्याविंदु सिंह की 'पुरस्कार' व बीना सिद्धेश की 'एक नया सवेरा' कहानियाँ, सुनीता चौधरी की 'नई दिशाओं की ओर, विज्ञान व्रत की 'आपका चेहरा बयाँ है' कविताएँ अच्छी लगीं। संपूर्ण संपादकीय मंडल को धन्यवाद।

—डॉ. रामप्रकाश राय, गोरखपुर (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का दिसंबर अंक स्तरीय और प्रशंसनीय है। संपादकीय भी बहुत अच्छा है। विद्याविंदु सिंह की कहानी 'पुरस्कार' मर्मस्पर्शी है। पठनीयता से ओतप्रोत और प्रेरणादायी रचनाओं के लिए धन्यवाद। नवंबर अंक का राम झरोखे बैठ के अंतर्गत लिखा व्यंग्य 'दुर्घटना, सड़क और अफसर' आज की अर्थव्यवस्था पर जोरदार कटाक्ष है। एक अच्छे अंक के लिए बधाई।

—डॉ. साधना शाह, औरंगाबाद (महा.)

वर्ग पहेली (१३६)

अगस्त २००५ अंक से हमने **'वर्ग पहेली'** प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान–विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ जनवरी, २०१७ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम–पते मार्च २०१७ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर **'वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१३४) का शुद्ध हल

१ रो	२ ज	गा	३ र	■	४ चा	ल	५ बा	६ ज
७ ध	न	■	८ त	९ र	ला	■	१० जा	न
■	११ ग	ल्प	■	१२ क	न	१३ क	र	स
१४ गु	ण	■	१५ लो	म	■	रौं	■	मु
१६ द	ना	१७ द	न	■	१८ य	दा	१९ क	दा
ड़ी	■	रा	■	२० स	म	■	२१ ल	य
२२ का	२३ ग	ज	२४ प	त्र	■	२५ भा	ई	■
२६ ला	ज	■	२७ ति	ह	२८ रा	■	२९ ग	३० श
३१ ल	ल	कि	त	■	३२ ज	रू	र	त

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **डॉ. सुनीता वर्मा**
बँगला–६, ब्लॉक नं.–८
मोतीलाल नेहरू नगर (पूर्व)
भिलाई, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

२. **श्री गोपाल व्यास**
सी जी–१५ स्कीम ७४–सी
विजयनगर, इंदौर–४५२०१०
(म.प्र.)

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई !

वर्ग-पहेली १३४ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री ब्रह्मानंद 'खिच्ची' (महेंद्रगढ़), फकीरचंद ढुल (कैथल), रजनीश कुमार त्रिवेदी (बरेली), ओंकारनाथ मिश्र (लखनऊ), मिथिलेश कुमारी (कानपुर), संतोष शर्मा (गाजियाबाद), शोभा दानी, दिनकर सहल, बी.डी. बजाज, कुसुम गोयनका, सुभाष शर्मा, कविता जैन (दिल्ली), रुक्मणी संगल (पटियाला), मधुरानी (बंगलुरु), गिरधारी लाल अग्रवाल (यवतमाल), विनीता सहल (मुंबई), विश्वनाथ चटर्जी (नागपुर), देवकीनंदन कांडपाल (अल्मोड़ा), रेणु मिश्र (जयपुर), मोहन उपाध्याय (अजमेर), राजा चौरसिया, शिवशरण दुबे (कटनी), अपर्णा गर्ग (ग्वालियर)।

बाएँ से दाएँ—

१. करामात (४)
४. अयोग्य (४)
७. जो निश्चित समय के उपरांत आए (२)
८. जिसकी प्रकृति दमन करने की हो (५)
९. नृत्य (२)
१०. सिक्का गिरने की आवाज (२)
१२. गणित में इकाई से कम मान (५)
१३. गल्ला (३)
१४. दान करनेवाला (२)
१५. एक घास, गरमियों में कमरे ठंडे करने के लिए जिसके परदे बनते हैं (२)
१६. तरंग (३)
१८. एक-एक करके (२,२,१)
१९. नर-संबंधी (२)
२१. दुबकना, अर्थात् भय के कारण छिपना (२,१)
२२. भले आदमी का लड़का (५)
२४. बोझ (२)
२५. कृपाण (४)
२६. आनंद-मग्न, तर (४)

ऊपर से नीचे—

१. मन में घबराहट होना (३,४)
२. किसी बात को बार-बार कहने की क्रिया (२)
३. दुश्चरित्रता (५)
४. सिख समुदाय के संस्थापक (३)
५. वाराणसी का अन्य नाम (२)
६. विलाप करना (४)
९. जिसका बड़ा नाम हो (४)
११. मन में इज्जत न रहना (३,१,३)
१३. सामान (४)
१५. मोल लेनेवाला (५)
१७. प्रतिवर्ष (४)
२०. सूचना (३)
२३. वायु (२)
२४. भाई की पत्नी (२)

वर्ग पहेली (१३५) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१३६)

१	२		३	■	४	५	६	
७		■	८					■
	■	९		■		■	१०	११
१२					■	१३		
	■	१४		■	१५		■	
१६	१७		■	१८				
१९		■	२०	■	२१		■	
■	२२	२३				■	२४	
२५				■	२६			

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

'न्यूरोथेरैपी द्वारा स्वस्थ जीवन' कृति लोकार्पित

१५ दिसंबर को नई दिल्ली के हिंदी भवन सभागार में न्यूरोथेरैपी के संस्थापक डॉ. लाजपत राय मेहरा की अध्यक्षता में न्यूरोथेरैपी, योग एवं ध्यान के विशेषज्ञ श्री रामगोपाल दीक्षित की प्रभात प्रकाशन द्वारा नव प्रकाशित पुस्तक 'न्यूरोथेरैपी द्वारा स्वस्थ जीवन' का लोकार्पण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह-सरकार्यवाह मान. डॉ. कृष्ण गोपाल के करकमलों से संपन्न हुआ। मुख्य अतिथि केंद्रीय आयुष राज्यमंत्री मान. श्री श्रीपाद नाईक थे। कार्यक्रम में बड़ी संख्या में न्यूरोथेरैपी चिकित्सक तथा इससे लाभ प्राप्त करनेवाले रोगी उपस्थित थे। □

'तेरा तुझको अर्पण' कृति लोकार्पित

१८ नवंबर को जयपुर के पिंक सिटी प्रेस क्लब में श्री जगदीश चंद की अध्यक्षता में प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित श्री श्याम आचार्य की पुस्तक 'तेरा तुझको अर्पण' का लोकार्पण किया गया, जिसमें मुख्य अतिथि श्री कैलाश मेघवाल एवं सर्वश्री विजय भंडारी व एल.पी. पंत ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. राजेश व्यास ने किया तथा आभार श्री वीरेंद्र सिंह राठौड़ ने ज्ञापित किया। □

'गोमाता विशेषांक' का विमोचन

२० नवंबर को देहरादून के प्रेस क्लब में पाक्षिक पत्रिका 'हिमालय हुंकार' के 'गोमाता विशेषांक' का विमोचन श्री विजय कुमार द्वारा किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि श्री अनिल ओक एवं मुख्य वक्ता श्री जगदीश उपासने ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री राजकुमार टांक ने किया तथा धन्यवाद श्री सुरेंद्र कुमार मित्तल ने ज्ञापित किया। □

महाराजा हरि सिंह पर कृति लोकार्पित

९ अक्तूबर को जम्मू में जम्मू विश्वविद्यालय के बिग्रेडियर राजेंद्र सिंह सभागार में आयोजित कार्यक्रम में डॉ. कुलदीप चंद अग्निहोत्री की पुस्तक 'जम्मू-कश्मीर के जननायक महाराजा हरि सिंह' का लोकार्पण केंद्रीय मंत्री डॉ. जितेंद्र सिंह एवं प्रो. आर.डी. शर्मा ने किया और अपने विचार भी व्यक्त किए। प्रो. जिगर मुहम्मद ने अतिथियों का स्वागत किया। संचालन डॉ. मधुलिका सिंह व एनी अंबरीन ने किया एवं धन्यवाद डॉ. गौतम मैंगी ने ज्ञापित किया। □

'सतकथा कही नहीं जाती' पुस्तक लोकार्पित

३० नवंबर को भोपाल में राज्य संग्रहालय के सभागार में श्री संतोष चौबे की अध्यक्षता में श्री मुकेश वर्मा की पुस्तक 'सतकथा कही नहीं जाती' का लोकार्पण किया गया, जिसमें सर्वश्री बलराम गुमास्ता, पल्लव, शशांक, प्रियंवद ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर श्री विनय उपाध्याय ने अतिथि वक्ताओं को स्मृति-चिह्न भेंट कर सम्मानित किया। संचालन श्री पंकज सुबीर ने किया तथा आभार श्री महेंद्र गगन ने दिया। □

पुस्तकों का लोकार्पण

१ नवंबर को धर्मशाला (हि.प्र.) स्थित के परम पावन दलाईलामा मंदिर में हिमाचल प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री तथा लोकसभा सांसद श्री शांता कुमार की प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित कृति 'हिमालय पर लाल छाया', श्री हेमराज कौशिक की किताबघर प्रकाशन से प्रकाशित कृति 'साहित्यसेवी राजनेता : शांता कुमार' एवं श्री शांता कुमार की पत्नी श्रीमती संतोष शैलजा की हिंदी कहानियों के अंग्रेजी अनुवाद 'इफ ऑटम कम्ज' का लोकार्पण विश्वविख्यात आध्यात्मिक गुरु परम पावन दलाई लामा द्वारा किया गया। शांता कुमार परिवार द्वारा दलाईलामा को अभिनंदन पत्र भी भेंट किया गया। □

राष्ट्रीय आध्यात्मिक कवि सम्मेलन आयोजित

६ नवंबर को लखनऊ में भारतीय भाषा प्रतिष्ठान राष्ट्रीय परिषद् मुंबई तथा विसारिया शिक्षा एवं सेवा समिति लखनऊ के संयुक्त तत्त्वावधान में राष्ट्रीय आध्यात्मिक कवि सम्मेलन का आयोजन श्री महेश्चंद्र द्विवेदी की अध्यक्षता में किया गया, जिसके मुख्य अतिथि श्री हृदय नारायण दीक्षित थे; सर्वश्री सुरेश श्रीवास्तव, मोहनलाल अग्रवाल, आनंद वनरवाल व आर.के. सिंह विशिष्ट अतिथि थे। □

राष्ट्रीय परिसंवाद आयोजित

१७ नवंबर को विद्याश्री न्यास एवं श्री शंकर शिक्षायतन के संयुक्त तत्त्वावधान में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के सभागार में प्रो. चंद्रमा पांडेय की अध्यक्षता में पंडित मधुसूदन ओझा के रचना-कर्म के संदर्भ में 'यज्ञ-विज्ञान' विषय पर मुख्य अतिथि प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी एवं सर्वश्री हरिप्रसाद अधिकारी, उपेंद्र कुमार त्रिपाठी व सुनील कात्यायन ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री शिवराम गंगोपाध्याय ने किया तथा धन्यवाद श्री धनंजय कुमार पांडेय ने ज्ञापित किया। □

तृतीय वार्षिक सम्मेलन संपन्न

२७ नवंबर को फरीदाबाद के डी.ए.वी. शताब्दी कॉलेज में संत साहित्य अकादमी के तृतीय वार्षिक सम्मेलन का आयोजन जगद्गुरु रामनरेशाचार्य श्रीमठ की अध्यक्षता में किया गया। मुख्य अतिथि श्रीमती सीमा त्रिखा एवं विशिष्ट अतिथि डॉ. विंदेश्वर पाठक थे। इस अवसर पर डॉ. उमा शशि दुर्गा को 'महात्मा बुद्ध साहित्य रत्न सम्मान' एवं डॉ. उदय प्रताप सिंह को 'जगद्गुरु रामानंदाचार्य साहित्यरत्न सम्मान' से डॉ. बलदेव वंशी व जगद्गुरु स्वामी रामनरेशाचार्य द्वारा शॉल, प्रशस्ति-पत्र एवं ११-११ हजार रुपए की राशि से सम्मानित किया गया। साथ ही डॉ. विंदेश्वर पाठक को 'दरिद्र नारायण सम्मान' एवं श्री पुष्पेंद्र चौहान को 'भाषा परमवीर सम्मान' से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर 'संतों की वाणी और हमारा समय' विषय पर परिचर्चा आयोजित की गई, जिसमें सर्वश्री रमेश सोनी, शिवकुमार खंडेलवाल, संत विजेंद्रदास, एस.एन. पांडेय, अशोक वैरागी, ऊषा किरण शर्मा, हेमलता पांडेय, देवेंद्र बहल, नरेश शांडिल्य, आचार्य फुलोरिया, एस.एन. गोसाईं, प्रकाश लखानी, रमेश विकास, वेद व्यथित, संजय प्रभाकर, अभय सिन्हा, प्रेम विनीत, महेश सुजीव रोज, सुरेंद्र भसीन, लक्ष्मण सिंह विष्ट, लक्ष्य भसीन, लाल बिहारीलाल, जय प्रकाश गौतम ने अपना योगदान दिया। □

काव्य-गोष्ठी संपन्न

२१ नवंबर को श्री आलोक शर्मा की अध्यक्षता में कोलकाता स्थित

श्री बड़ाबाजार पुस्तकालय में काव्य-गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री काली प्रसाद जायसवाल, जगदीश प्रसाद पाटोदिया, कुँवर वीर सिंह मार्तंड, हीरा लाल जायसवाल, चंद्रिका प्रसाद अनुरागी, रणजीत भारती, नंदलाल रौशन, रवि प्रताप सिंह, जीवन सिंह, राकेश दुबे, नवीन सिंह, अनुरोध, रमाकांत सिन्हा, दुर्गा व्यास, सुशीला चनानी, श्यामा सिंह, जरीना जरीन, करुणा पांडे, अरुणिमा दवे, सुषमा पांडे, मोहम्मद जमीर, राजेंद्र नाहटा, संजय सनम, अरविंद सिंह, अहमद मेराज, रामनाथ यादव, श्रेयस सारस्वत, सीताराम अग्रवाल ने काव्य पाठ किया। संचालन डॉ. गिरधर राय ने किया तथा धन्यवाद डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी ने ज्ञापित किया। ☐

पुण्यतिथि पर गोष्ठी संपन्न

२६ नवंबर को आरा (बिहार) के जीवन ज्योति संस्थान के तत्त्वावधान में श्री पवन श्रीवास्तव की अध्यक्षता में डॉ. शंकर दयाल सिंह की २१वीं पुण्यतिथि पर 'तीसरी सरकार में महिलाओं की भूमिका' विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें मुख्य अतिथि श्रीमती रश्मि सिंह थीं। सर्वश्री वीरेंद्र कुमार सिंह, संजय कुमार, माला कुमारी, के.डी. सिंह सुभाष ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री कृष्णदेव प्रसाद सिंह ने किया।

आरा के स्थित बाबू कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, डॉ. शंकर दयाल सिंह केंद्रीय पुस्तकालय में कुलपति श्री लीलाचंद्र साह की अध्यक्षता में 'साहित्य और राजनीति के सेतु थे डॉ. शंकर दयाल सिंह' विषय पर आयोजित संगोष्ठी में श्रीमती रश्मि सिंह मुख्य अतिथि थीं। इस अवसर पर सर्वश्री अशोक सिंह, तपेश्वर सिंह, वीरेंद्र कुमार सिंह, संजय कुमार ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐

संगोष्ठी संपन्न

विगत दिनों सलूंबर के बी.एन. बालिका महाविद्यालय में 'सलिला' संस्था द्वारा श्री राजकुमार जैन 'राजन' की अध्यक्षता में 'बहुआयामी हिंदी साहित्य' विषय पर संगोष्ठी आयोजित की गई। मुख्य अतिथि श्री दिनेश माली थे। श्री रघुनाथ सिंह एवं श्री शिवनारायण आगाल ने आभार व्यक्त किया। ☐

परिचर्चा आयोजित

१३ नवंबर को राजनांदगाँव स्थित मुक्तिबोध संग्रहालय के 'सृजन-संवाद' भवन में गजानन माधव मुक्तिबोध की जन्म शताब्दी पर डॉ. आर.एन. सिंह की अध्यक्षता में 'मुक्तिबोध : व्यक्तित्व और कृतित्व' विषय पर सर्वश्री गणेश खरे, गणेश शंकर शर्मा, शंकर मुनि राय, चंद्रकुमार जैन, बी.एन. जाग्रत, नीलम तिवारी, चंद्रशेखर शर्मा ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐

व्याख्यानमाला एवं सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों नई दिल्ली में साहित्य अकादेमी के सभागार में हिंदी की साहित्यिक पत्रिका 'नई धारा' द्वारा श्री लीलाधर मंडलोई की अध्यक्षता में आयोजित द्वादश उदयराज सिंह स्मारक व्याख्यान में 'मैं गाँव पर ही क्यों लिखती हूँ' विषय पर श्रीमती मैत्रेयी पुष्पा ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर नई धारा की ओर से श्रीमती मैत्रेयी पुष्पा को 'उदय राज सिंह स्मृति सम्मान' स्वरूप एक लाख रुपए की राशि, प्रतीक चिह्न, अंगवस्त्र से; डॉ. प्रथमराज सिंह द्वारा सर्वश्री विश्वनाथ सचदेव, अनिरुद्ध सिन्हा, रीता सिन्हा को 'नई धारा रचना सम्मान' स्वरूप २५-२५ हजार रुपए की राशि, सम्मान-पत्र, प्रतीक चिह्न, अंगवस्त्र से सम्मानित किया गया। धन्यवाद श्री बलराम ने ज्ञापित किया। ☐

श्रद्धांजलि सभा संपन्न

२२ नवंबर को वाराणसी में काशी नागरी प्रचारिणी के सभाकक्ष में डॉ. विवेकी राय की स्मृति में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन प्रो. एस.एस. कुशवाहा की अध्यक्षता में किया गया, जिसमें सर्वश्री श्रद्धानंद, अर्जुन तिवारी, जितेंद्र नाथ मिश्र, सुरेंद्र बाजपेयी, ब्रजेंद्र द्विवेदी 'शैलेश', गौतम अरोड़ा, नरोत्तम शिल्पी, अमरनाथ शर्मा, रामजी नयन, सभाजीत शुक्ला, बृजेश पांडेय, योगेश चतुर्वेदी, चंद्रकांत राजेंद्र गुप्त, शुभाजीत शंकर साहा ने डॉ. विवेकी राय का स्मरण कर उन्हें अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। ☐

नाटक अन्वेषक का मंचन

२१ नवंबर को साहित्य कला परिषद् दिल्ली द्वारा आयोजित युवा नाट्य-समारोह का शुभारंभ श्री प्रताप सहगल के मॉडर्न क्लासिक के रूप में प्रसिद्ध नाटक 'अन्वेषक' से हुई। युवा नाट्य-निर्देशक श्री अतुल जस्सी ने अपने निर्देशकीय कौशल से 'अन्वेषक' के मंतव्यों को दर्शकों को सफलतापूर्वक पहुँचाया। ☐

२५वाँ वार्षिक अधिवेशन संपन्न

११ दिसंबर को वाराणसी के पराड़कर स्मृति भवन में श्री लीलाधर जगूड़ी की अध्यक्षता में आयोजित साहित्य संघ के २५वें वार्षिक अधिवेशन के मुख्य अतिथि डॉ. जवाहर कर्नावट थे। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि प्रो. शरद नारायण खरे को श्री लीलाधर जगूड़ी द्वारा 'सेवक स्मृति साहित्यश्री अलंकरण' से सम्मानित किया गया। सम्मान-स्वरूप उन्हें ५१,००० रुपए की राशि प्रदान की गई। इस अवसर पर सर्वश्री भारतेंदु मिश्र, ई. अन्नपूर्णा, भगवती प्रसाद द्विवेदी, अमिता दुबे, वीरेंद्र सरल, शरद नारायण खरे, दयानिधि मिश्र, श्रद्धानंद, अमलदार नीहार, प्रीतेश आचार्य ने अपने विचार व्यक्त किए। डॉ. विजयेंद्रनाथ मिश्र के मंगलाचरण के बाद काव्य-गोष्ठी आयोजित की गई, जिसमें सर्वश्री लीलाधर जगूड़ी, हरिराम द्विवेदी, सुरेंद्र वाजपेयी, अजय पांडेय, नरेंद्र नाथ मिश्र, भारतेंदु मिश्र, भगवती प्रसाद द्विवेदी, शरद नारायण खरे ने काव्यपाठ किया। संचालन डॉ. जितेंद्र नाथ मिश्र ने किया तथा धन्यवाद श्री वासुदेव ओबेरॉय ने ज्ञापित किया। ☐

श्री पंकज बिष्ट सम्मानित

विगत दिनों क्लब रोड स्थित एक रेस्त्राँ में 'समयांतर' पत्रिका के संपादक श्री पंकज बिष्ट को समारोह के अध्यक्ष प्रो. वीर भारत तलवार द्वारा '९वें अयोध्या प्रसाद खत्री स्मृति सम्मान' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें स्मृति-चिह्न, प्रशस्ति-पत्र एवं ग्यारह हजार रुपए की

राशि भेंट की गई। इस अवसर पर श्री मनोज कुमार वर्मा व श्री रामाज्ञा शशिधर ने अपने विचार व्यक्त किए। □

श्री दीर्घ नारायण के कहानी-संग्रह पर चर्चा

विगत दिनों पूर्णिया के कला भवन में श्री चंद्रकिशोर जायसवाल की अध्यक्षता एवं श्री असगर वजाहत के मुख्य आतिथ्य में डॉ. दीर्घ नारायण के कहानी-संग्रह 'क्रांति की मौत' एवं 'पहला रिश्ता' पर सर्वश्री प्रेम कुमार मणि, रामधारी सिंह 'दिवाकर', निरूपमा राय, प्रेम भारद्वाज, गौरीनाथ ने अपने विचार व्यक्त किए। □

राष्ट्रीय संगोष्ठी समारोह संपन्न

१० दिसंबर को नई दिल्ली के कॉन्स्टीट्यूशन क्लब में प्रो. बृजकिशोर कुठियाला की अध्यक्षता एवं श्री सुधीर चौधरी के मुख्य आतिथ्य में 'भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता : चुनौतियाँ एवं समाधान' विषय पर सर्वश्री वृषभ प्रसाद जैन, विजय क्रांति, अतुल कोठारी ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन प्रो. अरुण कुमार भगत ने किया। □

साहित्यकार सम्मानित

विगत दिनों संस्कारधानी जबलपुर की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था 'कादंबरी' के वार्षिक हिंदी अधिवेशन एवं साहित्यकार सम्मान समारोह में डॉ. यशोयश को उनकी लगभग दो दर्जन पुस्तकों में मुक्तक संग्रह 'रुतबा' के लिए 'भगवती प्रसाद दुबे राष्ट्रीय सम्मान' से आचार्य कृष्णकांत चतुर्वेदी, मुख्य अतिथि डॉ. कपिल देव मिश्र, आचार्य भगवत दुबे, डॉ. गार्गीशरण मिश्र 'मराल' एवं डॉ. स्मृति शुक्ला के करकमलों से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर डॉ. राजेंद्र मिलन को नाटक लेखन के लिए 'सेठ गोविंददास राष्ट्रीय सम्मान' व डॉ. शिवशंकर अवस्थी को हिंदी सेवा के लिए 'डॉ. हरिहरशरण मिश्र श्रीहरि राष्ट्रीय सम्मान' से सम्मानित किया गया। □

काव्य-गोष्ठी संपन्न

१७ दिसंबर को कोलकाता में श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय में काव्य-मर्मज्ञ श्री नंदलाल शाह की अध्यक्षता में डॉ. अरुण प्रकाश अवस्थी के ७८वें जन्मदिवस पर अंतरंग काव्य-गोष्ठी आयोजित की गई, जिसमें मुख्य अतिथि श्री जय प्रकाश सिंह एवं सर्वश्री रामेश्वर मिश्र 'अनुरोध', अनिल ओझा 'नीरद', नंदलाल रोशन, रविप्रताप सिंह, रणजीत भारती, सुशीला चेनानी, तारा दूगड़ ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इस अवसर पर सर्वश्री अरुण प्रकाश मल्लावत, सत्येंद्र सिंह अटल, भँवरलाल मूँधड़ा, शंकरबक्स सिंह, ज्ञानप्रकाश पांडे, आशीष चतुर्वेदी, गुड्डन सिंह, राधेश्याम सोनी एवं सत्यप्रकाश तिवारी ने उपस्थिति अतिथियों एवं कवियों को पुष्पगुच्छ देकर सम्मानित किया। संचालन श्रीमती दुर्गा व्यास ने किया तथा धन्यवाद श्री बंशीधर शर्मा ने ज्ञापित किया। □

साहित्यिक क्षति

श्री हृदयेश नहीं रहे

३१ अक्तूबर को हिंदी के सुप्रसिद्ध कथाकार श्री हृदयेश का निधन हो गया। उनका जन्म २ जुलाई, १९३० को शाहजहाँपुर (उ.प्र.) में हुआ था। उन्होंने ११ से अधिक उपन्यास और २० से अधिक कहानी-संग्रहों से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। 'सफेद घोड़ा काला सवार' और 'दंड नायक' जैसे उपन्यास बहुत प्रसिद्ध हुए। उनकी कुछ कहानियाँ विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल हैं। 'जोखिम' शीर्षक से उन्होंने आत्मकथा भी लिखी।

डॉ. विवेकी राय नहीं रहे

२२ नवंबर को हिंदी और भोजपुरी के प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. विवेकी राय का निधन हो गया। उनका जन्म १९ नवंबर, १९२४ को हुआ था। उन्होंने पचास से अधिक पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'सोना माटी', 'समर शेष है', 'श्वेतपत्र' विशेष उल्लेखनीय हैं। ललित निबंध, कथा साहित्य और कविता में उनको प्रसिद्धि प्राप्त हुई। उनको ग्रामीण परिवेश को गहराई से समझने वाला रचनाकार माना जाता है।

श्री अनुपम मिश्र नहीं रहे

१९ दिसंबर को हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक, संपादक, छायाकार और गांधीवादी पर्यावरणविद् श्री अनुपम मिश्र का निधन हो गया। प्रसिद्ध हिंदी कवि भवानी प्रसाद मिश्र के सुपुत्र अनुपमजी का जन्म सन् १९४८ में हुआ था। पर्यावरण-संरक्षण के प्रति जनचेतना जगाने और सरकारों का ध्यानाकर्षित करने की दिशा में तब से काम प्रारंभ किया, जब देश में पर्यावरण रक्षा का कोई विभाग नहीं खुला था। परंपरागत जल-स्रोतों के पुनर्जीवन की दिशा में उन्होंने महत्त्वपूर्ण काम किया। गांधी शांति प्रतिष्ठान दिल्ली में उन्होंने पर्यावरण कक्ष की स्थापना की। वे प्रतिष्ठान की पत्रिका 'गांधी मार्ग' के संस्थापक और संपादक भी रहे। अपनी अत्यंत प्रसिद्ध पुस्तक 'आज भी खरे हैं तालाब' के लिए २०११ में उन्हें देश के प्रतिष्ठित 'जमनालाल बजाज पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। इस पुस्तक की, जो ब्रेल लिपि सहित तेरह भाषाओं में प्रकाशित हुई है, एक लाख से अधिक प्रतियाँ बिक चुकी हैं। उन्होंने इस पुस्तक को प्रारंभ से ही कॉपीराइट से मुक्त रखा। १९९६ में उन्हें देश के सर्वोच्च पर्यावरण पुरस्कार 'इंदिरा गांधी पर्यावरण पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया। अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से भी उन्हें सम्मानित किया गया। उनकी अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं—'राजस्थान की रजत बूँदें' एवं 'साफ माथे का समाज'।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से दिवंगत आत्माओं को भावभीनी श्रद्धांजलि।